महाकाल संहिता

गुह्यकाली खण्ड





डॉ. किशोर नाथ झा

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्
इलाहाबाद.

महाकालसंहिता

होमः सप्तशतीपाठो बलिर्वादित्रवादनम् ।
चतुष्टयमिदं शस्तं मासीषे कालिकार्चने ।। १३।११६२।।
कुमारीपूजनं कुर्यात् विधिना पञ्चमं हि तत् । १३।११६४।।

× × ×

दमनारोपणं कर्म पवित्रारोहणं तथा ।
उभे नित्ये परिज्ञेये अकृते पापदायिनी ।। १४।१५८६।।

[महाकालसंहिता ।]

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

तृतीयो भागः

सम्पादकः
डा० किशोर नाथ झा



गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
मोतीलाल नेहरू पार्क
इलाहाबाद--२
१९७९

कृतम् । त्रिखण्डात्मकस्य गुह्यकालीखण्डस्य प्रथमद्वितीयभागौ क्रमशः १९७६–१९७७ वर्षयोः प्रकाशितौ अयं चास्यान्तिमो भागः **डा० झा महोदयैः** विविधैः परिशिष्टादिभिः समलंकृत्य ग्रन्थस्यास्य उपादेयत्वं सुतरां संवर्द्धितम् । एतावद्दुरूहग्रन्थस्य वैदुष्यपूर्णसम्पादनं प्रति हार्दिकं सन्तोषम् अभिप्रशंसनं च प्रकटयन् तेभ्योऽनेकान् साधुवादान् वितरामि ।

अद्य यावत् नेपालादिषु प्रदेशेष्वेव गुह्यकालीसमर्चनस्य विधिविधानं प्रचलितं ज्ञातं चासीत् । गोप्यं गूढं चैतद् विज्ञानम् इदानीं एतद् ग्रन्थप्रकाशनेन सर्वजनसामान्यत्वं भजते इत्यत्रापि मन्ये भगवत्याः प्रेरणा, तयानवरतं संवर्द्धितोऽस्माकं तदिच्छावशवर्तिनां निमित्तमात्रभूतानाम् उत्साह एव मूलम् । अस्मानेव साऽऽद्या चिच्छक्तिः साधनरूपेण एतस्मिन् कर्मणि वृतवतीत्यात्मानं वयं धन्यं मन्यामहे, आशास्महे च यत् सर्वेऽपि भगवतीभक्तिभाविताः सज्जना एतं ग्रन्थमनुशील्य ऐहिकमामुष्मिकं च लाभमनायासेन आसादयेयुः ; **'श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव** इति किं वा दुरापं जगज्जनन्याः समुपासकानाम् ?

विदुषामाश्रवः

गयाचरणः त्रिपाठी

प्राचार्यः

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृत विद्यापीठम्

प्रयागः

वैशाखपूर्णिमा, सं० २०३६ वै०

आमुख

भगवती आद्या शक्ति की असीम अनुकम्पा से महाकालसंहिता (गुह्यकाली खण्ड) का यह तृतीय तथा अन्तिम भाग आज पहली बार प्रकाशित होकर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। चिर सङ्कल्पित कार्य का सफल समापन वस्तुतः आनन्दप्रद होता है। वर्षों से चली आ रही इस महती योजना का पूरा होना विद्यापीठ के लिए संतोष का विषय है।

इस पुण्य अवसर पर मैं उन समस्त सारस्वत साधकों का श्रद्धा एवं आदर के साथ स्मरण करना चाहता हूँ, जो इस दीर्घकालिक योजना का उत्साह पूर्वक शुभारम्भ कर मध्य में ही दिवङ्गत हो गये। इस 'गङ्गानाथ झा अनुसन्धान संस्थान' के अन्यतम संस्थापक तथा तत्कालीन अध्यक्ष स्वनामधन्य म० म० **डा० गोपीनाथ कविराज** महाशय के परामर्श से इस संस्थान के तात्कालिक सचिव प्रख्यात विद्वान् म० म० **डा० उमेश मिश्र जी** ने १९६१ ई० में इस विशाल योजना का शुभारम्भ किया था।

प्रारम्भ में इसकी मातृकाओं के संग्रह में ही पर्याप्त समय लग गया। संस्थान की कार्यालयीय सञ्चिका से विदित होता है कि लगभग छः वर्षों तक (१९६१ से ६६ तक) इसकी मातृकाओं का संग्रह ही होता रहा। नेपाल से मातृकाओं का संग्रह करने में भारत के तात्कालिक प्रधानमन्त्री पुण्यात्मा **लाल बहादुर शास्त्री**, नेपाल में भारत के राजदूत **श्री श्री मन्नारायण जी** तथा नेपाल में भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सहयोगी **डा० इन्दुशेखर जी** का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

१९६७ में म०म० **उमेश मिश्र जी** के अस्वस्थ एवं दिवङ्गत हो जाने से इस विशाल योजना की अपूरणीय क्षति हुई। किन्तु उसके तुरन्त बाद ही मिश्र जी के सुयोग्य पुत्र **डा० जयकान्त मिश्र जी** ने इस संस्थान का साचिव्य अपने हाथ में लेकर अनेक विघ्नों को झेलते हुए भी १९७१, ई० में इस संहिता का कामकलाखण्ड **म०म० कविराज** जी से सम्पादित कराकर प्रकाशित किया। कविराज जी जैसे उत्कृष्ट तान्त्रिक साधक एवं प्रखर संस्कृत विद्वान् के द्वारा लिखी हुई इसकी लम्बी भूमिका तान्त्रिक साधकों, जिज्ञासुओं तथा अनुसन्धित्सुओं के लिए प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है।

इसी बीच (अप्रैल १९७१ में) 'राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान' द्वारा गङ्गानाथ झा अनुसन्धान संस्थान का अधिग्रहण हुआ और यह संस्था गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत

विद्यापीठ के रूप में परिवर्तित हो गयी। इससे कार्य प्रणाली में परिवर्तन का होना स्वाभाविक था। परिमित कार्यकर्ता होने से उचित समय में इस योजना का समापन नहीं हो सका। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' की उक्ति इस पर पूर्णतया चरितार्थ हुई।

तथापि विलम्ब के कारण कुछ लाभ भी हुआ। म०म० मिश्र जी तथा डाक्टर **जयकान्त मिश्र जी** आयास करने पर भी पण्डितराज **राजेश्वर शास्त्री जी** (वाराणसी) की मातृका का संग्रह नहीं कर पाये थे, किन्तु सौभाग्यवश हम लोगों को उस मातृका के उपयोग करने का अवसर प्राप्त हो गया। इसी प्रकार गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष **डा० भगवती प्रसाद** सिंह की बीज-कोषात्मक व्यक्तिगत मातृका का भी उपयोग हम लोगों ने किया। स्वामी **विद्यारण्य जी** से, जो **'मूर्खारण्य' जी** नाम से अधिक परिचित हैं, समय-समय पर सत्परामर्श उपलब्ध हुए, जो अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुए। गुह्यकाली खण्ड की प्रेसकापी एवं परिशिष्ट आदि का अवलोकन करके अपनी सम्मति देकर अनुगृहीत करने वालों में स्व० पण्डितराज **राजेश्वर शास्त्री जी** वाराणसी, तथा प्रयाग के मूर्धन्य पण्डित स्व० **प्रो० सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी** तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रति-उपकुलपति एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष **डा० आद्या प्रसाद मिश्र जी** का नाम यहाँ सादर स्मरणीय है। इसके सम्पादन क्रम में पं० **श्री सीता नाथ झा** तथा पं० **श्री चन्द्रशेखर शुक्ल** का योगदान भी प्रशंसनीय है।

ग्रन्थ की विशालता के कारण इस गुह्यकाली खण्ड को तीन भागों में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। तदनुसार प्रथम भाग में पटल संख्या १ से ९ पर्यन्त समाविष्ट है। विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें उपासक की अर्हता, मूल (जाप्य) मन्त्र, उपमन्त्र, तान्त्रिक गायत्री, मूलमन्त्रों का षडङ्ग तथा षडङ्गन्यास, विविध यन्त्र, उपासक की दिनचर्या, तान्त्रिक सन्ध्या आदि विधियाँ, उपास्य देवता के अनेक ध्यान, तथा उपासना के अङ्गभूत विविध न्यास आदि का वर्णन है। मूलग्रन्थ के वाक्यों से तुलनीय उपनिषद् वाक्यों का मूल निर्देश टिप्पणी में पाठभेद के साथ ही किया गया है तथा परिशिष्टों में उन सभी मन्त्र आदि का स्वरूप उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है जिन की चर्चा विषय वस्तु के प्रसंग में यहाँ की गयी है। इसी प्रकार बीज, उपबीज, विविध कूट एवं उपकूट आदि की वर्णानुक्रम सूची भी समाविष्ट है। इसी भाग की भूमिका में मातृकापरिचय, मूलमातृकानिर्णय, पाठनिर्णय की प्रक्रिया, लेखक का परिचय, रचना काल, रचना के उद्देश्य, इस संहिता का वैशिष्ट्य आदि विविध विषयों का यथामति सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है।

इस खण्ड के द्वितीय भाग में पटल संख्या १० से १२ तक समाविष्ट हैं। इसमें


विद्यापीठ-सुमञ्जुल-
२५-९-१८७१ ई.



पूजा की साङ्गोपाङ्ग पद्धति निर्दिष्ट है। यन्त्र तथा प्रतिमा की दैनिक पूजा का विधान, देवी के दशमुखों की पूजा तथा इसके अङ्ग रूप में अन्य करणीय विधियाँ, आवरणपूजा, बिन्दुपूजा तथा शक्तिपूजा आदि का विशेष विवरण दशम पटल का विषय है। एकादश पटल में मोक्ष साधक योग पद्धति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। और द्वादश पटल में काम्य एवं नैमित्तिक पूजा की विधियाँ सुस्पष्ट रूप से वर्णित है।

इस खण्ड के तृतीय अथवा प्रस्तुत भाग में केवल दो विस्तृत पटल हैं, त्रयोदश तथा चतुर्दश। शारदीय पूजा (नवरात्र विधि) का उद्भव एवं इसके विधि विधान की पद्धति त्रयादेश पटल का विषय है। और अन्तिम (चतुर्दश) पटल में दमनारोपण और पवित्रारोहण कर्मों के सम्पूर्ण कर्तव्यता भाग तथा पद्धति का विवरण दिया गया है।

इस भाग के परिशिष्टों में पृथक् रूप से उपलब्ध कालकालीखण्ड का मेधा-साम्राज्यप्रद अथवा सुन्दरीशक्तिदानाख्य सहस्रनाम, इसी संहिता का बीजकोश (तृतीय एवं चतुर्थ पटल के पद्य भाग) उल्लिखित ग्रन्थों की सूची तथा विशिष्ट शब्दों की पृष्ठाङ्क निर्देश पूर्वक अनुक्रमणिका का भी समावेश किया गया है जो तान्त्रिक साधक एवं अनुसन्धाताओं के लिए लाभप्रद हो सकता है।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि इस भाग में मातृका के अनुरोध से पृ० ७६ में श्लोक संख्या ८९९ से ९०९ (पूर्वार्द्ध) तक का अंश अनावश्यक रूप से मुद्रित हो गया है जो प्रासङ्गिक नहीं प्रतीत होता। इस अंश के लिए उपयुक्त स्थान पृ० ८४ में ९८९ श्लोक के बाद का भाग प्रतीत होता है जहाँ वह अंश स्वयं समाविष्ट है। वस्तुतः मातृका लेखक का यह प्रमाद सम्पादकीय अनवधानता के कारण अनुसृत हो गया है, तदर्थ सुधी पाठक के समक्ष हम क्षमायाची हैं।

प्रस्तुत संहिता के सम्पादन का समापन भी यथार्थ में देवी कृपा का ही सुफल है। अन्यथा जहाँ इस रहस्यविद्या के प्रकाशन रूप अपराध का दण्ड—**"देवी क्रुद्धा च तं पापं सान्वयं पातयत्यधः"** कहा गया है, वहाँ इसका निर्विघ्न पुरा होना अन्यथा सम्भव कैसे हो सकता है?

इस में अनेक सम्पादकीय त्रुटियाँ होनी संभावित हैं, ऐसी स्वतः मेरी धारणा है। किन्तु इतना अवश्य है कि अपनी बुद्धि एवं क्षमता के अनुसार मैंने इसे अधिक से अधिक निर्दोष एवं उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। आशा है निम्न सूक्ति के अनुसार विद्वान् इसमें कमियों तथा त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए मुझे सहारा देंगे—

गच्छतः स्खलनं क्वपि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ।।

अन्त में उन संस्थाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अपना हार्दिक आभार तथा कृतज्ञता व्यक्त करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनकी साक्षात् या परोक्ष सहायता इस ग्रन्थ के सम्पादन क्रम में मिली है। इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम अपने आचार्य सहृदय-प्रशासक **डा० गया चरण त्रिपाठी जी** का उल्लेख करना चाहूँगा, जिनका सर्वविध सहयोग एवं उत्साहवर्धक सत्परामर्श सदा सुलभ रहा। विशिष्टशब्दसूची के निर्माण में सहायता के लिए पं० **के रघुनाथन्**, अनुसन्धान सहायक तथा कु० **रीता विश्वास** एवं **श्री प्रकाश पाण्डेय**, विद्यापीठ के अनुसन्धित्सु छात्र, धन्यवाद तथा शुभाशंसा के पात्र हैं।

इलाहाबाद ब्लॉक वर्क्स के सभी सहयोगी बन्धु धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने सुचारु रूप से इसके मुद्रण में सहयोग किया है। इति शिवम्।

विनीत
किशोर नाथ झा
व्याख्याता
गङ्गानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
इलाहाबाद

विषयसूची

विषयः पृष्ठसंख्या

[त्रयोदशतमः पटलः १–१३८]

विषयः पृष्ठसंख्या

विषयः	पृष्ठसंख्या

विषयः पृष्ठसंख्या

विषयः पृष्ठसंख्या

विषयः पृष्ठसंख्या

विषयः	पृष्ठसंख्या

[चतुर्दशतमः पटल—१२६-२७०]

विषयः	पृष्ठसंख्या

विषयः	पृष्ठसंख्या

विषयः	पृष्ठसंख्या

महाकालसंहिता

गुह्यकालीखण्डः

त्रयोदशतमः पटलः

[काम्यार्चनोपक्रमः]

देव्युवाच

नित्यार्चनं श्रुतस्त्वत्तस्तथा नैमित्तिकार्चनम् ।
प्रभो तन्मे वदेदानीं कथं काम्यार्चनं भवेत् ॥१॥
नाथ किं तन्नित्यवत् स्यात् नैमित्तिकवदप्यथ ।
[1]तद्विशेषेण मे ब्रूहि शुश्रूषा बाधते हि माम् ॥२॥

महाकाल उवाच

काम्यं, न नित्यवद् देवि नैमित्तिकवदुच्यते ।
[2]नित्यादप्यधिकं भिन्नं स्वल्पं नैमित्तिकादपि ॥३॥
काम्यं, न तत्रोपरागपर्वाब्दीयतिथिक्रमाः ।
निमित्तापेक्षणं यद्वत् पूर्वंतत्र परिकीर्तितम् ॥४॥
तथात्र [3]कामनापेक्षादिष्टस्यागन्तुकस्य न ।
अथास्य भेदबाहुल्यं प्रकारे विनिगद्यते ॥५॥
तिथिर्भवतु या कापि दिनं वा रात्रिरेव वा ।
कामना द्रव्यसम्पत्तिरु[4]भयं कारणं मतम् ॥६॥
[5]एकेनापि भवेत् काम्यार्चनं त्रिदशवन्दिते ।
क्वचिदेवोभयं विद्यान्न भवेदेकमन्तरा ॥७॥

१–सत्यरूपेण घ । २–नित्यार्चनं सदा कुर्यात्ततो नैमित्तिकार्चनम् घ ।
३–काम्यार्चनं च कथितं नगनन्दिनि घ ।
४–ह्योमद्रव्यं तु यद्यदा घ । ५–यदा देवासुरे युद्धे घ ।

कामनाभेदतो द्रव्यभेदा भूयांस ईरिताः ।
[1]पूर्वं पूर्वं तु बाधकं स्याद् बाध्यमेव परं परम् ॥८॥
उभयोर्बाधकं ज्ञेयं सर्वाद्यं जगदीश्वरि ।
तत्रापि प्रथमं वच्मि कामनाया भिदाः पराः ॥९॥
तदनु द्रव्यसम्पत्तेर्भेदान् वक्ष्यामि भूरिशः ।

[काम्यपूजायाः कालविषये विविधमतानि]

प्रागुत्तरं भवेत् सिद्धेस्तदिष्टमुभयं बुधैः ॥१०॥
कर्तुरेव मनस्तत्र प्रमाणं कालयोर्द्वयोः ।
न शास्त्रमिति सौलेया एवमेव दिगम्बराः ॥११॥
मन्मतं तु वरारोहे समाकलय तत्त्वतः ।
कृतायामेव सेवायां यद्यत्स्वाभिमतं भवेत् ॥१२॥
तत्प्रार्थ्यते महीपालात्प्रभोर्त्राप्यनुयायिभिः ।
एवमत्रापि विज्ञेयं भाण्डिकेरा अदो जगुः ॥१३॥
कामनायां कालभेदाद् द्रव्यलाभेन ते मताः ।

[कामनानुकूलमासनिर्णयः[

कालो मासर्तुपक्षाहोनक्षत्रतिथिसङ्क्रमाः ॥१४॥
क्रमेण वर्णयामीशि दत्तचित्ता निशामय ।
गुप्तपापक्षयो राधे ज्येष्ठे पुण्योदयस्तथा ॥१५॥
आषाढे सङ्कटत्राणं श्रावणेऽवग्रहक्षयः ।
दारिद्र्यनाशो भाद्रेऽपि मारीनाश इषेऽपि च ॥१६॥
बन्धूनां विप्रयुक्तानां मिलनं कार्तिके मतम् ।
शस्यागमो मार्गशीर्षे पौषे राजभयक्षयः ॥१७॥
स्वर्गावाप्तिस्तथा माघे फाल्गुने कलहे जयः ।
उपसर्गक्षतिश्चैत्रे मासीयाः कामना इमाः ॥१८॥

१–यदा तु कष्टमेकं स्याद् घ ।

[कामनानुकूलऋतुवर्णनम्]

वसन्ते रतिसामर्थ्यं ग्रीष्मे गोऽजाविकोन्नतिः ।
प्रावृष्यरातिनिधनं शरद्यारोग्यमेव च ॥१९॥
हेमन्ते व्रीहिधान्यर्द्धिः शिशिरे चेतिसंक्षयः ।

[कामनानुकूलपक्षनिर्णयः]

शुक्ले धर्मामृतावाप्तिः कृष्णे कामार्थयोरपि ॥२०॥

[कामनानुकूलदिननिर्णयः]

रवौ ज्वरोपशमनं सोमे नेत्रामयक्षयः ।
अनुरागविवृद्धिः स्यात्कुजे स्त्रीपुंसयोर्मिथः ॥२१॥
बुधे जाड्यापहरणं विद्यालाभो गुरौ तथा ।
क्लीबतापहृतिः शुक्रे शनावुत्पातसंक्षयः ॥२२॥

[कामनानुकूलनक्षत्रनिर्णयः]

अन्नावाप्तिरथाश्विन्यामभिचारो यमोडुनि ।
उच्चाटनं कृत्तिकायां रोहिण्यां वाग्मिता तथा ॥२३॥
मृगशीर्षे त्वायुराप्तिर्मिथोद्वेषं तु रौद्रभे ।
पुनर्वसौ यानलाभः पुष्ये च समरे जयः ॥२४॥
अश्लेषायां सर्पभयनिवारणमपीष्यते ।
बलाधिक्यं मघायां स्याद्यौनिभे बह्वपत्यता ॥२५॥
भवेदुत्तरफाल्गुन्यां ग्रहदोषनिवारणम् ।
तथैव हस्तनक्षत्रे परचक्रनिवारणम् ॥२६॥
स्थिरा मैत्री च चित्रायां स्वात्यां मोहनमेव च ।
विशाखायां संवदनं नानासिद्धिश्च मित्रभे ॥२७॥
ज्येष्ठायां नष्टवित्ताप्तिर्गरदानं च नैर्ऋते ।
पूर्वाषाढासु कन्याप्तिरुन्मादोपशमो भवेत् ॥२८॥
उत्तराषाढनक्षत्रे श्रवणे मोक्ष एव च ।
धनिष्ठायां खेचरत्वं मेधा वारुणभे भवेत् ॥२९॥

पूर्वभाद्रपदे चैव जायते चिरजीविता ।
तथा चैवोत्तराभाद्रे सम्पत्तिरतिभूयसी ॥३०॥
[1]सन्तत्यविच्छित्तिरपि रेवत्यां परिकीर्तिता ।

[काम्यपूजायां तिथिफलम्]

काम्यार्चनं प्रतिपदि बहुकल्याणकारकम् ॥३१॥
गुर्विण्याः पुत्रकामार्थं द्वितीयायां समर्हणम् ।
[2]राजभीत्यपनोदाय तृतीयायामुदाहृतम् ॥३२॥
बालग्रहापनोदाय चतुर्थ्यां काम्यपूजनम् ।
पञ्चम्यां शत्रुनाशार्थं षष्ठयामुत्पातशान्तये ॥३३॥
[3]स्त्रीपुंसयोस्तु सप्तम्यामनुरागविवृद्धिकृत् ।
[4]देवीप्रीतिस्तथाष्टम्यां नवम्यां विजयो रणे ॥३४॥
प्रवासितपरावृत्त्यै दशम्यां काम्यमर्चनम् ।
एकादश्यां धनावाप्त्यै द्वादश्यां पुष्टिवर्धनम् ॥३५॥
सर्वसिद्धिस्त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामथामृतम् ।
योगक्षेमपरिप्राप्त्यै पञ्चदश्यां समर्चनम् ॥३६॥

काम्यपूजायां संक्रान्तिफलम्]

पारलौकिकसिद्धिः स्यदुत्तरायणसङ्क्रमे ।
तथैव लौकिकक्षेमसिद्धिः स्याद् दक्षिणायणे ॥३७॥
सङ्क्रमादिषु चान्येषु योगयोगादिभिस्तथा ।
विविधाः कामनास्तास्ता भवन्ति वरवर्णिनि ॥३८॥
यामलादिषु ते प्रोक्ता भैरवीसंहितास्वपि ।
बाहुल्यभयतो नोक्ता मया देव्यत्र कामनाः ॥३९॥

१–सर्वसम्पत्करी सौख्यम् घ ।
२–तृतीयायां सदा सौख्यं पुत्रकार्तिवनं भवेत् ग. घ.
३–सप्तम्यां सौख्यमाङ्गल्यं सर्वकल्याणमेव च घ. ।
४–सन्तति च तथा० घ. ।

इति कालसमुद्देशः कश्चिदुद्दिष्ट ईश्वरि ।

[काम्यपूजायां समयानुकूलद्रव्यलाभवर्णनम्]

द्रव्यलाभमथो वक्ष्ये ज्ञेयं तद् द्विविधं वुधैः ॥४०॥

कालसंवलिताः केचित्तदसंवलिताः परे ।

[काम्यपूजानुकूलपुष्पाणि]

नीपाशोकपलाशश्रीफलपत्रसरोरुहम् ॥४१॥

मल्लिकाकेतकीजातीकरवीरजवासनाः ।

बन्धूकानि च पुष्पेषु, फलेषु च निशामय ॥४२॥

[काम्यपूजानुकूलफलानि]

लकुचाम्रातकक्षीरिकरमर्दाम्लकण्टकाः ।

नारङ्गाम्रपनसबीजपूरकपित्थकाः ॥४३॥

मृद्वीकादाडिमफले तालीमानि च पार्वति ।

वैशाखादिषु लब्धा[भ्या?]नि विशेषाद् देशकालयोः ॥४४॥

[काम्यपूजानुकूलद्रव्यवर्णनम्]

काम्यार्चाहेतुकानि स्युरन्यान्यपि च मे शृणु ।

कपिलायाः सवत्सायाः क्षीरं मलयजद्रवः ॥४५॥

मृतखण्डविकाराश्च धूपश्चाम्बरनामकः ।

सार्षपं सितमाध्वीकं दिव्यशक्तेरुपागमः ॥४६॥

लक्षाङ्कबुकपुष्पाणि[?] भृष्टेल्लिसचरायनौ [?] ।

महामादककर्त्री च हाला द्वीपान्तरागता ॥४७॥

समागमः कौलिकानां सर्वावयवसम्भृतः ।

ताम्बूलोपगमश्चापि बह्वन्नव्यञ्जनोच्चयः ॥४८॥

एषामधिगमे देवि राधादिषु च पूर्ववत् ।

तैथबालेयाधिगमानधुना कलय प्रिये ॥४९॥

[काम्यपूजानुकूलबलिद्रव्यवर्णनम्]

गोधा शश उरभ्रश्च कमठः कृष्णसारयुक् ।

गवयः शूकरश्छागो महिषो नकुलोऽपि च ॥५०॥
गोकर्णो मकरश्चापि द्वीपी खड्गश्च केसरी ।
आद्यादिपञ्चदश्यन्ततिथिद्रव्याप्तयः क्रमात् ॥५१॥
भैरवीसंहितास्वेवं ज्ञातव्या बारतार[न?]योः ।
मासानां सङ्क्रमाणां च **यामलादिषु** पार्वति ॥५२॥
कामनाद्रव्यलाभौ द्वावेवमुक्तौ मया तव ।
उभयोरप्यभावेऽपि स्वेच्छाहेतुत्वमृच्छति ॥५३॥
नान्वेति नित्यं केनापि ते पुनर्नित्यमन्वितः[ताः] ।
परस्परं ते च पुनर्व्यवस्थेदृग्विधा स्थिता ॥५४॥
उत्तरोत्तरतश्चैषां बाध्यता च निरूपिता ।
काम्येऽपि नैमित्तिकतां भाण्डिकेराः प्रकुर्वते ॥५५॥
युक्त्या सा चाप्तिरूपेति तन्नाहमिति कीर्तये ।
तदा संजाघटीत्येतद् यदि पर्वसु जायते ॥५६॥
उदीरितादिभिन्नेषु योगजेष्वपि पर्वसु ।
दिनेष्वघटितेष्वेवं प्रकारैरपि भूरिभिः ॥५७॥
कामनाभिरवाप्ता वाथवा देवि निजेच्छया ।
काम्यार्चाघटितेऽवश्यं दुष्टोक्तिरत एव सा ॥५८॥
इदानीमत्र यत्प्रोक्तं कर्तव्यत्वेन भूरिशः ।
हेयत्वेनोदितं यच्च तत्सर्वं कलय प्रिये ॥५९॥

[काम्यपूजायां कौलिककर्तव्यतानिर्णयः]

कौलिकानामशेषाणां मतमत्रेदृशं स्थितम् ।
शक्त्या सहोपविश्यैकासने वामाङ्गलग्नया ॥६०॥
काम्यार्चनं प्रकर्तव्यं न च तत्पूजनं पृथक् ।

[अत्र स्मार्तकर्तव्यतानिर्णयः]

अथोपविश्य पीठे च यजनं याजनं पृथक्[1] ॥६१॥

१–इयं पंक्तिः केवलं घ पुस्तके ।

कुर्वन्ति चेत् प्रकुर्वन्तु स्मार्तानां नैतदिष्यते ।

[कामनानुकूलपुष्पधूपवर्णनम्]

क्रियाभेदाद् गन्धपुष्पधूपदीपभिदाः पृथक् ॥६२॥
सात्त्विक्यां कामनायां तु सितो गन्धः प्रशस्यते ।
नैवेद्यं फलताम्बूल दान वश्वः[?] प्रशस्यते[1] ॥६३॥
उच्चाटनवशीकारे प्रीतये वैरिणां जये ।
गन्धपुष्पे विशेषेण कर्तव्ये लोहिते सदा ॥६४॥
मोहने कामिनीलाभे[2] पीतमेवोभयं मतम् ।
कृत्याभिचारे द्वेषे च मारणे चासितं द्वयम् ॥६५॥

[कामनानुकूलदीपवर्तिविवरणम्]

दीपवर्तय ईदृश्यस्तत्तद्वर्णाढ्यतन्तुभिः ।
विधातव्याः प्रयत्नेन तत्तत्कार्यप्रसिद्धये ॥६६॥
गुग्गुल्वगुरुधूपस्तु सात्त्विकेषु प्रशस्यते ।
तथा सरलनिर्यासो राजसेषु प्रकीर्तितः ॥६७॥
गवलाले [बालैलै च] तथा सिद्धार्थकं तामसकर्मणि ।
यज्ञादिधर्मकैवल्यतपस्तीर्थादिलब्धये ॥६८॥
नैवेद्यं फाणिताज्याक्ता त्वफलाभानुभृष्टयः ।
इतरस्या इराक्रव्या[?]ण्डजमाध्वीकशक्तयः ॥६९॥
पूर्ववत् फलकूष्माण्डेक्षुदण्डावलयो मताः ।
अपरस्यै पतत्येशीपूररण्योत्थजन्मिनः ॥७०॥
इत्यादिवस्तूनां भेदा ज्ञातव्या स्वकया धिया ।

[पात्रारचने निर्णयः]

नैमित्तिकवदप्यत्र पात्राणां रचना प्रिये ॥७१॥
मतानुसारतः स्वस्वव्यवस्थाश्रयणादपि ।
विधिमन्त्रौ च तावेव वेदितव्यौ वरानने ॥७२॥

१–इयं पंक्तिः केवलं घ पुस्तके । २–स्तम्भने च तथोच्चाटे घ. ।

सामग्रीशोधनं चापि तथैवानुक्रमावली ।
विशेषो योऽधिकोऽस्तीह तमाकलय तत्त्वतः ॥७३॥
[1]सर्वेषामुपचाराणां प्रदानाय वरानने ।
सन्ति यद्यपि मन्त्रास्ते पृथक् पृथगुदीरिताः ॥७४॥
तथापि तेषां चरमे मूलमन्त्रं प्रकीर्त्य हि ।

[वस्त्वर्पणार्थं मूलमन्त्रनिर्देशः]

भगवत्यै गुह्यकाल्यै तद्वस्तु शिर उच्चरेत् ॥७५॥
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं यावदेकप्रपूजने ।
न्यासस्य यस्य कस्यापि प्रागन्तेऽपि सुरेश्वरि ॥७६॥
तत्तन्मनूदितं कार्यं षडङ्गमृषिसंयुतम् ।
तत्तन्न्यासार्पणमपि विधाय विनिवेदयेत् ॥७७॥

[सङ्कल्पविवरणम्]

उपयोगोल्लेखपूर्वं सङ्कल्पं पुरतश्चरेत् ।
आवश्यकतया देवि कर्तव्यत्वेन निश्चितान् ॥७८॥

[काम्यार्चायामेकादशन्यासकर्तव्यताभिधानम्]

[2]काम्यार्चायां ब्रुवे न्यासांस्तिष्ठत्सु निखिलेष्वपि ।
द्वे मातृके द्वौ च पीठौ कर्तव्यत्वेन निश्चितौ ॥७९॥
सबिन्दुरेका पुरतोऽन्या कालीनरसिंहका ।
सामान्यो योगरत्नाख्यः पीठद्वयमिदं मतम् ॥८०॥
वक्त्रन्यासस्तथा चैको डाकिनी योगिनी तथा ।
कुलतत्त्वं सिद्धिचक्रमिदमावश्यकं द्वयम् ॥८१॥
मन्त्रन्यासस्तथा षोढास्वप्येकं किञ्चिदेव हि ।
कार्या एकादशापीमे न्यासाः परमशोभनाः ॥८२॥
एतेषामविधानेन काम्यार्चाङ्गविहीनता ।

१–इयं पंक्तिः केवलं घ पुस्तके ।

२–भूतप्राणप्रतिष्ठा वै घ, ।

भवेदित्याकलय्यैतानावश्यकतया चरेत् ॥८३॥
अन्यानपि चरेच्छक्तौ फलाधिक्यसमीहया ।

[बलौ युग्मार्पणविधानम्]

स्वस्वभक्तिविशेषेण विधेयीकृतविग्रहान् ॥८४॥
पशून् वा पक्षिणः कोशानिक्षून् कूष्माण्डमेव वा ।
दद्याद्युग्मानेव शिवे नत्वयुग्मान् कदाचन ॥८५॥
अयुग्मदानतः काल्याः कोपं समधिगच्छति ।

[शक्त्यर्चायाः शिवाबलेश्चावश्यकताभिधानम्]

आवश्यकतया कार्यौ शक्त्यर्चनशिवाबली ॥८६॥

[तिथिसङ्करस्यात्र निर्दोषताभिधानम्]

एकतिथ्यर्चनारम्भ तिथ्यन्तरसमापने ।
दोषानावहतो नैवात्र काम्यपरिपूजने ॥८७॥
नैमित्तिके तु ते दोषमुत्पादयत ईश्वरि ।

[काम्यार्चने साङ्गतायाः महत्त्वम्]

काम्यार्चायामङ्गहान्या फलमेव न जायते ॥८८॥
सा न दोषकरी नित्येऽल्पकृन्नैमित्तिके तथा ।
इति काम्यविधानं ते कथितं जगदीश्वरि ॥८९॥
एतावानेव काम्येषु विशेषः परिकीर्त्यते ।
नान्यः कोऽप्युभयोर्ज्ञेयः काम्यनैमित्तिकाख्ययोः ॥९०॥
स क्रमस्तद् विधानं च ते च मन्त्राः स विस्तरः ।
सा रीतिस्तच्च विज्ञानं सैव द्रव्यस्य सम्भृतिः ॥९१॥
त एव बलयश्चापि तेषां दाने विधिः स च ।
परिपाटी सैव तथा सर्वः पूर्वोदितो विधिः ॥९२॥
सङ्कल्पः कामनाभेदस्तिथिर्यादृच्छिकी तथा ।
पूर्वोदिता तथा न्यासा इयान् भेदः परं प्रिये ॥९३॥
कौशलं त्रिष्वपि सममभियोगस्तथैव च ।

गुरूपदेशो बुद्धिः स्वा सत्तर्केणोह एव च ॥९४॥
कापालिका भाण्डिकेरा किञ्चिदत्र प्रकुर्वते ।
विरुद्धाचरणप्रायं तन्नात्र कथितं मया ॥९५॥
त्रिपुरघ्नानिदेशेन जुगुप्सिततयाऽपि च ।
भैरवत्वं समारोप्य स्वस्मिन्नुत्तानशायिनि ॥९६॥
हृत्कल्पितासनायाञ्च शक्तौ कालीत्वमेव च ।
शिष्यद्वाराथान्यकौलद्वारा काम्यार्चनक्रमे ॥९७॥
मह्यन्तीरितैस्तत्तद्विधानैर्भैरवोदितैः ।
भैरवीसंहितामध्ये तद्विधानं निरूपितम् ॥९८॥

[शक्तिपूजायाः निन्द्यतास्मार्तकृत्यता च]

न मया निन्दितत्वेन स्मार्तकृत्यतया तथा ।
अन्यान्यपि च कर्माणि गर्हितानि प्रकुर्वते ॥९९॥
नोदीरयाम्यहमतो निन्दितानि श्रुतिष्विति ।
इत्थं त्रिविधमाख्यातमर्चनं ते सुरेश्वरि ॥१००॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सविधानमनुक्रमम् ।

[शारदीयपूजोपक्रमः]

अधुना कथयिष्यामि सरहस्यां विशेषतः ॥१०१॥
शारदीयाञ्च [1]वासन्तीमर्चां नानाफलप्रदाम् ।
मनीषिणो विदधति विचारानत्र भूयसः ॥१०२॥
स्मृत्यध्वचारिणः सर्वे कौलिकाः सर्व एव च ।
त्रैविध्यमध्ये किंरूपा भवतीयं समर्हणा ॥१०३॥

[नित्यार्चास्वरूपम्]

यस्याकरणतः पापं जायते नित्यमेव तत् ।

[काम्यार्चास्वरूपम्]

विधानाद् यस्य च फलं जायते काम्यमेव तत् ॥१०४॥

१–'कर्तव्यमर्चां' घ ।

[नैमित्तिकार्चास्वरूपम्]

अननुष्ठानतो यस्य पापमुत्पद्यते न हि ।
विधानार्थफलं वापि तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥१०५॥
इयं या शारदी पूजा कथ्यते सा किमात्मिका ।
केचित्काम्यां वदन्त्येनां केचिन्नैमित्तिकीमपि ॥१०६॥
[1]पूर्वं फलश्रवणतः शारदागमनात्परे ।
नित्यामेनां नैव केचिद्वदन्ति कुलमार्गगाः ॥१०७॥
एतन्निर्णायिका ज्ञेया जैमिनीयाः सुवाग्मिनः ।
ये चोपन्यासकर्तारो नानाधिकरणक्रमैः ॥१०८॥
विवदन्ते मिथोऽन्योन्यं कुतर्काध्वनि दर्शकाः ।
नानापुराणसंबद्धं मदुदीरितमेत्र हि ॥१०९॥
मीमांसकाः प्रगृह्णन्ति तथा व्यवहरन्त्यपि ।
संशयेऽस्मिन् वरारोहे मत्तः कलय निर्णयम् ॥११०॥

[शारदीयपूजायास्त्रैविध्याभिधानम्]

त्रैविध्यमप्यत्र भवेत् तत्र युक्तिं निशामय ।
वीप्साविधी च सर्वत्र नित्यत्वपरिबोधकौ ॥१११॥
स्मृत्यागमपुराणाद्यौ द्विः पदोच्चारणात्प्रिये ।
विध्युक्तस्य नकारस्य कथनादपि बुध्यते ॥११२॥
नित्यतास्यापरा युक्तिरन्यापि च निगद्यते ।
त्रिपुरघ्नाय यद्वाक्यं पुरोवाच सुरेश्वरी ॥११३॥
शारदीयामिमां पूजां न करिष्यन्ति ये नराः ।
ते पतिष्यन्ति निरये पापाः पूजापहारकाः ॥११४॥
इत्यादिवाक्यान्नित्यत्वमभिधानादघश्रुतेः ।
घटते काम्यता चास्यास्तत्र हेतुं वदामि ते ॥११५॥
अत्रापि चण्डिकावक्त्राम्बुजोद्भूतं सुधासमम् ।

1–पूजा घ ।

वचः कलय कल्याणि काम्यताप्रतिपादकम् ॥११६॥
शरत्कालीनपूजां ये कर्तारो भक्तिभाविताः ।
तेषां दारान् सुतान् भोगं वित्तमारोग्यमुन्नतिम् ॥११७॥
तुष्टा दास्याम्यहं शम्भो स्वर्लोकवसतिं सदा ।
[1]इत्थं नानाफलोन्मेषश्रवणात् काम्यतापि च ॥११८॥
शारदागमनं हेतुमुपन्यस्यास्य येऽबुधाः[2] ।
नैमित्तिकत्वं ब्रुवते न ते पण्डितबुद्धयः ॥११९॥
कालो न स्यादुपादानकारणं कस्य वस्तुनः ।
तदागमनहेतुत्वे नित्यस्यापि हि काम्यता ॥१२०॥
अकृते जायते नैनः कृते च न फलं भवेत् ।
नैमित्तिकस्येदृशं हि ब्रुवाणैर्लक्षणं प्रिये ॥१२१॥
फलाद्याधायके किं नो दृश्यते वचने उभे ।
तस्मादत्र हि विज्ञेयं नित्यकाम्यत्वमीश्वरि ॥१२२॥

[शारदीवासन्तीपूजयोरैक्यताभिधानम्]

यथा च शारदीयार्चा वासन्त्यर्चा तथैव च ।
नानयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि निगमादिषु ॥१२३॥
आसीत् पूर्वं महापूजा वासन्त्येव जगत्त्रये ।

[शारदीपूजोद्भवकथा]

रामरावणयोर्युद्धे जाते त्रेतायुगान्तरे ॥१२४॥
कालिकाङ्गीकृतत्वेन हन्तुं रामोऽशकन्न तम् ।
ततो वै चिन्तितो भूत्वा ब्रह्मा सुरगणैर्वृतः ॥१२५॥
कालिकां बोधयामास हिमालयकृतालयाम् ।
त्वदुपासकयोर्देवि युद्ध्यतोर्घोरमाहवे ॥१२६॥

---

१ – इतः पूर्वं पंक्तिरेकाधिका घ पुस्तके—
सदाकाले तु प्राप्ता लक्ष्मी विद्या वसति सदा [?] ।
२लोद्देश्या ख. ग. । ३—पार्वति घ ।

अस्त्रशिक्षालाघवञ्च समागत्यावलोकय ।
एवमभ्यर्थिता देवी अकाले बोधिता तथा ॥१२७॥
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं लङ्कां द्रष्टुं रणं तयोः ।
शुक्लप्रतिपदीषस्य प्राप्ता तं देशमीश्वरी ॥१२८॥
सप्तरात्रं निराहारं महद्युद्धमहर्निशम् ।
तयोर्दिव्यास्त्रप्रयोगसंहारपरयोरभूत् ॥१२९॥
रामः शशाक नो हन्तुं राक्षसं काल्युपासकम् ।
स चापि नाशकद्रामं स्वयं विष्णुमुपागतम् ॥१३०॥
समीक्ष्य रक्षसो बाहुबलं देवी तुतोष ह ।
स्वभक्त इति कृत्वास्मिन् पक्षपातं चकार च ॥१३१॥
रक्षस्यनुग्रहं दृष्ट्वा ब्रह्मा सर्वैः सुरैः सह ।
सन्तुष्टाव स्तवैर्दिव्यैर्भक्त्या प्रणतकन्धरः ॥१३२॥
काकूक्त्या प्रणिपातैश्च नमस्कारैः स्तवैरपि ।
तुष्टा ब्रह्माणमूचे सा हृत्स्थं वत्स वरं वृणु ॥१३३॥
वरं वव्रे ततः सार्द्धं त्रिदशैः स चतुर्मुखः ।
त्वत्पादयोर्भक्तमपि त्यजैनं दुष्टराक्षसम् ॥१३४॥
[1]मय्यनुग्रहलेशेन विष्णोर्मान्यतयापि च ।
कृपादृष्ट्या च देवेशि धर्मसंस्थापनाय च ॥१३५॥
त्रिलोकी जायतां स्वस्थाः देवाः सन्तु मखाशिनः ।
तपस्तपन्तु मुनयश्चातुर्वर्ण्यं प्रवर्त्तताम् ॥१३६॥
[2]एष वीरजितांल्लोकाश्छस्त्रपूतं च गच्छतु ।
पूजां प्रवर्तयिष्यामि तव देव्यमरैः सह ॥१३७॥
तिथिमाद्यां समारभ्य यावद् रक्षोवधो भवेत् ।
दिनानि नव ते पूजा भविष्यति जगत्त्रये ॥१३८॥

१—ब्रह्मारुद्रादिदेवाश्वर घ

२—इत आरभ्य 'ईदृशाकारधारिणा...... इतियावत् घ पुस्तके नास्ति ।

नवम्यां निहते वीरे रावणे विश्वकण्टके ।
प्रीतिमुत्पादयिष्यामः प्रभूतिबलिभिस्तव ॥१३९॥
अपरेह्नि दशम्यां ते नीराजनमहोत्सवम् ।
गीतैर्नृत्यैस्तथा वाद्यैर्जलकर्दमकेलिभिः ॥१४०॥
अश्लीलवेशवचनैः शस्त्रास्त्ररचनैरपि ।
रथद्विरदवाहानां सज्जनाविधिभिस्तथा ॥१४१॥
सुराः प्रवर्तयिष्यन्ति मनुष्याश्च महीतले ।
भक्तोऽयं रावणो यद्वत्पादयोस्तवकालिके ॥१४२॥
रामो भविष्यति तथा सदैव तव पूजकः ।
मन्त्रः कोऽपि च ते देवि रामोपासितसंज्ञया ॥१४३॥
सद्यस्तवप्रीतिकरः ख्यातिं जगति यास्यति ।
इत्युक्ता ब्रह्मणा काली बभूवास्य पराङ्मुखी ॥१४४॥
ततो जघान दिव्यास्त्रैः राघवो रावणं रणे ।
तत आरभ्य देवेशि शारद्यर्चा प्रवर्तिता ॥१४५॥
अत एव द्वयी कार्या वासन्ती शारदी तथा ।
केषाञ्चिदपि वासन्त्यां मतभेदो न विद्यते ॥१४६॥
शारद्यां तु त्रयो भेदाः कथ्यन्ते ते मयाऽधुना ।
आश्विनासितपक्षस्य नवमी या शिवर्क्षयुक् ॥१४७॥
बोधयित्वेश्वरीं तस्यां शरदर्चनमारभेत् ।
यावत्स्यान्नवमी शुक्ला तावत्पूजा प्रवर्तते ॥१४८॥
इत्येकः पक्ष उदितो द्वितीयमवधारय ।
प्रतिपद्येव शुक्लायां बोधयित्वा सुरेश्वरीम् ॥१४९॥
अभ्यर्चयेऽन्नवाहानि तन्त्रपौराणिकक्रमैः ।
उदीरितो द्वितीयोऽयं तृतीयं कथयाम्यहम् ॥१५०॥
सायाह्ने बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं प्रबोधयेत् ।
प्रातः प्रवर्तते पूजा सप्तम्यादिदिनत्रये ॥१५१॥

त्रैविध्य ईदृश्यचर्याया त्रिवदन्ते मिथो बुधाः ।

[महिषासुरजन्मोपक्रमकथा]

ब्रवीमि तत्र सिद्धान्तं छिन्नंयेन तमो भवेत् ॥१५२॥
रम्भकल्पे पुरा देवी रम्भासुरतनूद्भवम् ।
अष्टादशभुजा भूत्वा महोघोरतराकृतिः ॥१५३॥
उग्रचण्डास्वरूपेण जघान महिषासुरम् ।
शितेन करवालेन मृतमेनं जहौ तदा ॥१५४॥
पतितं चलितावस्य व्यशीर्यत कलेवरम् ।
नीललोहितकल्पे स पुनरेव व्यजायत ॥१५५॥
उद्वेगकृद्देवतानां तथा यज्ञवियातकृत् ।
इति कृत्वा महामाया भद्रकालीवपुर्द्धरा ॥१५६॥
संभूय षोडशभुजा विशिखेन शितेन हि ।
अवधीत्तद्वपुश्चापि तत्याज गलितं भुवि ॥१५७॥
श्वेतवाराहकल्पादावजायत पुनः स हि ।
जैगीषव्यप्रसादेन पूर्वजातिस्मरोऽभवत् ॥१५८॥

[महिषासुरकृतदेवीपूजावृत्तान्तः]

वारद्वयं हतं ज्ञात्वा देव्यात्मानं पुराऽसुरः ।
स्त्रीवध्यताञ्च विज्ञाय स्वस्यामुष्यां जनावपि ॥१५९॥
कात्यायनमुनेः शापात्स्वप्नदर्शनतोऽपि च ।
एकान्त भक्तिमास्थाय त्रिविधां महिषासुरः ॥१६०॥
आराधयामास कालीं स्वोदर्कपरिशुद्धये ।
दिव्यद्वादशसाहस्रवर्षानन्तरमीश्वरी ॥१६१॥
प्रत्यक्षमागता तस्य वरं वृण्विति चाब्रवीत् ।

[महिषासुरस्य हार्दिकसंशयवर्णनम्]

ततोऽसुरः स ऊचे तां निरीक्ष्य पुरतः स्थिताम् ॥१६२॥

वरं पश्चाद्ग्रहीष्यामि देवि त्वत्तो मनोगतम् ।
आदौ मे संशयं छिन्धि जागरूकं हृदि स्थितम् ॥१६३॥
वारद्वयं मामवधीः सुरारिं रणमूर्द्धनि ।
धृत्वा कां कामाकृतिं त्वमघोरामथ भीषणाम् ॥१६४॥
जन्मन्यस्मिन्नपि पुनः केनाकारेण कालिके ।
मां हनिष्यसि दुर्वृत्तं निखिलामरकण्टकम् ॥१६५॥
निशम्येदृग्वचस्तस्य विहस्य जगदम्बिका ।

[महिषासुरस्य हार्दिकसंशयनिराकरणम्]

चालयन्ती शिरः किञ्चिदुवाच मधुराक्षरम् ॥१६६॥
मदीयतादृशाकारदर्शनेन फलं तव ।
किं भविष्यति दैत्येन्द्र किं नु त्रासमुताप्स्यसि ॥१६७॥
दिदृक्षसे चेदथ तां करालामाकृतिं मम ।
पश्येत्युक्त्वा जगद्धात्री विहाय ललितं वपुः ॥१६८॥

[देव्या उग्रचण्डीस्वरूपप्रदर्शनम्]

उग्रचण्डातनूरूपं दर्शयामास दानवम् ।
ज्वालाकरालवदनमष्टादशभुजान्वितम् ॥१६९॥
दिव्यशस्त्रास्त्रकलितं मुण्डमालाभयङ्करम् ॥
विदीर्णसृक्कयुगलं घोरदंष्ट्रातिभीषणम् ॥१७०॥
बलत्सौदामिनीतुल्यरसनं नाददारुणम् ।
तद्रूपं दितिजो वीक्ष्य न्यमीलयत् लोचने ॥१७१॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रत्युवाच च कालिकाम् ।
घोरमीदृशमाकारं न शक्नोमि तवेक्षितुम् ॥१७२॥
त्रैलोक्यत्रासनं रूपं देवि संहर संहर ।
इत्युक्ताऽसुरराजेन पुनः सा प्रकृतं वपुः ॥१७३॥
धृत्वा तं दर्शयामास ततः स्वस्थो बभूव सः ।

[भद्रकाल्याः स्वरूपप्रदर्शनम्]

भद्रकालीवपुर्भूत्वा पुनः सा परमेश्वरी ॥१७४॥
निरीक्षयामास रूपं द्वितीयं जीवनापहम् ।
तद्रूपदर्शनेप्येष पुनस्त्रासमुपेयिवान् ॥१७५॥
तस्यापि परिवृत्तौ स प्राकृतः संबभूव ह ।
गतभीरथ तां देवीमुवाच दितिजाधिपः ॥१७६॥
ईदृशाकारधारिण्या कथं देवि त्वया सह ।
समरे योद्धुमशकमहं वरमदोद्धतः ॥१७७॥
गरुत्मता सह यथा डुण्डुभस्य रणस्पृहा ।
दावाग्निना पतङ्गानां तिमिरस्य च भास्वता ॥१७८॥
मृगाणां हरिणा चैव द्रुमाणां वायुना तथा ।
भेकानामहिना चापि प्राणिनां शमनेन च ॥१७९॥
तद्वत् भवत्या समं मे कथमासीन्महान् रणः ।
यदतीतमतीतं तदिदानीं ते वरत्रयम् ॥१८०॥

[महिषासुरेण वरत्रयप्रार्थनम्]

वृणेऽहं मम तद्देहि मनोरथपथातिगम् ।

[प्रथमवरः]

एकं सौम्याकारधरा भूत्वाऽस्मिन् जन्मनीश्वरि ॥१८१॥
त्वं मां वधिष्यसि त्राणहेतोरध्वरभोजिनाम् ।

[द्वितीयवरः]

द्वितीयं ते मच्छिरसि वामपादाम्बुजं सदा १८२॥
स्थास्यति प्राणयुक्तस्य पश्यतस्त्वन्मुखच्छविम् ।

[तृतीयवरः]

तृतीयं देववद्यज्ञभागं प्राप्नोमि कश्चन ॥१८३॥
इत्येवमुक्ते वचने महिषेण सुरारिणा ।
उवाच सस्मितं देवी भक्तिप्रणतकन्धरम् ॥१८४॥

[महिषासुरजन्मकथा]

दैत्येन्द्र शृणु मद्वाक्यं यथार्थं मधुराक्षरम् ।
रम्भासुरस्ते जनकस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ॥१८५॥
शङ्करं तोषयामास रम्भकल्पे हिमालये ।
वच उचे हरस्तुष्टो महाभाग वरं वृणु ॥१८६॥
हित्वा सोऽन्यवरं वव्रे भवान् पुत्रो भवत्विति ।
भक्त्या नियमितः कार्यगतित्वात् स महेश्वरः । ॥१८७॥
वरं ददौ स आत्मानं पुत्रीकृतममुष्य हि ।

[महिषासुरस्य रुद्ररूपत्वम्]

तस्माज्जातोऽसि महिषीगर्भे त्वं काममोहितात् ॥१८८॥
साक्षात् त्वं रुद्ररूपोऽसि न सामान्यासुराकृतिः ।
विज्ञायासुरभावं ते शिवेन प्रार्थिता सती ॥१८९॥
स्ववधार्थं, महाबाहो त्वां रणे हतवत्यहम् ।
हतस्यापि हि तेनैवासुरभावो गतोऽभवत् ॥१९०॥
त्वां पुनर्जातमसुरं पुरा रम्भतनूद्भवम् ।
भद्रकालीति विख्याता हतवत्यहमर्थिता ॥१९१॥
जन्मन्यस्मिन्निदानीं ते भाव आसुर ऊर्जितः ।
ममाराधनसामर्थ्यादपयातोऽसुरोत्तम ॥१९२॥
द्विजदेवतपोयज्ञादिषु द्वेषस्तथागतः ।

[महिषासुरस्य देव्याराधनजन्यैश्वर्याभिधानम्]

तावकीनं महो यत्तदैश्वरं परमं महत् ॥१९३॥
तत्तेऽधुना समायातं मदाराधनहेतुतः ।
यावत्तवासुरो भावः स्थिता देहे सुराधिप ॥१९४॥
तावद्वै विनिहत्याजौ मया त्यक्तोऽसि विस्रवत् ।

[महिषासुरे देव्या अनुग्रहाभिधानम् कात्यायनस्य शापवृत्तान्तवर्णनं च]

इदानीं ते करिष्यामि सुमहान्तमनुग्रहम् ॥१९५॥

तत्र हेतुं निबोध त्वं मत्तो दानवपुङ्गव ।
आदौ तव तपो घोरं पुनः शापो मुनेरपि ॥१९६॥
पुरा वरमदोन्मत्तो जित्वा सेन्द्रान् दिवौकसः ।
आसाद्य परमैश्वर्यं सहितोऽसुरपुङ्गवैः ॥१९७॥
भ्रमन् धरित्रीमखिलां विहरंश्च यतस्ततः ।
अकुतोभयसञ्चारो दासीकृतजगत्त्रयः ॥१९८॥
कात्यायनाख्यस्य मुनेराश्रमं गतवानसि ।
यदृच्छया स्वैरगतिः प्रलम्भार्थं तपस्विनाम् ॥१९९॥
तत्रासन्निहितो ह्यासीत् स हि श्रेष्ठस्तपस्विनाम् ।
एकाकी पर्शुमादाय स्कन्धे वेदं शनैः पठन् ॥२००॥
फलमूलेध्मपत्राणामाहारार्थं गतः क्वचित् ।
कपोतनामा तच्छिष्यो योगाभ्यासपरायणः ॥२०१॥
कात्यायनोटजाभ्यासे बिल्ववृक्षतले स्थितः ।
हुत्वाग्निं मासि तपसि शीतार्तो धर्ममाश्रितः ॥२०२॥
रुद्राक्षमालाभरणो भस्मोद्धूलितविग्रहः ।
मृद्वैणेयाजिनतलकृतासनपरिग्रहः ॥२०३॥
ध्यायन् ज्योतिर्निराकारं गृणन् वेदं सनातनम् ।
निमीलितेक्षणः किञ्चिद्बाह्यसंवित्तिवर्जितः ॥२०४॥
तुरीयामन्त्रजपकृदपुनर्भवहेतवे ।
सुखेनासाचलस्वान्तोऽप्यन्तर्निष्ठमहामुनिः ॥२०५॥
तदवस्थं मुनिं दृष्ट्वा हसंस्त्वमवदोऽखिलान् ।

[महिषासुरस्य मायाबलेन मोहिनीरूपधारणम्]

स्वकीयाननुचरान् दैत्यान् दर्शयित्वा तमञ्जसा ॥२०६॥
भो भोः शृणुत मद्वाक्यं दैत्याः कौतुकगर्भितम् ।
ईदृशं विद्यते मायाबलं सामर्थ्यमेव वा ॥२०७॥

कस्यापि योऽमुं लोभयति कान्तादिविषयादिभिः ।
अन्तर्निष्ठं मनोऽमुष्य परावृत्यापकृष्य च ॥२०८॥
बहिर्निष्ठं करोति द्राग् यस्तं मन्ये सुमायिनम् ।
बाह्यसंवेदनाहीन ईदृग्ध्यानपरोऽप्ययम् ॥२०९॥
मया मोहयितुं शक्यः सद्यः प्राकृतमर्त्यवत् ।
मायाबलं पश्यत मे मोहनं च वशक्रियाम् ॥२१०॥
लीलाकर्म विनोदं च स्वच्छन्दं हसतापि च ।
इत्युक्त्वा कामिनीरूपं झटित्येव त्वमग्रहीः ॥२११॥
त्रिलोकीमोहनकरं किमुतर्षेरमुष्य हि
पीयूषमथनस्यान्ते त्रिदशासुरयोः पुरा ॥२१२॥
परस्परं विवदतोरमृतार्थे धृतात्मनोः ।
मोहनाय यथा विष्णुर्जग्राह ललनाकृतिम् ॥२१३॥
ततोऽपि रुचिरं रूपं गृहीत्वा त्वं हि मायया ।
दिव्यालङ्कारवसनं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥२१४॥
स्थापयित्वातिदूरे स्वान् दैत्येन्द्राननुयायिनः ।
अभ्यर्णमस्य गतवान् विकारान्मान्मथांस्ततः ॥२१५
चेष्टासंवलितान् हृद्यानकरोद्दैवचोदितः ।
विकारमाप च स हि भूताविष्ट इव द्रुतम् ॥२१६॥
मोहितस्तेन रूपेण त्रैलोक्यस्यापि मोहिना ।
कन्दर्पलालसाबद्धहृदयो भोगलोलुपः ॥२१७॥
आत्मानं विस्मरन्नष्टज्ञानो धैर्यच्युताशयः ।
त्वामन्वियाय शनकैर्यत्र यत्रागमोऽसुर ॥२१८॥
उच्चैर्जहास हसति त्वयि कामरसाकुलः ।
रुदत्यपि रुरोदाश्रु[शु] बभ्राम भ्रमति स्मयन् ॥२१९॥
अनुयान्तं भवन्तं तं कपोतर्षिर्निरीक्ष्य ते ।
त्वदीयास्तेकुरसुरास्ताश्रचिक्षुरचामराः ? ॥२२०॥

वारितोऽन्यैरपिमुनिर्मुनिभिर्बुबुधे न सः ।
अथोवाच कपोतस्त्वां स्त्रीरूपाछन्नविग्रहम् ॥२२१॥
विलासिन्यपि मत्प्राणानपहृत्य क्व गच्छसि ।
त्वदीयसुरताकृष्टचेतसं रूपमोहितम् ॥२२२॥
मां विद्धि चञ्चलापाङ्गि तव दासमुपागतम् ।
अधरामृतदानेन जीवय प्राणवल्लभे ॥२२३॥
अनङ्गः प्लोषयत्यङ्गं कथयन् विषयीणि मे ।
उपगूहस्व मां भद्रे जीवनं रक्ष शोभने ॥२२४॥
आलिङ्गयिष्यसि न मां यदि देवि स्वकां तनुम् ।
असुभीरहितं सद्यो जानीहि हरिणेक्षणे ॥२२५॥
वीक्ष्येत्थं विलपन्तं तं निगूढहसितो भवान् ।
प्रत्युवाच स्मितं कृत्वा किमिदं साहसं तव ॥२२६॥
प्रकाशोऽयं समुद्देशः सर्वे पश्यन्ति तापसाः ।
जिह्रेमि बाला योगीन्द्र सखीविरहिता सती ॥२२७॥
रिरंसुर्यदि लुब्धोऽसि मद्रूपेणातिमोहिना ।
आगच्छ श्रीफलाधस्ताद् दास्यामि सुरतं तव ॥२२८॥
इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा तले मालूरशाखिनः
तदङ्क उपविष्टोऽसि कुर्वन् सुरतविभ्रमान् ॥२२९॥
गोमिगोनर्दबाभ्रव्यवात्स्यायनहयाननैः ।
येऽलङ्काराः कामिनीनां कामशास्त्रे निरूपिताः ॥२३०॥
अष्टचत्वारिंशसंख्या अष्टसत्त्वस्वभावजाः ।
भवता ते कृताः सर्वे यैरुन्मत्तोऽभवन् मुनिः ॥२३१॥
त्वया विमोहितं दृष्ट्वा कपोतं मुनिपुङ्गवम् ।
प्रदुद्रुवुर्भयोद्विग्ना आश्रमस्थास्तपस्विनः ॥२३२॥
एतस्मिन्नेव समये आजगाम मुनीश्वरः ।
इध्मभाराचितस्कन्धः करे फलकरण्डवान् ॥२३३॥

कुशभाराभुग्नपृष्ठः पत्रसञ्चयतुन्दिलः ।
पश्यन् स विपरीतानि निमित्तानि तपोधनः ।।२३४।।
चिन्तयामास मनसा विस्फुरद्वामलोचनः ।
कष्टमापतितं प्राय आश्रमस्थतपस्विनाम् ।।२३५।।
अग्न्यागाराणि वै नूनं नाश्यन्ते रक्षसां गणैः ।
तपस्विन्यो ह्रियन्ते वा बलाद्दानवपुङ्गवैः ।।२३६।।
न भीतिः स्वापदेभ्योऽत्र विद्यते मत्प्रसादतः ।
पुष्पकेतुरथायातो मद्दर्शनसमीहया ।।२३७।।
तदनीकोपरोधो वा किमेष सुमहान् स्वनः ।
इत्थं विचिन्तयन्नेष आससाद स्वमाश्रमम् ।।२३८।।
क्षुब्धप्रायं समालोक्य तापसावसथं महत् ।
भीरुग्नबालकस्त्रीकं पलायिततपोधनम् ।।२३९।।
भयलीनाग्निहोत्राग्निधावमानजरन्मुनिः ।
पर्यपृच्छदृषिं कञ्चिदाक्रन्दारावकारणम् ।।२४०।।
स साध्वसाकुलो भूत्वा लोहलाक्षरवाग् जगौ ।
महिषासुर आगत्य परिमर्द्य तमाश्रमम् ।।२४१।।
आस्थाय कामिनीरूपं त्रैलोक्योन्मादकारणम् ।
प्रलोभ्यते कपोतोऽसौ शिष्याणामग्रणीस्तव ।।२४२।।
तदङ्क उपविश्यायं प्रलोभ्यामु च मायया ।
विलासमदविच्छित्तिहावहेलाहलीसकान् ।।२४३।।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमं ललितं हठम् ।
विक्षेपं चकितं मौग्ध्यं विकृतं तपनं द्रवम् ।।२४४।।
आश्रवं हसितं केलिं भावं रुदितमर्जितम् ।
किलकिञ्चितविब्वोकौ कुर्वन्नीक्षति कर्षति ।।२४५।।
तं त्रायस्व महाभाग दैत्येन्द्रेण विडम्बितम् ।
मिथ्यालुब्धं कामवशं गन्तुं शक्नोषि तत्र चेत् ।।२४६।।

एवमुक्तः स मुनिना भारं निर्यात्य वर्ष्मणः ।
ससार गतभीर्बिल्वमाश्रमस्याविदूरतः ॥२४७॥
सोऽपश्यत्तदवस्थं तं यथोक्तं हरिमेधसा ।
उद्वहन्तं दैत्यमङ्के मोहिनीरूपधारिणम् ॥२४८॥
त्वां निरीक्ष्यास्यापि मनः किञ्चिन्मोहमुपास्पृशत् ।
तथापि धैर्यमास्थाय तस्थौ स ऋषिसत्तमः ॥२४९॥

[कात्यायनेन कपोतप्रबोधनम्]

ऊचे चान्तेवासिनं स्वं कपोत किमयं महान् ।
चित्तविभ्रम ईदृक्षोऽभूतपूर्वोऽतिमोहदः ॥२५०॥
योगाभ्यासः क्व ते यातः श्रुतीनां निपठः स च ।
कुर्वात्मानं दृढतरं कुत्र ज्ञानं गतं तव ॥२५१॥
पुराविशत्ति मोहस्त्वामन्धयन् हृदयं तव ।
रम्भात्मजोऽयमसुरो महिषो नाम मायिकः ॥२५२॥
छद्मस्त्रीरूपमास्थाय त्वां लोभयितुमागतः ।
मामत्रायातमालोक्य विज्ञ.न त्रपसे कथम् ॥२५३॥
नैष्ठिकब्रह्मचारी त्वं बोधितोऽपि मया पुरा ।
न दारानकरोः साधो गृहस्थाचारहेतुकान् ॥२५४॥
सोऽद्य किं त्वं भोगकामो माययाऽसुरमागतम् ।
न वेत्सि नष्टज्ञानः सन् य[त]था जातो यथाल्पधीः ॥२५५॥
संसारानित्यतां ज्ञात्वा महिमानं तथात्मनः ।
छद्मस्त्रीवेशतां चास्य मा कामवशमन्वगाः ॥२५६॥
अथ चेदिच्छसि परिणयं कर्तुं महामते ।
सुतां राज्ञः पुण्यकेतोर्याचिष्यामि भवत्कृते ॥२५७॥
अतीव स्त्रीगुणैर्युक्तां साक्षाद्रतिमिवागताम् ।
आत्मज्ञानेन महता मया दत्तेन पुत्रक ॥२५८॥
ज्योतिर्मय्या दिव्यदृष्ट्या त्यजैनं महिषासुरम् ।
इत्यादि बोध्यमानोऽपि यदा न वुवुधे मुनिः ॥२५९॥

निस्तन्द्रं चैक्षत गुरुं चान्वपद्यत नोत्तरम् ।
वहन्नेव भवन्तं स तस्थौ मन्दाक्षवर्जितः ॥२६०॥
ततः कात्यायनो ज्ञात्वा बुद्धिमस्य त्वया हृताम् ।
स्मृतिं धृतिं चेतनां च जुगुप्सां ह्रियमेव च ॥२६१॥
करेण त्वत्करौ धृत्वा विचकर्ष बलेन हि ।
शतपद्ममहामत्तदन्तावलबलो भवान् ॥२६२॥
कथंकारं तेन शक्य उत्थापयितुमञ्जसा ।
कपोताङ्कात्समुद्धर्तुं त्वां शशाक यदा न सः ॥२६३॥
अतीव चुक्रोध तदा दावानल इव ज्वलन् ।
विमृश्य तव दौरात्म्यं शापाय च मनोदधे ॥२६४॥

[कात्यायनेन महिषासुराय शापदानम्]

शृणु रे मूर्ख दैत्येन्द्र वरदानेन गर्वितः ।
तृणवत्त्रिषु लोकेषु न किञ्चिदपि मन्यसे ॥२६५॥
इन्द्रादिदशदिक्पालान् जित्वा त्वां गर्व आविशत् ।
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं कुण्ठितं तव वक्षसि ॥२६६॥
गिरीशस्यापि परशुः स्रगिवास तवोरसि ।
अगात्तूलतुलां चापि ब्रह्मणः करकोदकम् ॥२६७॥
शापाश्च मुनिभिर्दत्ताश्चक्रुरङ्गे रुजां न ते ।
वशीभूतानि ते सन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥२६८॥
सेनाध्यक्षाश्च ते सन्ति निखर्वशतसम्मिताः ।
लक्षैकाशीतिसाहस्रमितास्तव सुरद्विषः ॥२६९॥
चतुरङ्गान्वितमहाक्षौहिणी दितिजाधिप ।
स्वायत्ता विद्यते[न्ते?]मूढ त्रिपरार्द्धाश्च दानवाः ॥२७०॥
शतपद्मप्रभिन्नेभबलश्चासि स्वयं तथा ।
तेन तेऽहंकृतिर्जाता तां ते संचूर्णयाम्यहम् ॥२७१॥

पश्य मे तपसो वीर्यं कुशेध्मवहनाकृतेः ।
बलं कृशानामङ्गानां योगक्षामशिराजुषाम् ॥२७२॥
यादृग्रूपं दधत्त्वं वै शिष्यं मोहितवान्मम ।
दधाना तादृशं रूपं काचित् स्त्री रुचिराकृतिः ॥२७३॥
त्वां हनिष्यति संग्रामे सर्वसैन्यसमन्वितम् ।
मूर्द्धानं ते पदाक्रम्य छिन्ने [न्नं] सद्यो वरासिना ॥२७४॥
कासराकारदेहस्य लाङ्गूलं वामपाणिना ।
धृत्वानुत्क्रान्तजीवस्य परामृष्टकचस्य च ॥२७५॥
कल्पानेकान् दुर्बुद्धे स्थास्यति प्रसभीकृतः ।
इत्युक्तमात्रो मुन्यङ्कादुदस्थाद् दितिजेश्वरः ॥२७६॥
कात्यायनमवोचश्च किञ्चित्ताम्रेक्षणो रुषा ।

[महिषासुरस्य शापप्रतिवचनम्]

नाहं भीषयितुं शक्यस्तापसापसद त्वया ॥२७७॥
वाङ्मात्रेण न चासाते तव शस्त्रबले तथा ।
ब्रह्मणो यज्जलं वेदमन्त्रपूतं कमण्डलोः ॥२७८॥
दैत्येन्द्रकण्ठनालच्छिद् विष्णोरपि सुदर्शनम् ।
ईशानस्यापि परशुः कल्पान्तकरणोद्यतः ॥२७९॥
दिक्पालानां तु सर्वेषां शस्त्रादीनां कथैव का ।
प्रसूनवन्निपतितं मद्वक्षसि तपोधन ॥२८०॥
तत्र ते वै कियानेष शापो मानुषजन्मनः ।
अन्यच्चैतादृशं रूपं स्त्रियाः कस्या भविष्यति ॥ २८१॥
सा पुनः सुकुमाराङ्गी नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ।
करिष्यति मया साकं नियुद्धतुमुलं रणम् ॥२८२॥
शिरो मम छेत्स्यति च केशं चैव ग्रहीष्यति ।
एतादृशी विद्यते का तां मे कथय कामिनीम् ॥ २८३॥

[दिव्यस्त्रीप्रदर्शनाय महिषासुरस्य हठः]

दर्शयस्व च रे मूढ क्व सा तिष्ठति सुन्दरी ।
नो चेत् कवलयिष्यामि त्वामेवालीकभाषिणम् ॥२८४॥

त्वयीत्युक्तव्रति प्राज्ञः किञ्चिदागतसाध्वसः ।
जगाम शरणं मां वै मुनिः कात्यायनो हृदा ॥२८५॥
मदीयाराधनन्यस्तचेताः स गतभीर्मुनिः ।
ऊचे किमर्थमात्थैवं वचनं गर्वगर्भितम् ॥२८६॥

[कात्यायनस्योत्तरम्]

शस्त्रास्त्रं नैव चास्माकं न बलं न च पौरुषम् ।
तपःशस्त्रा वयं विप्रा वेदाभ्यासबलास्तथा ॥२८७॥
त्रिषु लोकेषु विख्याता वाग्युद्धे शापपौरुषाः ।
यदुक्तं च त्वया ब्रह्मविष्णुत्रिपुरशासिनाम् ॥२८८॥
इन्द्रादीनां च देवानामस्त्रं स्रग्वन्ममोरसि ।
तेभ्योऽस्त्रेभ्योऽपि निशितं लोमवाहिरुजाकरम् ॥२८९॥
विद्यतेऽस्त्रं महामूढ ज्वालाजालहतानलम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं मुक्तं यद्भाति खेचलत् ॥२९०॥
लोकप्रदर्श्युभयतः पतितं यत्तवोरसि ।
सत्त्वं किमप्यस्ति महदीदृगस्त्रप्रहारकृत् ॥२९१॥
किं करिष्यति शापस्त इत्युक्तं यत्त्वया मदात् ।
मत्तः शृणूत्तरं तस्य रम्भासुरतनूद्भव ॥२९२॥
वर्णेष्वग्र्या वयं विप्राः शिखासूत्रपरिग्रहाः ।
वेदाभ्यासाग्निहोत्राभ्यां गुरुशुश्रूषयापि वा ॥२९३॥
नैष्ठिकब्रह्मचर्येण क्षमयामोऽखिलं जनुः ।
घोरैस्तपोभिरङ्गानि जरयामो दिने दिने ॥२९४॥
त्रिवारं चाभिषुणुमो धुनुमोऽहांसि चर्यया ।
शुष्कपत्राण्यथाश्नामो दुनुमस्तपसा जगत् ॥२९५॥
न दारानधिगच्छामो न वसामः पुरे तथा ।
नेहामहे भोगधने नैव सेवामहे नृपम् ॥२९६॥
वृषैरेधामहे नित्यं योगांश्च मृगयामहे ।
स्रवद्वार्युटजं गेहं वासश्चर्मापि रौरवम् ॥२९७॥

ज्ञातयो वन्यजा जन्या धर्मः स्वाभाविकः पिता ।
पुण्या नदी वै जननी पत्नी दीक्षा मखे कृता ॥२९८॥
सन्तोषस्तनयोऽस्माकं निगमो वृत्तिकृन्नृपः ।
मित्राणि पादपाः सर्वे य आहारं ददत्यहो ॥२९९॥
युधामहे विषयिभिर्ध्यानास्त्रैरङ्गरङ्गगैः ।
न द्विष्मो नैव निन्दामो न हन्मः प्राणिनः क्वचित् ॥३००॥
स्वतन्त्वसुव्ययेनापि सत्वमात्रे दयामहे ।
वाक्पापाः शापविशिखाः क्रोधखड्गा मनोरथाः ॥३०१॥
प्रणिपातैकविषयाः संस्तारविजया अपि ।
देवानपि तृणं मन्याः को वराको भवानिह ॥३०२॥
कदर्थीकृत्य निर्दग्धा ब्राह्मणेन दिवौकसः ।
किञ्चिन्निदर्शनत्वेन दर्शयामि तवासुर ॥३०३॥

[ऋषिमाहात्म्यवर्णनम्]

सप्तर्षिभिर्भ्रष्टशेफा भार्याहितोर्हरः कृतः ।
पादप्रहारमकरोद् भृगुर्विष्णूरसि क्रुधा ॥३०४॥
तिर्यग्योन्यवतारं च कारयामास कर्दमः ।
गोतमेन कृतः शक्रो भगाङ्कस्तपसो बलात् ॥३०५॥
अगस्त्यः पीतवान् सिन्धुं चक्रेऽन्यः क्षारमर्णवम् ।
चन्द्रमभ्यशपद् दक्षो दुर्वासाः कमलालयाम् ॥३०६॥
युयुधे विष्णुना सार्धं दधीचिः क्षुपकारणात् ।
सगरस्यात्मजाः सर्वे देहिरे कपिलेन हि ॥३०७॥
किं बहूक्तेन दैत्येन्द्र ब्राह्मणास्तपसो बलात् ।
पितामहं भ्रंशयितुं समर्थास्त्रिदशानपि ॥३०८॥
ब्रह्मसृष्टिमपाकृत्य कौशिकोऽन्यसिसृक्षया ।
उत्कचेताः सशपथं ब्रह्मणा विनिवारितः ॥३०९॥

पराशरो जगद्दग्धुं वाडवाग्निमवासृजत् ।
च्यवनो निर्ममे कृत्यामत्तुं शक्रं सहामरम् [रैः] ॥३१०॥
अहमप्येक एतेषां त्वया ज्ञेयोऽसुराधम ।
अपरञ्चेदृशं रूपं स्त्रियाः कस्या भविष्यति ॥३११॥
इत्यगादि त्वया यत्तन्निशामय तदुत्तरम् ।

[देव्या सर्वविधिसौन्दर्यमाहात्म्यवर्णनम्]

सौन्दर्यशालि यादृक्षं रूपं मुनिविमोहने ॥३१२॥
त्वया कृतं माययैतन्मायाविन् दितिजाधिप ।
अदो रूपं तावकीनं त्रिलोके मोहकारि यत् ॥३१३॥
तस्या रूपस्य कोट्यंशमपि नार्हति निश्चितम् ।
यस्यास्तु नखचन्द्राणां सुषमा भुवनत्रये ॥३१४॥
नैव माति प्राप्नुवन्ति न तुलां चन्द्रकोटयः ।
तिलोत्तमोर्वशीरम्भाघृताचीमेनकादयः ॥३१५॥
विदधानास्तपो घोरं जन्मनां कोटिकोटिभिः ।
दासीदासीत्वमेतस्या नाप्नुवन्त्यसुराधिप ॥३१६॥
का वा लक्ष्मीः पुरस्तस्याः का रतिः का शची तथा ।
सत्यं सहस्रं ब्रह्माण एकीभूय समाहिताः ॥३१७॥
तस्या रूपस्य निर्माणे न समर्थाः कदाचन ।
तस्या वक्त्रस्य लावण्यं कोटयश्चन्द्रपद्मयोः ॥३१८॥
नाप्नुवन्ति तपोभिश्चेत् प्राणान् जहति यद्यमूः ।
तुलनां केशपाशस्य न चामरमयूरयोः ॥३१९॥
उपमां नैव गाहन्ते दृशां मीनकुरङ्गयोः ।
न कन्दर्पस्य वै लीलां न धरण्याः क्षमामपि ॥३२०॥
न बलं चैव वायूनां न गाम्भीर्यं सरस्वताम् ।
स्थैर्यं तथा न मेरूणां बुद्धानां न दयामपि ॥३२१॥

सङ्ग्रामजयसादृश्यं न विष्णूनां तथैव च ।
भारोद्वहनसाङ्काश्यं न कूर्माणां महाबल ।।३२२।।
न कालयममृत्यूनां रोषस्य समतामपि ।
बहुनोक्तेन किं दैत्य प्रतीहि वचनं मम ।।३२३।।
यस्मिन् कस्मिंश्चिदप्यंशे शस्त्रे शौर्ये गुणे बले ।
रूपे दयायां माधुर्ये कोऽपि नो साम्यमृच्छति ।।३२४।।
भवित्रीदृग् भ बद्धन्त्री दुरात्मन् गच्छ मा चिरम् ।
इत्युक्तवति सक्रोधं कात्यायनमुनौ तदा ।।३२५।।

[महिषासुरस्य देवीविषयिका जिज्ञासा]

किञ्चिदागतसंत्रासः पुनरेव त्वमब्रवीः ।
क्व सा तिष्ठति विप्रर्षे किं कार्यं कुरुते तथा ।।३२६।।
भार्या च कस्य सा ख्याता किमाहारा किमाशया ।
तां द्रष्टुमिच्छामि तथा योद्धुमिच्छामि वै तया ।।३२७।।
ईदृग्गुणा स्त्रीति मुने न प्रत्येमि वचस्तव ।
दर्शयिष्यसि चेत्तां मे ततो जीवन्विमोक्ष्यसे ।।३२८।।
नो चेदत्स्यामि सद्यस्त्वां हरिः शशशिशुं यथा ।

[देव्याः समाधानम्]

वचस्तव निशम्येत्थं पुनरेवाब्रवीन्मुनिः ।।३२९।।
शृणु रे मूढ दैत्येन्द्र सावधानेन चेतसा ।
सर्वत्र तिष्ठति हि सा तत्तदाकारधारिणी ।।३३०।।
पृथिव्यामप्सु तेजस्सु वायावाकाश एव च ।
मनसीन्द्रियवर्गे च काले दिक्षु तथात्मनि ।।६३१।।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले रोदसी विदिशोरपि ।
त्रैलोक्ये न पदार्थः स नाक्रान्तो यस्तयाऽसुर ।।३३२।।
परमाणुं समारभ्य यावदीशतनुं तथा ।
अधिष्ठात्री तथा नित्यं सा वस्तून्यधितिष्ठति ।।३३३।।
तया विरहितं किञ्चिन्नास्ति त्रैलोक्यगोलके ।
मयि तिष्ठति सा देवी त्वय्यप्यसुरपुङ्गव ।।३३४।।

यूकादिकीटेष्वपि सा विष्णुशम्भुतनावपि ।
किं कार्यं कुरुते चेति यदप्राक्षीस्त्वमङ्ग माम् ॥३३५॥
[देव्याः कर्तव्याभिधानम्]
तस्योत्तरं मे कलय मात्सर्यमपहाय हि ।
कार्य्यं न किञ्चिदप्यस्याः कारणं च न विद्यते ॥३३६॥
अध्यास्ते सर्वमेवेदं चिद्रूपत्वेन निर्गुणा ।
भवद्विधासुरोद्विग्नदेवत्राणार्थमीश्वरी ॥३३७॥
यदा तनुं समादत्ते तदा कार्यं करोत्यसौ ।
नियोजयत्यादिसर्गे ब्रह्माणं सृष्टिहेतवे ॥३३८॥
मध्ये विष्णुं पालनाय संहारायान्तिमे हरम् ।
द्वन्द्वैः प्रजा योजयति सुखदुःखैर्भवाभवैः ॥३३९॥
पुण्यपापैस्तथा कालं शीतोष्णैः फलनिष्ठया ।
[देव्याः परिचयदानम्]
तस्याः कार्यमिदं प्रोक्तं स्त्री कस्येति यदीरितम् ॥३४०॥
अस्योत्तरं नैव दातुं शक्नोमि दितिजेश्वर ।
नैव स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः ॥३४१॥
यद्यच्छरीरमादत्ते युज्यते तेन तेन सा ।
कदाचिज्जायते सा स्त्री कदाचिदपि सा पुमान् ॥३४२॥
तां तां तनुं वितनुते लीलार्थमरिमर्दिनी ।
स्त्रीणां त्रैलोक्यजातानां कामोन्मादैकहेतवे ॥३४३॥
वंशीधरं कृष्णदेहं चकार द्वापरे युगे ।
अथ योगाभ्यासपरः कामभोगपराङ्मुखः ॥३४४॥
अद्वितीयः पशुपतिरन्वध्यानपरायणः ।
ईदृक् स्त्रीरूपमास्थाय मोहितः परमेश्वरः ॥३४५॥
कृतश्च स्ववशे देव्यास्तन्वर्द्धं चात्मसात् कृतम् ।
निराकारं ब्रह्मरूपं यदासौ धत्त ईश्वरी ॥३४६॥

तदा नपुंसकाख्यानं प्राप्नोति ब्रह्मवज्जडम् ।
यत् पृष्टोऽस्मि किमाहारा सेति तस्योत्तरं शृणु ॥३४७॥
न किञ्चिदपि साश्नाति न चापि धयतीह सा ।
नोत्तिष्ठति न शेते च व्यापारं कुरुते न च ॥३४८॥
केवलं जागरूका सा भूत्वा जागर्ति सर्वदा ।
चिखादिषत्यथ यदि कदाचित्कालपर्ययात् ॥३४९॥
अमुष्या उदरं नैव परिपूरयितुं बलात् ।
शक्नुवन्ति प्रविष्टास्तत्कोटिब्रह्माण्डगोलकाः ॥३५०॥
गीर्णानि ब्रह्मखर्वाणि तथात्तं हरिसागरम् ॥
अत्तमिन्द्रपरार्द्धं च गिलिता रुद्रकोटयः ॥३५१॥
तथापि नोदरं पूर्णं किमाहारेति सोच्यताम् ॥
कालपर्यायतः सा स्त्री चेदभ्यवजिहीर्षति ॥३५२॥
ब्रह्माण्डलक्षमप्यस्याः नैकः कवल उच्यते ॥
यावदस्ति तवानीकं चतुरङ्गोपबृंहितम् ॥३५३॥
भिन्नरूपतयाऽसंख्या वर्तन्ते ये च दानवाः ॥
वक्त्रं प्रविष्टाः सर्वेऽपि तस्या युगपदेव हि ॥३५४॥
दन्तयोरन्तरालं नो भर्तुं शक्ताः किमूदरम् ॥
नाश्नाति चेत् वर्षपूगान् कोटिसंख्यान् न चात्ति सा ॥३५५॥
जग्धुमिच्छत्यथ यदि कदाचिद् दैवयोगतः ।
महाकल्पान्तमास्थाय भुङ्क्ते ब्रह्ममुखान् सुरान् ॥३५६॥
किमाशयेति दैत्येन्द्र यच्च जिज्ञासितं त्वया ।
प्रतिवाक्यं निबोधास्य यदि शुश्रूषसे हृदा ॥३५७॥
एतस्या नाशयं वेत्ति ब्रह्मा वा हरिरीश्वरः ।
इन्द्रादयः के वराकास्त्वं चाहं कीटसन्निभः ॥३५८॥
किमीहते किं त्यजति किं विधित्सति चेतसा ।
किं चेष्टते किं वदति नास्या जानाति कोऽपि हि ॥३५९॥

एधतां प्रत्यहं धर्मः पापमेतु क्षयं तथा ।
धर्मद्विषो विलीयन्तां द्वेष्टारश्च द्विजन्मनाम् ॥३६०॥
यज्ञः प्रवर्ततां लोके चीयतामन्वहं तपः ।
पापाः प्रयान्तु नरकं पुण्यभाजास्त्रिविष्टपम् ॥३६१॥
देवा निरामयाः सन्तु चातुर्वर्ण्यं प्रवर्तताम् ।
ईदृगाशयवत्येषा कथिता तव दैत्यप ॥३६२॥
एतदर्थं च घटते धत्ते नित्याऽप्यसौ तनुम् ।
यस्तां ध्याचत्यर्चयति प्रणमत्यभिनन्दति ॥३६३॥
हृदा विभावयति च विस्मरत्यपि नो क्वचित् ।
तस्मिन् सदैव भवति स्निग्धचित्ता दयाशया ॥३६४॥
अनुगृह्णाति तं भक्तं सङ्कटात्तारयत्यपि ।
नो चेद् दैत्येन्द्र शक्राद्या यस्य ते न पुरः स्थिताः ॥३६५॥
तत्राहं वाडवो भूत्वा मन्ये त्वां तृणवल्लघुम् ।
न बिभेम्यवतिष्ठेऽहं क्रुद्धस्य भवतोऽन्तिकम् ॥३६६॥
अत्रैव सा मदवनहेतोस्तिष्ठत्यलक्षिता ।
तस्याः प्रसादादेवाहं त्र्यस्यामि भवतो न हि ॥३६७॥
यत्त्वं युयुत्ससि तया साकं विक्रमगर्वितः ।
तदज्ञानं तव महन् मुमूर्षातिमिरोद्भवम् ॥३६८॥
यथा पतङ्गपोतस्य स्पर्द्धा दावाग्निना सह ।
अर्केण ध्वान्तरेखाया राजिलस्य गरुत्मता ॥३६९॥
दर्दुरस्य च शेषेण शशस्य हरिणा त [य]था ।
परीवाहस्य जाह्नव्या खद्योतस्येन्दुनापि च ॥३७०॥
यामस्य च युगेनापि कल्पान्तेन निशोऽपि च ।
तथा देव्या सह तव चेतसि प्रतिभाति मे ॥३७१॥
तया साकं यदि रणं कर्तुमिच्छसि दानव ।
ससैन्यः सान्वयः सद्यः सगणश्च विनंक्ष्यति ॥३७२॥

[कात्यायनेन महिषासुरस्य प्रबोधनम्]

दिदृक्षसेऽथ यदि तां भावशुद्धेन चेतसा ।
पश्य सर्वत्र सा नित्या सर्वगा गुणवर्जिता ॥३७३॥
विज्ञानरूपा चिच्छक्तिर्निर्मला द्वैतवर्जिता ।
परापरा सुप्रकाशा भेदवादसमुज्झिता ॥३७४॥
प्रपञ्चविषयातीता साक्षाद् वाचामगोचरा ।
नित्यानन्दा कलारूपा जन्ममृत्युजरातिगा ॥३७५॥
समष्टिव्यष्टिकरणी परामृतरसात्मिका ।
मयि त्वयि तथा कीटे स्थावरे जङ्गमे तथा ॥३७६॥
सुरे शुनि द्विजे म्लेच्छे क्षेत्रज्ञे वपुषीन्द्रिये ।
मूढे विदुषि बाले च युनि स्थविर एव च ॥३७७॥
तरावश्मनि शैले च पाताले गगने भुवि ।
अतीते वर्तमाने च भविष्यत्यप्यनेहसि ॥३७८॥
वेदे पुराणे साङ्ख्ये च योगागमपुराणयोः ।
स्वशक्त्या तिष्ठते सा हि सर्वकारणकारणम् ॥३७९॥
ससामान्यविहीनां चेद् दितिजेन्द्र ! दिदृक्षसे ।
दृढभक्तिमनः कृत्वा चैकतानं समाहितम् ॥३८०॥
सर्वत्र पश्यतां देवीमाधाराधेयरूपिणीम् ।
इत्युक्तवति देवर्षौ कात्यायन ऋताक्षरम् ॥३८१॥
पुनर्मुनिमवादीस्त्वं किञ्चित्संत्यक्तमत्सरः ।

[देव्याः प्रदर्शनाय महिषासुरस्य हठः]

यदि सा सर्वगा सर्वप्रमेयाधिष्ठिता मुने ॥३८२॥
चैतन्यसत्ताकारा च सर्वान्तर्यामिनी परा ।
सद्विचारावभासा च विशुद्धा सर्वसाक्षिणी ॥३८३॥
तदा मयोच्यमाने तां स्थाने दर्शय तत्त्वतः ।
श्रद्धास्यामि वचनं तदा ते मुनिपुङ्गव ॥३८४॥

गुरुवन्मानयिष्यामि त्वां श्रेष्ठं भार्गवादपि ।
जीवन् विसर्जयिष्यामि हितनिर्देशकारिणम् ॥३८५॥
दर्शयिष्यसि नो चेत्तां प्रदेशे मदुदीरिते ।
सद्यो व्यापादयिष्यामि त्वां पाणितलताडनैः ॥३८६॥
एवमुक्ते त्वया वीतभयः कात्यायनो मुनिः ।

[कात्यायनेन विल्ववृक्षस्याधस्तात् देव्या आविर्भाविनम्]

उवाच वद रे मूढ कुत्र तां दर्शयामि ते ॥३८७॥
साक्षादागत्य सैवाद्य गर्वं ते चूर्णयिष्यति ।
श्रुत्वेत्यवादीस्त्वमपि विमृष्य हृदि तं मुनिम् ॥३८८॥
अन्तर्महासूक्ष्मतया बिल्ववृक्षे निषेदुषीम् ।
निर्यात्य बहिरव्यग्रामुक्तरूपगुणात्मिकाम् ॥३८९॥
अच्छप्रकटिताकारां तां मे देवीं प्रदर्शय ।
त्वयीत्युक्तवति क्रुद्धे मामेकान्तेन चेतसा ॥३९०॥
ऋषिर्जगाम शरणं भवतो भयविह्वलः ।
तुष्टाव चान्तर्भीरुत्वकम्पितौष्ठचलाक्षरः ॥३९१॥

[कात्यायनकृता देवीस्तुतिस्तस्या प्रकटनं च]

जगदम्ब जयानन्तरूपे सर्वैकसाक्षिणि ।
संकटोद्धारिणि शिवे भक्तानामभयङ्करे ॥३९२॥
समस्तजगदाधारभूते ब्रह्मस्वरूपिणि ।
विधीशहरिशक्रादिदेवाविदितवैभवे ॥३९३॥
सृष्टिस्थितिप्रलयकृत् त्रिगुणात्मकविग्रहे ।
परापरेशि प्रणतमनुजप्राणदायिनि ॥३९४॥
मदुपास्यतया ख्यातनाम्नि त्रिभुवनेश्वरि ।
कात्यायनि जगद्वन्द्ये महाकालि नमोऽस्तु ते ॥३९५॥
मत्प्राणरक्षणकृते भीनाशाय दिवौकसाम् ।
स्वरूपं दर्शयामुष्मै विल्ववृक्षाद् विनिःसृता ॥३९६॥

नुतैवं तेन मुनिनाऽनुग्रहाय तवापि च ।
प्रादुर्भूताहमभवं दिव्यविग्रहधारिणी ॥३९७॥
भासयन्त्याश्रमं सर्वं वपुर्भासा समानया ।
कोट्यर्कोदयवज्जातं वियद्युगपदेव हि ॥३९८॥
आदीपितमरण्यं च तेजसा मम सर्वतः ।
मुष्णन्ती त्वद्दृशोरोचिर्धुवती हृदयं तव ॥३९९॥
ओषत्यङ्गानि सर्वाणि अददं दर्शनं तव ।
समालोक्य वपुर्भासं मदीयां चकितो भवान् ॥४००॥
मामेवैक्षत निस्तन्द्रं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
सत्यवादीति वचने जातसंप्रत्ययो मुनिः ॥४०१॥
करेष्वालक्ष्य विधृतान्यस्त्राणि विविधानि मे ।

[महिषासुरेण सह देव्या युद्धस्य कथा]

युयुत्सुरभ्यधावस्त्वं कराभ्यां विधृतायुधः ॥४०२॥
कात्यायनकपोतौ द्वौ गुरुशिष्यावुभौ मुनी ।
पलायाञ्चक्रतुर्भीतौ वीक्ष्य युद्धोद्यमं द्वयोः ॥४०३॥
प्रतिमुक्तं निरीक्ष्य त्वां सेनाध्यक्षस्तवासुर ।
सर्वे संदर्शिता जातास्त्रिपरार्द्धाश्च दानवाः ॥४०४॥
करालश्चिक्षुरस्ताम्रदुर्द्धरोद्धतदुर्मराः ।
वाष्कलोदग्रताराक्षदुर्मुखान्धकचञ्चलाः ॥४०५॥
चामरोग्रास्यधूम्राक्षमहाहनुबलाहकाः ।
उग्रवीर्यासिलोमानौ जटामालिप्रकम्पनौ ॥४०६॥
वज्रमुष्टिविडालौ च वातवेगफणिध्वजौ ।
शैलध्वजाञ्जनाद्री च घोरनादकरन्धमौ ॥४०७॥
अभ्यधावन्त मामेव प्रगृहीतशरासनाः ।
नानायुधोद्यतकराः सर्वे वर्मितविग्रहाः ॥४०८॥
धूयध्वं प्रहरध्वं च गृह्णीध्वमिति वादिनः ।
रथैः केचिद् गजैः केचिद् हयैः केचिद् दनूद्भवाः ॥४०९॥

केचित् पदातयो दैत्या धोराश्चर्मासिपाणयः ।
लक्षं चाशीतिसाहस्रं यावदक्षौहिणीबलम् ॥४१०॥
सर्वं सन्नह्यापतितं मां हन्तुं रणमूर्द्धनि ।
किञ्चित् स्मितं प्रकुर्वाणाहमासं गतसाध्वसा ॥४११॥
पिनाकं दधती वामपाणौ दक्षे शरानपि ।
सिंहोपरि समासीनालीभिश्चतसृभिर्युता ॥४१२॥
युयुत्सयातिरभसात् स्थितास्मि दितिजाधिप ।
एतस्मिन्नेव समये धावनव्यग्रपात् त्वरन् ॥४१३॥
[युगन्धरमहिषासुरसंवादः]
वृद्धः पितुरमात्यस्ते नाम्ना ख्यातो युगन्धरः ।
निवर्तयामास रणात् त्वां धृत्वा करयोर्द्वयोः ॥४१४॥
उवाच वचनं किञ्चिन्नतिप्रणतकन्धरः ।
प्रभो न योद्धुं कालस्ते स्त्रिया वै दिव्ययैतया ॥४१५॥
नेयं सामान्यनारीवद् भावनीया कथञ्चन ।
मन्ये दैत्यकुलान्ताय कालरात्रिरुपस्थिता ॥४१६॥
एका यदियमक्षुब्धा स्थिता युद्धाभिलाषिणी ।
अगणेयैस्तवानीकैः सह शस्त्रास्त्रपाणिभिः ॥४१७॥
तव भीत्या पलायन्ते सर्वे देवाः सवासवाः ।
देवावभवतां तौ च विमुखौ हरिशङ्करौ ॥४१८॥
युयुत्सोर्यत्र ते वीर स्थितस्य रणमूर्द्धनि ।
तत्रेयमेका वनिताऽयुतदोर्दण्डधारिणी ॥४१९॥
स्मितं सलीलं कुर्वाणा निर्भयाऽस्मत्पुरः स्थिता ।
भविष्यत्यत्र नाल्पं हि कारणं रम्भनन्दन ॥४२०॥
एतया सह सङ्ग्रामाद् विरमाचिन्त्यरूपया ।
मयैषोऽञ्जलिराबद्धः प्रणामः पादयोरपि ॥४२१॥
युद्धायाभ्युद्यतं सैन्यं सकलं विनिवर्त्यताम् ।
षाड्गुण्ये वा नये युद्धे कर्तव्ये यत्र कुत्रचित् ॥४२२॥

नैवाप्रमाणीकुरुते पिता ते वचनं मम ।
तदेव पालयस्वाद्य वाक्यं त्वमपि नीतिमत् ॥४२३॥
बार्हस्पत्यौशनसयोस्तन्त्रयोर्नयहेतवे ।
मया बाल्ये विनीतोऽसि गुरुस्तस्माद् भवामि ते ॥४२४॥
युक्तियुक्तां गुरोरुक्तिमाध्रियस्वात इश्वर ।
अन्यदेकं कारणं ते ब्रुवे युद्धनिवर्तने ॥४२५॥
तच्छृणुष्व महाभाग श्रुत्वा युक्तं समाचर ।
पिता ते हरमाराध्य घोरेण तपसा चिरम् ॥४२६॥
त्वां प्राप्तवान् सुतं सर्वदानवारिविमर्दनम् ।
जातमात्रे त्वयि जहुर्देवाः सद्योऽमरावतीम् ॥४२७॥
दैत्याश्च दैत्यारिकृतां भीतिं त्वदनुवर्तिनः ।
रुरुदुर्देववनिता जहसुर्दैत्ययोषितः ॥४२८॥
अथाभवो यदा दैत्यबालस्त्वं पञ्चवार्षिकः ।
तदा त्वां वीक्ष्य तातस्ते संप्राप महतीं मुदम् ॥४२९॥
एकदा सहितोऽमात्यैरस्मदादिभिरष्टभिः ।
गत्वोत्तरान् कुरून् रम्भः पिता ते रणदुर्जयः ॥४३०॥
अप्सरोभिः सह चिरं चिक्रीड सुरभिक्षणे ।
वैभ्राजकवने चैत्ररथे मन्दारकानने ॥४३१॥
कर्णिकारवने चापि चम्पकारण्य एव च ।
विहृत्य चिरकालं स घृताच्या सह ते पिता ॥४३२॥
सुरतश्रमसञ्जातस्वेदायासापनुत्तये ।
सिस्नासुः सचिवैः सार्द्धं प्रययौ रम्यकं सरः ॥४३३॥
तत्र गत्वा चिरं सस्नौ सरोमध्यगतः प्रभुः ।
अथोत्तीर्य यियासुः स हिरण्यपुरमुत्तमम् ॥४३४॥
अथास्यैवोत्तरे कूले महीरुहतलस्थितम् ।
किञ्चिन्निमीलितदृशं ध्यानेनात्मेक्षणात्मना ॥४३५॥

द्वित्रैरनुगतं शिष्यैः संयोजितकरद्वयैः ।
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥४३६॥
ब्रह्मणो मानसं पुत्रं द्वितीयं तमिव स्थितम् ।
विभूतिभूषिततनुं शिवध्यानपरायणम् ॥४३७॥
रुद्राक्षमालाभरणं जटामण्डलमण्डितम् ।
अपश्यत्ते पिता रम्भो ज्वलन्तमिव पावकम् ॥४३८॥
ततः प्रणामहेतोस्तं ससार विनयानतः ।
प्रादक्षिण्येनाभिवाद्य दण्डवत् प्रणतो भुवि ॥४३९॥
तस्थौ नम्रशिराः किञ्चिन्मुखमस्यावलोकयन् ।
अथामुमनुजग्राह कुशलप्रश्नया गिरा ॥४४०॥
अस्मदादीनपि तथा स्मितपूर्वं मुनीश्वरः ।
कथासु कथ्यमानासु दितिजेन्द्र दिवौकसाम् ॥४४१॥
देवर्षिः सादरो भूत्वा पप्रच्छानामयं तव ।

[रम्भासुरसनत्कुमारसंवादवृत्तान्तः]

उवाच ते पिता तं च भक्तिप्रणतकन्धरः ॥४४२॥
कुशली तिष्ठतीदानीं बालो मेऽप्राप्तयौवनः ।
तपोधन ! तवाशीर्भिः वर्द्धते च दिने दिने ॥४४३॥
अस्मानानन्दयति च बालक्रीडनकादिभिः ।
यदि जीवति तारुण्ये जाते मे तनयो मुने ॥४४४॥
प्रायः सन्त्यक्ष्यति प्राणान् यन्त्रणाभिर्दिवौकसाम् ।
विष्णोरुद्यमयोगैश्च नानासमरशालिभिः ॥४४५॥
दैत्या न केऽप्युर्वरिताश्चक्रज्वालोपिताङ्गकाः ।
सुदर्शनेनामुमपि हनिष्यति ममात्मजम् ॥४४६॥
इत्येवं बाधते चिन्ताऽहर्निशं मां तपोनिधे ।
आयत्युदर्कौ सूनोर्मे कीदृगस्य भविष्यतः ॥४४७॥

त्वं सर्वज्ञोऽसि भगवंश्चराचरगुरुस्तथा ।
अतीतानागतं वेत्सि साक्षाद् वेधा इवापरः ॥४४८॥
इच्छन् समर्थोऽसि तथा परिवर्तयितुं जगत् ।
निर्दिष्टं भवता वेत्तुमिच्छामि तनयस्य मे ॥४४९॥
ऐश्वर्यं कीदृशं भावि कियदायुस्तथैव च ।
पराक्रमो रणे कीदृक् कीदृशं बलमेव च ॥४५०॥
चतुरङ्गमनीकं च कियदस्य भविष्यति ।
एवमुक्ते त्वत्पितरि स्मितं कृत्वा स मानसम् ॥४५१॥
ब्रह्मणस्तनयोऽवादीत् संबोध्य जनकं तव ।
वाक्यं मे शृणु रम्भ त्वं याथातथ्येन जल्पतः ॥४५२॥
शृण्वन्तु त्वदमात्याश्च ये त्वया समसागताः ।
सामान्यदैत्यवन्नायं मन्तव्यो भवता सुतः ॥४५३॥
अवतीर्णः कोऽपि साक्षान् महापुरुष एष हि ।
तपसा भवतोऽसङ्ख्यशुभादृष्टवशेन च ॥४५४॥
निहन्तुं विष्णुना शक्यो नैष चक्रेण ते सुतः ।
चराचरस्य जगतो ब्रह्माण्डस्याखिलस्य च ॥४५५॥
भविताधिपती रम्भ महाभागः सुतस्तव ।
इन्द्राद्या दश दिक्पाला याश्चान्या देवजातयः ॥४५६॥
परिचारकवद्भूत्वा स्थास्यन्ति वशवर्तिनः ।
चतुर्दशस्वपि तथा भुवनेषु महाबलः ॥४५७॥
अव्याहताज्ञः सम्भूय रक्षिष्यति जगत्त्रयम् ।
निदेशं धारयिष्यन्ति त्रिदशाः शिरसाऽस्य हि ॥४५८॥
मन्वन्तरत्रयं पूर्णमधिकं किञ्चिदेव हि ।
भविष्यत्यायुरेतस्य त्रिलोकीमवतः सुखम् ॥४५९॥
पराक्रमं चास्य शृणु गदतो मेऽसुरोत्तम ।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिमितान् देवानेकेन पाणिना ॥४६०॥

हन्तुं समर्थः समरे किमु योधयितुं तदा ।
नियुद्धं विष्णुना सार्द्धं करिष्यति तथैव च ।।४६१।।
पराजेतुं न चामुं स शक्ष्यति श्रीपतिः स्वयम् ।
कुण्ठितं चक्रमस्यापि त्वत्सुतोरसि भावि च ।।४६२।।
अनन्तसंख्यमत्तेभबलोऽयं भविता सदा ।
इच्छंस्तत्कोटिगुणितशक्तिर्भावी महारणे ।।४६३।।
ससप्तद्वीपजलधिपर्वतां वसुधामिमाम् ।
उद्धृत्य शेषशिरसः स्वशीर्षे स्थापितुं क्षमः ।।४६४।।
गन्धमादनकैलासौ गिरिं च त्रिदशालयम् ।
संचूर्णयितुमीष्टे यं स्थापयित्वा करद्वये ।।४६५।।
लोकालोकं समुत्पाट्य स्वीयांशपरिवर्तनैः ।
रेणुं क्षोदोत्कराकीर्णं समर्थः कर्तुमञ्जसा ।।४६६।।
सप्ताष्टैकद्विगुणितं यदि स्यादर्वुदं तदा ।
एका महाक्षौहिणी स्यादनया संख्यया पुनः ।।४६७।।
लक्षायुते तथैकैके सहस्राष्टकसंयुते ।
भाव्येतावद्बलं तस्य स्ववंशदितिजोज्वलम् ।।४६८।।
अन्ये दनुकुलोत्पन्ना दानवा युद्धदुर्मदाः ।
त्रिपरार्द्धमिताः पुत्रमनुयास्यन्ति ते सदा ।।४६९।।
नैतादृशो दानवोऽन्यो न दैत्यो नासुरोऽपि च ।
समुत्पन्नो महाभाग सृष्टिमध्ये पितुर्मम ।।४७०।।
इति ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽस्मि त्वयाऽसुर ।
पुत्रस्य तव साम्राज्यं परमायुः पराक्रमम् ।।४७१।।
बलं च चतुरङ्गाख्यं बलं शक्तिं तथैव च ।
न पूर्वे नापरे दैत्या न देवा दानवा न च ।।४७२।।
त्वत्सुतस्य न यास्यन्ति समतां भुवनत्रये ।
इत्युक्तवति देवर्षौ वरिष्ठे सत्यवादिनाम् ।।४७३।।

परां मुदमवापोच्चैः सहास्माभिः पिता तव ।
प्रभुः पुनरथोवाच विस्मयाविष्टमानसः ॥४७४॥
भगवन् सर्वमेवेदं त्वत्त आकर्णितं मया ।
साम्राज्यबलवीर्यायुःप्रभुत्वं तनयस्य मे ॥४७५॥
किन्तु केन प्रकारेण कुत्र कस्य करे तथा ।
भविष्यत्यस्य मरणं न्यायतोऽन्यायतोऽपि वा ॥४७६॥
तदपि ज्ञातुमिच्छामि भवतः सर्वदर्शिनः ।
श्रोतुं योग्यं यदि भवेदनुगृह्णासि मां यदि ॥४७७॥
आज्ञापय तदादोऽपि त्रिकालालोकिनां वर ।
न मां बाधिष्यते दुःखं तन्मृत्युश्रवणोद्भवम् ॥४७८॥
शक्या न लोप्तुं केनापि नियतिः पारमेश्वरी ।
शरीरधारिणामेषा निष्ठा विधिनिदेशिता ॥४७९॥
द्विपरार्द्धावसाने तु पित्रा तेऽपि तपोधन ।
तैजस्यपि तनुस्त्याज्या जन्मिभिः किमु भौतिकी ॥४८०॥
तस्मादाज्ञापय विभो तन्मृत्युप्रक्रियां मम ।
इति विज्ञापितः पित्रा भवतो नयशालिना ॥४८१॥
सनत्कुमारो भगवान् शिश्रिये स्मितवक्त्रताम् ।
प्रत्यवादीच्च तातं ते शृणु रम्भ वचो मम ॥४८२॥
रहस्यमिदमत्यन्तं सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ।
कथं मया त्वत्पुरतो वाच्यं दितिमुदावह ॥४८३॥
मात्सर्यमुत्सार्य यतः पृष्टोऽस्मि भवताऽनघ ।
तस्मादवश्यं वक्तव्यं रहस्यं यद्यपीशितुः ॥४८४॥
त्वञ्चापि गतसंरम्भो देवद्विजमखादिषु ।
जानासि च गतिं सर्वां भूतानां जन्ममृत्युजाम् ॥४८५॥
हर्षशोकौ न बाधेते त्वां कदापि विपश्चितम् ।
अत एव त्वया पृष्टः कथयाम्यखिलं शृणु ॥४८६॥

मन्वन्तरे चतुर्थे यो नाम्ना कात्यायनो मुनिः ।
भविष्यति कृतस्यान्ते शैवो योगपरायणः ॥४८७॥
तेजसा सूर्यसङ्काश ऊर्ध्वरेतास्तपोनिधिः ।
ज्ञानी ध्यानार्पितस्वान्तः प्रजापतिरिवापरः ॥४८८॥
तस्य शिष्यः कपोताख्यो द्वितीयः स इवापरः ।
स आत्माराम उद्योगी ध्यायंस्तद्ब्रह्म निष्कलम् ॥४८९॥
स्थास्यति श्रीफलतरोरधस्तान् मीलितेक्षणः ।
तं दृष्ट्वा ते सुतः स्वीयानुचरान् दितिजान् प्रति ॥४९०॥
वदिष्यति हसन्नेष केनापि निजमायया ।
सद्यः स्त्रीवेशमास्थाय शक्यो[1] लोभयितुं मुनिम् ॥४९१॥
इत्युक्ते ते न वक्ष्यन्ति नास्माभिः शक्यते त्वदः ।
ततः सुतस्ते विहसन् मायावी स्वयमेव हि ॥४९२॥
दिव्यस्त्रीवेशमास्थाय गमिष्यति तदन्तिकम् ।
गत्वा तं हावभावाद्यैः स्त्रीणां नानाविचेष्टितैः ॥४९३॥
धैर्यच्युतिकरैः सद्यः कपोतं लोभयिष्यति ।
सोऽपि पुत्रस्य भवतो मायया विह्वलीकृतः ॥४९४॥
उन्मत्तीभूय कामान्धस्तमेवानुगमिष्यति ।
यत्र यत्रैव तनयस्तव यास्यति दैत्यप ॥४९५॥
तत्र तत्रैव सोऽप्येनमनुयास्यति नष्टधीः ।
घोराट्टहासैर्दैत्यानां त्रस्तमाश्रममण्डलम् ॥४९६॥
कान्दिशीकं शङ्कुसुकं हरितो विद्रविष्यति
एतस्मिन्नेव समये देवर्षिः सन्निधास्यति ॥४९७॥
श्रुत्वा कपोतवैक्लव्यं भीतमालोक्य चाश्रमम् ।
कपोतत्वत्सुतौ यत्र तत्र धाविष्यति द्रुतम् ॥४९८॥
श्रीफलानोकहतले सन्निविष्टौ दार्भ आसने ।
आधाराधेयभावेन कपोतत्वत्तनूद्भवौ ॥४९९॥

१—इतः ४९३ श्लोकस्य द्वितीयचरणं यावत् क पुस्तके नास्ति ।

कात्यायनो द्रक्ष्यति तावलीकानङ्गचेष्टितौ ।
स्वान्तेवासिनमालोक्य मिथ्याकामवशीकृतम् ॥५००॥
तस्य भ्रमनिरासार्थं बोधयिष्यति युक्तिभिः ।
यदा स बोध्यमानोऽपि न ज्ञास्यति विमोहनम् ॥५०१॥
त्वत्सुतेन कृतो विप्रः सरोषो भविता तदा ।
गुरुर्महर्षिरथ ते शपिष्यति तनूद्भवम् ॥५०२॥
स्त्रीवेशं यादृशं धृत्वा त्वयात्यन्तविमोहनम् ।
छात्रो मदीयो विवश ऊर्जितो विह्वलीकृतः ॥५०३॥
इतोऽप्यत्यन्तरुचिरं रूपं बिभ्रत्यनिन्दिता ।
दिव्या स्त्री काचिदाराध्या त्रिजगद्वासिनामपि ॥५०४॥
अनन्तबलमाहात्म्यात् तव मृत्युर्भविष्यति ।
इत्युक्तवति देवर्षौ सुतस्ते महिषासुरः ॥५०५॥
वदिष्यति महाक्रुद्धः क्व सा स्त्री वर्तते द्विज ।
स वदिष्यति सर्वत्र सर्वगा सर्वसाक्षिणी ॥५०६॥
सर्वान्तर्यामिनी सर्वव्यापिनी सर्वदायिनी[1] ।
तिष्ठति प्रत्ययाभासा किं तां पृच्छसि मूढ रे ॥५०७॥
श्रुत्वेत्थं भवतः पुत्रो वदिष्यति पुनर्द्विजम् ।
एवं चेत् सा मुने तर्हि वर्तते श्रीफलान्तरे ॥५०८॥
अस्तीत्येवं मुनौ प्रोक्तवति ते तनयो रुषा ।
वक्ष्यति मां दर्शयेति मुनेस्त्राणार्थमञ्जसा ॥५०९॥
विल्ववृक्षाद् विनिष्क्रान्ता या स्त्री सद्यो भविष्यति ।
अनिर्वाच्यगुणैरूपैर्विक्रमेण बलेन च ॥५१०॥
महिम्ना स्थैर्यधैर्याभ्यां साऽस्य मृत्युर्भविष्यति ।
इति ते कथितं सर्वमकथ्यमपि दैत्यप ॥५११॥

---

[1] सर्वसाक्षिणी ङ ।

अदः सुराणां सर्वेषां रहस्यं गुह्यमुत्तमम् ।
भवत्पुत्रोपतप्तायास्त्रिलोक्यास्त्राणकारणात् ॥५१२॥
मन्त्रितं त्रिदशैः शक्रब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।
श्रुत्वेति तातो भवतः पुनरेवाब्रवीत् मुनिम् ॥५१३॥
सा स्त्री का कस्य भार्या वा किं रूपा कीदृगेव वा ।
तदपि श्रोतुमिच्छामि भवतस्तपसांनिधेः ॥५१४॥
रम्भे गदितवत्येवं मानसः स विधेः सुतः ।
किञ्चित् कषायितो भूत्वा तातं ते प्रत्यभाषत ॥५१५॥

[सनत्कुमारेण देव्या महिम्नः कीर्तनम्]

तां न जानन्ति दैतेय चत्वारो निगमा अपि ।
न पुराणानि सर्वाणि सेतिहासानि तत्त्वतः ॥५१६॥
न जानीतो हरिहरौ न च जानाति मे पिता ।
अहञ्च नैव जानामि याथातथ्येन तां स्त्रियम् ॥५१७॥
त्वं तां कथं ज्ञास्यसि रे स्वल्पबुद्धे दुराशय ।
यत्पृष्टं तत् त्वया पृष्टं न प्रष्टव्यमतः परम् ॥५१८॥
पृष्टेऽपि न मया वाच्यं गच्छ हे रम्भ मा चिरम् ।
इत्थमाभाषमाणं तं विधुन्वानं स्वकं शिरः ॥५१९॥
किञ्चित्सञ्जातसंरम्भमालोक्य मुनिपुङ्गवम् ।
प्रणम्य पादयोर्मूर्ध्ना तस्यानुज्ञां प्रगृह्य च ॥५२०॥
सहास्माभिर्निववृते तव जन्मप्रदः प्रभुः ।
इत्येवं पूर्ववृत्तान्तं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥५२१॥
श्रुतवानस्म्यपि तथा पितस्तेऽनुचरः सदा ।
कात्यायनाश्रममिदं तदवेद महामते ॥५२२॥
मुनिः स एवायमपि तपस्वी योगिनां वरः ।
यन्नाम्नाख्यायते देवी कात्यायन्यतिसुन्दरी ॥५२३॥

स एवायं कपोतोऽपि यस्त्वया मोहितः क्षणात् ।
श्रीफलाद् या विनिष्क्रान्ता स्त्री दिव्याकारधारिणी ॥५२४॥
सनत्कुमारकथिता सैवेयमिति बुध्यते ।
प्रायो विनाशकालोऽपि मन्येऽहं समुपस्थितः ॥५२५॥
तवैतेषां च दैत्यानां युक्तानां कालधर्मणा ।
प्राप्स्यस्यद्यैव मृत्युं त्वं यद्येनां योत्स्यसे स्त्रियम् ॥५२६॥
मयैतद् हृदि निर्णीतं श्रुत्वा वाक्यं मुनेः पुरा ।
न श्रोष्यसि वचश्चेन्मे हितकृन् महिषासुर ॥५२७॥
सेनापतीन् हतान् वीक्ष्य एकाकिन्या स्त्रियैतया ।
वत्स शोचिष्यसि प्राय आत्मानं च कृतागसम् ॥५२८॥
इति देव रहस्यं ते मुन्युक्तं विनिवेदितम् ।
श्रुत्वा विचार्य हृदये यथेच्छसि तथा कुरु ॥५२९॥
युगन्धरेणैवमुक्ते वचने शर्मदायिनि ।
विमृष्य चेतसि धिया वचनेऽस्य विधाय च ॥५३०॥
प्रत्ययं तथ्यवाक्यस्य श्रुत्वा संवादमीदृशम् ।
सनत्कुमारपित्रोस्त्वं निवृत्तोऽसि महाहवात् ॥५३१॥
निवृत्ते त्वयि तत्सैन्यं निवृत्तं सर्वमेव हि ।
प्रकृतिस्थः कपोतोऽथ ज्ञात्वा स्वस्येदृशीं दशाम् ॥५३२॥
कृतां त्वया स चुक्रोध महापत्रपयाऽन्वितः ।
सोऽपि शापं ददौ तुभ्यं छलितो मायया त्वया ॥५३३॥

[महिषासुराय कपोतशापः]

दैत्यापसद रे रम्भतनूज महिषासुर ।
यस्मादसंवीतरागो मुनिर्ध्यानपरायणः ॥५३४॥
प्रलम्भमीदृशं घोरं प्रापितो दैत्यमायया ।
त्वया तस्मादमुष्यान्ते भक्तिभाजोऽपि निर्भरम् ॥५३५॥
तथालब्धवरस्यापि युद्धकाल उपस्थिते ।
तवैषैव जगद्धात्री प्रज्ञामपहरिष्यति ॥५३६॥

गुरोर्युगन्धराच्चापि पितामहसुतादपि ।
महिमानं निशम्यास्या यद्यपि त्वं करिष्यसि ॥५३७॥
भक्ति देव्यां दृढां दैत्य सर्वदाऽव्यभिचारिणीम् ।
सा ते न स्थास्यति पुनर्मरणे प्रत्युपस्थिते ॥५३८॥
त्वच्छिरश्छेदिनीं सैरिभीयलाङ्गूलधारिणीम् ।
देवीमीदृग्रूपवतीं महिषासुरघातिनीम् ॥५३९॥
अहं सम्भावयिष्यामि तार्तीयशरदर्चया ।
एवमाकर्णयन्नेव तत्रादत्तश्रुतिर्भवान् ॥५४०॥
व्यपागा आश्रमाद् भीतः शपनाद् गुरुशिष्ययोः ।
करे धृत्वा कपोतं तमृषिः कात्यायनोऽपि च ॥५४१॥
[देव्या उक्तिः]
विवेशोटजमात्मीयं पादयोरभिवाद्य माम् ।
व्युपयाते त्वयि तदा सद्यः कात्यायनाश्रमात् ॥५४२॥
अहमन्तर्हिताऽभूवं संहरन्ती स्वकां त्विषम् ।
हिरण्यपुरमागत्य त्वं तदेव स्मरन्मम ॥५४३॥
रूपमस्त्रं वपुः शौर्यं शर्म न प्राप्तवानसि ।
सनत्कुमारवाक्यैस्तैर्युगन्धरमुखोद्गतैः ॥५४४॥
शापैः कात्यायनस्यर्षेराविर्भावैर्ममापि च ।
बिल्ववृक्षादपूर्वास्त्ररूपयुक्तैर्निरीक्षितैः ॥५४५॥
भीतस्त्वं मामगा दैत्य शरणं भक्तिभावितः ।
समं युगन्धरेण त्वं सम्मन्त्र्योशनसा सह ॥५४६॥
कर्मणा मनसा वाचा मामाराधितवानसि ।
मन्त्रो यः षोडशार्णाख्यो नित्यं रुद्रेण जप्यते ॥५४७॥
तं भार्गवात् त्वमादाय जप्तवान् कोटिसम्मितम् ।
आकारितेव तेनाहमागतास्मि त्वदन्तिकम् ॥५४८॥

वरदानाय दैत्येन्द्र मन्त्राराधनविह्वला ।

[देव्या महिषासुराय वरदानम्]

अतः परं शृणु वचो मम सारतरं हितम् ॥५४९॥
वरः संप्रार्थितो यस्ते शापो यश्चर्षिणार्पितः ।
उभयोरैक्यमायातं तव भाग्यवशादिदम् ॥५५०॥
उग्रचण्डास्वरूपेण नेह जन्मनि वै मया ।
त्वं हन्तव्यो महादैत्य भद्रकाल्या न चाकृतिम् ॥५५१॥
धृत्वा यतो विभेषि त्वं ते रूपे सन्निरीक्ष्य मे ।
दृष्टवानसि विल्वे मे यादृशं रूपमुत्तमम् ॥५५२॥
तादृग्रूपधरैवाहं त्वां हन्त्री नात्र संशयः ।
तादृशं वीक्ष्यमाणस्य रूपं निरुपमं मम ॥५५३॥
प्राणास्ते नोत्क्रमिष्यन्ति शरीराद् दितिजाधिप ।
अन्यच्च ते वरं दद्मि दुष्प्रापं विष्णुवेधसोः ॥५५४॥
वारद्वयं निहत्य त्वां त्यक्तवत्यस्म्यपूतवत् ।
अशुचि कुणपं प्रेतं दुर्गन्ध्यङ्गमचेतनम् ॥५५५॥
विनिर्भिद्य त्रिशूलेन तवोरो वज्रसन्निभम् ।
उष्णीषगुण्ठितान् केशान् गृहीत्वा वामपाणिना ॥५५६॥
महिषाकारदेहस्य दत्वा मूर्ध्नि पदं तव ।
किञ्चिद् भ्रूभङ्गकुटिलदृष्टया त्वां वीक्ष्य सादरम् ॥५५७॥
पिबन्तं मन्मुखेन्दूद्यत्सुषमाचन्द्रिकामृतम् ।
स्थास्यामि मुनिनिर्दिष्टरूपधारिण्यकुञ्चिता ॥५५८॥
अन्यदेकं प्रयच्छामि वरं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
आशास्यं सर्वदा ब्रह्मप्रभृतीनां दिवौकसाम् ॥५५९॥
मया गृहीतकेशस्य स्मित्वा चञ्चलया दृशा ।
सभ्रूभङ्गं वीक्षितस्य पिबतो मन्मुखद्युतिम् ॥५६०॥
मत्पादाम्बुजसंस्पर्शपवित्रीकृतवर्ष्मणः ।
प्रतिब्रह्मदिनोद्भूतमूर्तेः संसारधर्मिणः ॥५६१॥

द्वे निखर्वे तथा चाष्टावयुतानि सुरार्दन ।
अन्यान्यष्टौ सहस्राणि कल्पा ब्रह्मदिनात्मकाः ॥५६२॥
यावद् गमिष्यन्ति तावज्जन्म ते न भविष्यति ।
मद्देहसंस्पर्शवशाच्छरीरात्तव दैत्यप ॥५६३॥
उत्क्रमिष्यन्ति न प्राणा एतावन्तमनेहसम् ।
जीवन् स्थास्यसि पूर्वोक्तप्रभावबलपौरुषः ॥५६४॥
अन्यौ च यौ वरौ चित्ते जागरूकौ हि तिष्ठतः ।
अनिवेदितावपि पुनर्भवता विदितौ मया ॥५६५॥
तावप्युल्लिख्य भवते संप्रयच्छामि सत्वरम् ।
अन्ययानवदप्येतामनुगृह्य तनुं मम ॥५६६॥
तत्र तत्र प्रयाहि त्वमिति चित्ते कृतं त्वया ।
उत्तरं तस्य ते वच्मि चित्तश्रवणसौख्यदम् ॥५६७॥
नाल्पेन पुण्यकूटेन नाल्पेन तपसा तथा ।
मम वाहनता लभ्या केनापि दितिजाधिप ॥५६८॥
तपः कृत्वा पुरा विष्णुः कल्पानामयुतं महत् ।
नरसिंहतनुं धृत्वा मम वाहनतां गतः ॥५६९॥
इत्थं शिवोऽपि तपसा मामाराध्य चिरं पुरा ।
विधृत्य च शिवारूपमाकारं भैरवस्य च ॥५७०॥
मदीयासनतामाप सदा सान्निध्यहेतवे ।
शवासनां मां विज्ञाय शम्भुर्धृत्वा तनुत्रयम् ॥५७१॥
एकं त्रिगुणरूपाङ्गं रुद्रेश्वरसदाशिवम् ।
ब्रह्माविष्णुश्च पञ्चैते मिलितास्तप उत्तमम् ॥५७२॥
विधाय धृत्वा प्रेताख्यां वाहनत्वमगुः पुरा ।
एवं युगपुराणोपवेदवेदतपोमखाः ॥५७३॥
दिक्पालाष्टैश्वर्यसिन्धुमेर्वग्निस्मरमृत्यवः ।
वासुक्यनन्तादिकोलकूर्मघोटककन्धराः ॥५७४॥

तपोभिर्मां समाराध्य तोषयित्वा च पूजया ।
वाहनत्वं मुदा मेऽगुर्दुष्प्रापं कोटिजन्मभिः ॥५७५॥
भवतोऽकुणपीभूतं लौलायीयमदो वपुः ।
वामाङ्घ्रिभारसहनं भविता वाहनं मम ॥५७६॥
अन्यद्वरं सर्वदैव यज्ञभागबुभुक्षया ।
उत्कण्ठितं तव मनः समाधास्यामि तच्च ते ॥५७७॥
यज्ञेषु भागा यावन्तः कल्पिता ब्रह्मणा पुरा ।
दत्ता विभज्य ते सर्वे त्रिदशेभ्यः पृथक् पृथक् ॥५७८॥
न चैकोऽप्यवशिष्टोऽस्ति भागो यस्तं ददामि ते ।
प्रवर्तते यत्र यत्र शारद्यर्चा ममासुर ॥५७९॥
तत्राष्टनायिकापूजानन्तरं तव पूजनम् ।
प्रावर्तिष्यत इत्येष यज्ञांशस्तुभ्यमर्पितः ॥५८०॥
एवमिच्छा कदाचिच्चेत् चित्ते तव भविष्यति ।
योत्स्येऽहं नानया सार्द्धं नाचरिष्यामि शत्रुताम् ॥५८१॥
दृढां भक्तिं विधास्यामि जीवन् स्थास्यामि तेन हि ।
नेदं कदापि भविता तत्र मे कारणं शृणु ॥५८२॥
स्वर्गभ्रष्टाः सुराः सर्वे यज्ञभागवहिष्कृताः ।
नरादप्यधमा भूत्वा छन्नास्तिष्ठन्ति भूतले ॥५८३॥
तेषां त्राणार्थमन्यच्च चतुरङ्गबलं तव ।
सदानवबलं नैव माति त्रिभुवनोदरे ॥५८४॥
तद्धत्वा सावकाशं हि कर्तव्यं जगतोत्रयम् ।
शिवस्त्वं वरदानेन रम्भस्य सुततां गतः ॥५८५॥
मन्वन्तरत्रयं साग्रं भुक्तवांश्च जगत्त्रयम् ।
अतः परं न वस्तव्यं त्वया दितिजदेहिना ॥५८६॥
स्वपुरं प्रति गन्तव्यं मम लोकादधस्थितम् ।
कात्यायनस्य शापाच्च शिरश्छेदनहेतुकात् ॥५८७॥

युद्धकाले स्थास्यति नो भक्तिरेतादृशी तव ।
कपोतशापादीदृक्षादित्युक्ता पञ्चहेतवः ।।५८८।।
महिषायेदृशं दत्वा वरमुक्त्वा पुरा कथाम् ।
[देव्या अन्तर्धानम्]
सपद्यन्तर्दधे काली वर्षासु चपला यथा ।।५८९।।
[महिषासुरस्य दानवत्वाचरणम्]
देव्यामन्तर्हितायां स सर्वं विस्मृतवान् क्षणात् ।
बभूव पूर्ववद्द्वेष्टा यज्ञदेवद्विजन्मनाम् ।।५९०।।
प्रणष्टा भक्तिरस्यापि देव्यामव्यभिचारिणी ।
पूर्वोदन्तस्मृतिर्भ्रष्टा ज्ञानमन्तर्हितं च तत् ।।५९१।।
इति ते कथितो देवि वृत्तान्तः पूर्वसम्भवः ।
सिद्धान्तमनया बोध्यं रीत्या शाक्ता विचक्षणाः ।।५९२।।
सिद्धान्तनिर्णयकृते कथिताख्यायिकाऽप्यसौ ।
[मूर्तिभेदेन शारदीपूजायास्त्रैविध्यकथनम्]
इयं हि शारदी पूजा मूर्तिभेदात् त्रिधा मता ।।५९३।।
तत्तद्द्रव्यमधिष्ठाय नृणां गृह्णाति सार्चनम् ।
[शारदीपूजायाः प्रथमविधिः]
येऽष्टादशभुजां देवीमुग्रचण्डाभिधां प्रिये ।।५९४।।
पिपूजयिषवो मर्त्यास्तदुपासकतामिताः ।
त आश्विननवम्यां वै कृष्णायां सुसमाहिताः ।।५९५।।
करबाले बोधयेयुर्मध्याह्ने शङ्खनिस्वनैः ।
खगानजान् वा महिषानेणान् वान्यान् बलीनपि ।।५९६।।
रीतिं सङ्कलितां कृत्वा दद्युः षोडशवासरान् ।
एषाद्या महिषालम्भकर्त्रीपूजाविधिर्मतः ।।५९७।।
[शारदीपूजायाः द्वितीयविधिः]
अथ माध्यमिकः पक्ष ईषस्याद्यतिथौ सिते ।
प्रातः पटहनिस्वानैः सढक्कानकगोमुखैः ।।५९८।।

ईश्वरीं षोडशभुजां भद्रकालीति नामिकाम् ।
सम्बोध्येषे पूजयेयुर्दिनानि नव वै प्रिये ॥५९९॥
अपूपमोदकप्रायबलिसङ्कलितक्रमैः ।

[शारदीपूजायास्तृतीयविधिः]

तृतीय पक्ष ईदृक्ष उदितस्त्रिपुरारिणा ॥६००।
अश्वयुक्सितषष्ठ्यां वै शाखायां बिल्वशाखिनः ।
सायं काले बोधयित्वा वाद्यैरुच्चावचोद्भवैः ॥६०१॥
दुर्गादेवीमर्चयीत सप्तम्यादिदिनत्रये ।
दशबाहुधरां देवीं महासौन्दर्यशालिनीम् ॥६०२॥
रीतिः साङ्कलितेयात्र बिल्वपत्रस्य कीर्तिता ।
अथवा करवीरस्य शक्त्या च महिषाजयोः ॥६०३॥
स्वस्वशक्त्यनुसारेण सर्वमन्यत् प्रकीर्तितम् ।

[शारदीपूजावसरे कर्तव्याभिधानम्]

होमो जपः कुमार्यर्चा साधकानां च भोजनम् ॥६०४॥
उपोषणमथो मौनं प्रभूतफलहेतवे ।

[वस्तुविशेषबोधनरहस्याभिधानम्]

हननात् खड्गवाणाभ्यां तत्र तत्र तु बोधनम् ॥६०५॥
आविर्भावाद् बिल्वतरोरत्र बोधनमाचरेत् ।
तत्तन्नक्षत्रलाभे तु फलभूमा प्रजायते ॥६०६॥
नक्षत्राणामलाभे तु केवलायां तिथौ चरेत् ।

[चतुर्थीतिथिकर्तव्याभिधानम्]

सत्यां शक्तौ चतुर्थ्यां वै देव्याः केशं विमोचयेत् ॥६०७॥
तत्र पूजा विधातव्या महाविभवविस्तरैः ।
उद्वर्तनं कङ्कतिकां केशबन्धनडोरकम् ॥६०८॥
नखरञ्जशलाकां च सिन्दूरालक्तकज्जलम् ।
सुगन्धितैलोष्णजलपिष्टातामलकादिकम् ॥६०९॥

दद्याद् देव्यै विशेषेण भक्तिभावेन पार्वति ।

[पद्धतिभेदेन शारदीपूजाया द्वैविध्याभिधानम्]

पूजायाः कथितं चात्र द्वैविध्यं मुनिपुङ्गवैः ॥६१०॥
पौराणिकं तान्त्रिकं च कालिकाप्रीतिसिद्धये ।

[पौराणिकपूजाया उत्तममध्यमाधम भेदेन त्रैविध्याभिधानम्]

ऋतध्वजाय प्राङ् नन्दिकेश्वरेण यदीरितम् ॥६११॥
तद्वै बहुलविस्तारं शारदीयार्चनं मतम् ।
यद् देव्या स्वयमाख्यातं कपिलाय महर्षये ॥६१२॥
तन्नातिबहुलं नातिस्वल्पं मध्यममुच्यते ।
यदौर्वेण समाख्यातं सगराय महीभृते ॥६१३॥
तद्विज्ञेयं सुरेशानि कनीयः शरदर्चनम् ।
तान्त्रिकं बहुतन्त्रोक्तं सर्वैः स्वस्वमतागतम् ॥६१४॥
यो येनैव क्रमेणैतां शरदर्चां वरानने ।
विधत्ते समवाप्नोपि फलं तत्तत्क्रमेण हि ॥६१५॥
तान्त्रिके कौलिकी रीतिः पुराणे वैदिकी मता ।
यद् येभ्यो रोचते देवि प्रतिनन्दन्ति ते हि तत् ॥६१६॥

[पूजास्थाननिर्णयाभिधानम्]

अथ पूजा प्रकर्तव्या केषु केषु स्थलेषु हि ।
तत्रोत्तरं ते वदामि शृणुष्वावहिता सती ॥६१७॥
तैजसे प्रतिमायन्त्रेऽथवा माहेयदारवे ।
शैलेये अथवा देवि धातवे गिरिसम्भवे ॥६१८॥
विल्ववृक्षः पत्रिका च घटः पूर्ववदीरितः ।
गोमयेनोपलिप्तं वा स्थण्डिलं जगदीश्वरि ॥६१९॥
सिन्दूराङ्कं मण्डलं वा शूलखड्गशरास्तथा ।
पुस्तकं वा चित्रपटं सर्वतोभद्र एव वा ॥६२०॥

अनादिपीठं च तथा शिवलिङ्गं तथैव च ।
जलमग्निस्तथा खातनृकरोटिस्थलं शुभम् ॥६२१॥
एवमादीनि चान्यानि स्थानान्यर्चनहेतवे ।

[पत्रिकापरिचयः]

पत्रिका तु परिज्ञेया कदलीविल्वदाड़िमाः ॥६२२॥
हरिद्राशोककच्यश्चजयन्तीधान्यमालिनी ।

[सर्वतोभद्रपरिचयः]

एकाशीतिपदं चक्रं सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥६२३॥
भित्तौ चित्रीकृता देवि पूजिता फलदायिनी ।

[अष्टमीनवम्योः विशेषविधिः]

अष्टम्यां तु विशेषेण पूजा कार्यात्र पार्वति ॥६२४॥
प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां होम एव वा ।
अष्टमीनवमीसन्धौ विशेषात् पूजनं चरेत् ॥६२५॥
नवम्यां बलिदानानु कुमारीपूजनं तथा ।
दिनत्रयेऽपि च महास्नानं देव्याः प्रकल्पयेत् ॥६२६॥
तत्तन्नक्षत्रलाभस्तु फलाधिक्याय कल्पते ।
भानामलाभे तु पुनः प्रशस्ता केवला तिथिः ॥६२७॥
शरदर्चाविधौ देव्याः स्थापनं च विसर्जनम् ।
चरलग्ने चरांशे वा कुर्यात् सर्वसमृद्धये ॥६२८॥
अन्यलग्नेऽन्यांशके वा विपरीतफलप्रदम् ।

[अष्टम्युपवासस्य कर्तव्याभिधानम्]

उपवासं तथा कुर्यादष्टम्यां कालिकामुदे ॥६२९॥
सिद्धचर्थं स्वाभिलाषाणां तथान्येषां च शर्मणाम् ।

[पुत्रवत अष्टम्युपवासनिषेधः]

किन्तु पुत्री न कुर्वीत कृते पुत्रः प्रणश्यति ॥६३०॥

[स्त्र्युपयोगिवस्त्वर्पणाभिधानम्]

स्त्र्युपयोगीनि वस्तूनि वचनादीनि यानि हि ।
तानि देव्यै प्रदेयानि विभवाद्यनुरूपतः ॥६३१॥

[शारदीपूजायामुत्सवाचरणाभिधानम्]

पुत्रोत्पत्तिविवाहादिवदुत्सवमिहाचरेत् ।
तेन तुष्टा महादेवी भवेदभ्यर्चनादपि ॥६३२॥
तेनास्यां शरदचार्यामानन्दमधिकं चरेत् ।
अस्मिन्नर्थेऽम्बिकागीतं वचनं शृणु मे प्रिये ॥६३३॥

[देवीवाक्यस्यात्र प्रामाण्याभिधानम्]

ममानन्दे सदानन्दः सदानन्दो भविष्यति ।
ममानन्दे निरानन्दो निरानन्दो भविष्यति ॥६३४॥
यथाहमस्यां तुष्यामि तथैवायं मदर्चकः ।
सुखी वत्सरपर्यन्तं भवताद् वचनान् मम ॥६३५॥
ममोत्सवे तु योऽश्रूणि मूढो मुञ्चति मानवः ।
स सम्वत्सरपर्यन्तमश्रूण्येव विमुञ्चतु ॥६३६॥
अनुलेपनवासःस्रगलङ्कारादिभूषितः ।
विहरेद् यो ममानन्दे नृत्यन् गायन् हसन् बहु ॥६३७॥
एवंरूपः सोऽब्दमेकं विहरत्वकुतोभयः ।
यो यादृशोऽस्यां भवति तादृगेव भवत्वसौ ॥६३८॥
अतोऽत्र संहृष्टमना विशेषेण भवेत् प्रिये ।
असंहृष्टः शिवाक्रोधात् सद्यो नश्यति सान्वयः ॥६३९॥

[विजयादशमीकृत्यम्]

अथ नीराजनं कुर्याद् दशम्यां स्वस्वशक्तितः ।
भूपो रथान् द्विपानश्वान् भूषयित्वा बलं तथा ॥६४०॥
नगरं मण्डयित्वा च नटनर्तनगायनैः ।
सार्द्धं विसर्जयेद् देवीं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥६४१॥
पत्रिका प्रतिमादीनि कुम्भचित्रपटादि च ।
अगाधे निर्मले तोये स्थापयेन् मन्त्रपूर्वकम् ॥६४२॥

जलक्रीडामाचरेत वारिधाराहतिक्रमैः ।
अश्लीलानुच्चरेच्छब्दानुन्मत्तवदपत्रपः ।।६४३।।
मादकं भक्षयेद् द्रव्यं स्वस्वभक्ष्यं सुरेश्वरि ।
क्षीबवद् विह्वलो भूत्वा स्खलेदपि पतेदपि ।।६४४।।
क्रीडितव्यं शबरवदात्मानं विस्मृतैरिव ।
अत एवैष उद्दिष्टः पुराणे शबरोत्सवः ।।६४५।।
भगलिङ्गाकृतीः कृत्वा भाषयेद् युवतीरपि ।
वाचकानीरयेच्छब्दान् नार्यग्रे योनिशिश्नयोः ।।६४६।।
तथा च वारवनिता भूषयित्वा विशेषतः ।
सार्द्धमाभिर्वलिगतव्यं वचोऽश्लीलं हसोत्तरम् ।।६४७।।
स्वयं परानाक्षिपेत परोऽप्येनं तथाक्षिपेत् ।
धूलिभिः कर्दमैस्तोयैर्हन्यादथ परस्परम् ।।६४८।।
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ।
तस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात् सुदारुणम् ।।६४९।।
विसर्जिताया देव्यास्तु पुरः कुर्यादमुं विधिम् ।
सुरताभिनयादीनि कुर्यान् मन्दाक्षवर्जितः ।।६५०।।
यथा तपस्यराकायां त्रयोदश्यां स्मरस्य च ।
विधीयते तथात्रापि विधातव्यो महामहः ।।६५१।।
अनेन तुष्यते देवी बलिहोमाचर्नादिवत् ।
तस्मादमुं प्रकुर्वीत विधिं भगवतीमुदे ।।६५२।।

[शारदीपूजायाः फलश्रुतिः]

अनेन विधिना देवीं पूजयेत् यो हि मानवः ।
मर्त्ये स श्रेष्ठतां याति धनधान्यसुतान्वितः ।।६५३।।
नीचो वा निर्गुणो वापि शौचाचारविवर्जितः ।
मानवः स्वर्गमाप्नोति विधिना पूजयञ्छिवाम् ।।६५४।।

शबरोत्सववत् कार्यं कुमारीभोजनं तथा ।
न तथा तुष्यति शिवा बलिहोमजपादिभिः ॥६५५॥
कुमारीभोजनेनात्र यथा सद्यः प्रसीदति ।
समन्त्रार्चा कुमारीणां समन्त्रः शबरोत्सवः ॥६५६॥
देवीविसर्जनं रात्रौ प्रवेशं वा करोति यः ।
विपत्तिर्जायते तस्य पूजा च विफला भवेत् ॥६५७॥
न दशम्यां बलिं दद्याच्चामुण्डाभागमन्तरा ।
दत्ते तत्र बलौ देवि देव्यै सङ्कलितक्रमैः ॥६५८॥
सद्यो नाशमवाप्नोति मरकोपद्रवादिभिः ।
यथा प्रशस्तं प्रतिमायन्त्रयोः पूजनं प्रिये ॥६५९॥
त्रिशूलखड्गयोस्तद्वदुक्तं त्रिपुरवैरिणा ।
शारदर्चोक्तरीत्या यो विभवस्यानुरूपतः ॥६६०॥
नवम्यां पूजयेद्देवीं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥६६१॥
तत्फलं समवाप्नोति दिवि देवगणैर्वृतः ।
देवीमभ्यर्च्य यः कुर्याच्छुक्लाष्टम्यामुपोषणम् ॥६६२॥
अपुत्र आश्विने मासि भक्तिगौरवयन्त्रितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो न स याति यमालयम् ॥६६३॥
एकादशीशतात् कान्ते विशिष्टेयं सिताष्टमी ।
सम्बत्सरमुपोष्यैव सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥६६४॥
उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत् ।
सर्वं पूजाक्रमं चान्यं विशेषेण समाचरेत् ॥६६५॥
भक्त्या सम्पूजयेद् देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये ।
त्रिभिश्चतुरहोभिर्वा द्वाभ्यां वाक्रामतस्तिथेः ॥६६६॥
षष्ठ्यां सायाह्नसमये बिल्वे देव्यभिबोधनम् ।
देव्याः प्रवेशः सप्तम्यामष्टम्यां महदर्चनम् ॥६६७॥

महास्नानं महापूजा बल्योघो नग्निकार्चनम् ।
रात्रौ जागरणं चापि शक्तिभिः सह केलयः ॥६६८॥
सर्वाण्येतानि कृत्यानि नवम्यां कथितानि हि ।
विसर्जनं दशम्यां च क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥६६६॥
धूलिकर्दमविक्षेपोऽश्लीलोक्तिः पामरादिवत् ।
नीराजनं बलादीनां मल्लादीनां नियोधनम् ॥६७०॥
पश्वादीनां कैलकिनं चर्य्या च नगराद् बहिः ।
प्रोक्तानि कार्याण्येतानि देव्याः शारदपूजने ॥६७१॥
एनं विधिं विधत्ते यो भक्तिभावेन मानवः ।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते ॥६७२॥
गण्यन्ते पांशवो भूमेर्गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः ।
न गण्यन्ते विधात्रापि शरदर्चाफलानि हि ॥६७३॥
राजसूयसहस्रस्य वाजिमेधशतस्य च ।
अन्येषां यागपूजानामयुतस्य वरानने ॥६७४॥
फलं प्राप्नोति मनुजः सत्यं सत्यं न संशयः ।
देववत् क्रीडति दिवि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६७५॥
देवीलोके वसेत् कल्पं प्रमथादिगणैर्युतः ।
विच्छिद्यते न चामुष्य सन्ततिर्जगतीतले ॥६७६॥

[उपचारकामचारतानिर्देशः]

उपचाराः षोडश वै कर्तव्या विभवे सति ।
अभावे ते दशैव स्युस्तदभावेऽपि पञ्च ते ॥६७७॥

[षोडशोपचारविवरणम्]

आसनं पाद्यमर्घ्यं च तत आचमनीयकम् ।
मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रभूषणचन्दनम् ॥६७८॥
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नेत्राञ्जनमतः परम् ।
नैवेद्याचमनीये च प्रदक्षिणनमस्कृती ॥६७६॥

एते षोडश निर्दिष्टा उपचाराः शिवार्चने ।
पुरैव सर्वविषयव्यवस्थैषा मया तव ॥६८०॥
नित्यपूजाप्रसङ्गेन विशिष्य प्रतिपादिता ।
गन्धस्य धूपदीपस्य तथा नैवेद्यपुष्पयोः ॥६८१॥
वस्त्राणां भूषणानां च रचनानां तथैव च ।
तथा राजोपचाराणां बलीनां च विशेषतः ॥६८२॥
स्वभूतिसदृशं कार्यमाधिक्यं कमलानने ।
आवश्यकत्वमुदितं पुष्पजातिषु पार्वति ॥६८३॥
बिल्वपत्रजपापद्मचण्डातानां क्रमागतम् ।
फले मालूरखर्जूरमोचाकण्टकिनामपि ॥६८४॥
नैवेद्येष्वपि विज्ञेयं सघृतं पायसं पुरः ।
घृतखण्डविकाराश्च तदनु प्रस्थिताः प्रिये ॥६८५॥
पयः पिण्डीकृतं चाथ ततो मोदकपिष्टके ।
धूपादीनां ज्ञेयमेवं पुराणमुनिभाषितात् ॥६८६॥
नित्यपूजाप्रकरणे मया यः परिकीर्तितः ।
देयोपचारनियमः स एवात्रापि गृह्यते ॥६८७॥
फलानामपि तादृक्षा देयादेयविचारणा ।
नैमित्तिकार्चासमये पशुदानक्रमो हि यः ॥६८८॥
विहिताविहितत्वेन मया ते प्रतिपादितः।
स फलप्रक्रियामन्त्रः शारदार्चास्वपीष्यते ॥६८९॥
इयं हि पूजा द्विविधा पौराणी तान्त्रिकी तथा ।
आद्ये पौराणिका मन्त्रास्तान्त्रिके तन्त्रसम्भवाः ॥६९०॥

[शारदीपूजायास्तान्त्रिकमन्त्राभिधानम्]

ते तेष्वेवानुसन्धेयास्तान्त्रिकं शृणु मे प्रिये ।
तत्राप्ययं त्वया ज्ञेय सिद्धान्तक्रम ईदृशः ॥६९१॥
अष्टादशभुजामुग्रचण्डां वा भद्रकालिकाम् ।
करैः षोडशभिर्युक्तामथो दशभुजामपि ॥६९२॥

मूर्तिपीठौ तथा स्वेष्टदेवभूतौ प्रपूजयेत् ।
तन्त्रोदितविधानेन शरदर्चनसिद्धये ॥६६३॥
क्रमः स एव पौराणोऽदसीयः कोऽपि चाधिकः ।
संक्षेपबाहुल्ययुतमुभयं परिगृह्यते ॥६६४॥
शरदर्चाविधौ पीठमूर्त्योः प्रागुक्तलक्षणः ।
तैथः क्रमो नवम्यादिरुपयोगाय नार्हति ॥६६५॥
एवं स्वस्वमतायातसिद्धान्तागमभाषिणः ।
वदन्ति नानायुक्त्युक्तीस्तत्तत्तन्त्रानुसारिणीः ॥६६६॥
तेषु वादं विहायाशु श्रद्धां वद्ध्वा मदीरिते ।

[शारदपूजायास्तान्त्रिकक्रमः]

कुर्वीरन् शारदीं पूजां देवीभक्तिपरायणाः ॥६६७॥
तिथौ शुक्लप्रतिपदि कृत्वोपक्रममीश्वरि ।

[बिल्वाभिमन्त्रणविधिः]

षष्ठेऽह्नि सायं समये कृतनित्यक्रियो दिवा ॥६६८॥
बोधयेद् बिल्वशाखायां देशिकः परमेश्वरीम्।
सङ्कल्पं पुरतः कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥६६९॥
सराशिमासपक्षस्य तिथेरुल्लेखनक्रमैः ।
सगोत्रनामोच्चरणं यजमानो विधाय हि ॥७००॥
दुर्गाबोधनकर्माहं करिष्य इति कीर्तयेत् ।
भुतशुद्धिं ततः कृत्वा षडङ्गं सर्षितत्परम् ॥७०१
आवाह्य बिल्वशाखायामथवा मूर्तिपीठयोः ।
उपचारैः षोडशभिर्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥७०२॥
पूजयित्वा जगद्धात्रीमर्द्धमस्तमिते रवौ ।
बिल्ववृक्षं च सम्पूज्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥७०३॥
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मुरजध्वनिगीतिभिः ।
बोधयेत् स्तुतिसंलापैर्वन्दीव वसुधाधिपम् ॥७०४॥

प्रोच्यमानं समुच्चार्य मन्त्रं सञ्चालयेच्छिवाम् ।
तारमैधे शाकिनी च कूटं स्वाप्नावतं तथा ॥७०५॥
विसन्धि भगवत्युक्त्वोत्तिष्ठद्वयमुदीरयेत् ।
निद्रां जहि युगं चापि प्रतिबुध्यस्व च द्वयम् ॥७०६॥
मम शत्रून् हन द्वन्द्वं पातय द्वितयं तथा ।
लज्जा रमा डाकिनी च फट् स्वाहा तदनन्तरम् ॥७०७॥
रजन्याद्ये मुहूर्ते तु चण्डिकामधिवासयेत् ।
सुगन्धितैलपीताभ्यां [?] पञ्चभिर्गन्धजातिभिः ॥७०८॥
पुष्पजातिविशेषैश्च तावद्भिरधिवासयेत् ।
सर्वमङ्गल्यवस्तूनि विधायैकत्र भाजने ॥७०९॥
प्रशस्तिबन्दनां देव्याः कारयेत् तदनन्तरम् ।
समांसमीनसिद्धान्नबलिं भूतेभ्य उत्सृजेत् ॥७१०॥
गीतैर्वाद्यैश्च नाट्यैनमस्कारैश्च जागरैः ।
देवीं सन्तोष्य वचनैर्व्याजस्तुत्याद्यनिन्दनैः ॥७११॥
सिद्धार्थकैर्मन्त्रपाठैः पूर्वरक्षां विधाय च ।
पूर्ववत्सर्वमाभाष्य मासपक्षतिथिक्रमैः ॥७१२॥
शरत्कालीनपूजाङ्गभूतश्वः कृत्यपत्रिका ।
अथवा प्रतिमापीठ यन्त्रस्थापनकर्मणि ॥७१३॥
दुर्गादेव्या गन्धपुष्पपट्टवासस्स्रगादिभिः ।
अधिवासनकर्माहं कुर्वीयेत्यभिजल्प्य च ॥७१४॥
पूर्ववद्भूतशुद्धिं च सर्षिं करषडङ्गकम् ।
प्राणायामत्रयं चापि कृत्वार्घ्यस्थापनं चरेत् ॥७१५॥
गणेशमथ दिक्पालान् ग्रहान्मातृस्तथैव च ।
वटुकान् क्षेत्रपालांश्च द्वाराध्यक्षांश्च योगिनीः ॥७१६॥
शक्त्योपचारैः सम्पूज्य पत्रिकापीठमूर्तिषु ।
आवाह्य देवीमिष्ट्वा च मूलमन्त्रोपचारकैः ॥७१७॥

शटीहरिद्रातैलानि एकीकृत्य समानि हि ।
चैतन्यकमलालज्जा गन्धाचारे रुडस्त्रकम् ।।७१८।।
उच्चार्य दद्यादलके शिरस्यपि च पादयोः ।
ततः कुङ्कुमकर्पूरकस्तूरीमलयोद्भवैः ।।७१९।।
एकीकृतैर्डाकिनीहृन्मन्त्रैस्तान्येव भूषयेत् ।
विल्वपत्रजवापद्मकरवीरापराजितान् ।।७२०।।
एकीकृत्यार्पयेन् मूर्ध्नि वदन् मदनमस्तके ।
माल्यैरापूरयेद् यन्त्रं प्रतिमां पत्रिकामपि ।।७२१।।
शाङ्खेपोषरनक्रोत्था [?] मृत्तिका मलयोद्भवः ।
गोरोचना धान्यदूर्वे दृषत् सिन्दूरकज्जलम् ।।७२२।।
हरिद्रास्वस्तिकालक्तदध्यक्षतफलस्रजः ।
धूपदीपौ मधुघृतकुमारीकरतन्तवः ।।७२३।।
घतसारो मृगमदं कक्कोलं कुङ्कुमं ततः ।
महौषधिगणाः सिद्धार्थकः स्वर्णमणी तथा ।।७२४।।
रौप्यं व्याघ्रनखाम्भोजं विष्णुक्रान्तापराजिते ।
एवमादीनि मङ्गल्यद्रव्याण्युक्तानि यानि हि ।।७२५।।

[देव्यै मङ्गल्यवस्तुसमर्पणमन्त्रः]

एकस्मिन् भाजने तानि एकीकृत्य पृथक् पृथक् ।
देव्याः शिरोवक्षसि च तारमैधत्रपाशिरः ।।७२६।।
प्रोच्चरन् समनुत्तोल्य त्रिवारं स्पर्शयेच्छनैः ।
भूतादिभ्यो बलिं दद्यात् तत्तद्बीजं पुरः स्मरेत् ।।७२७।।
तत्तन्नाम भ्यसन्तं च सन्धिनैष बलिर्नमः ।
दश दिक्षु क्षिपेच्चापि राजिकाश्वेतसर्षपौ ।।७२८।।
ताराद् रक्षयुगं चास्त्रं शिरः कूर्चोऽन्तिमे तथा ।
वाणैश्चतुर्भिः सम्बेष्टच तांश्च कल्पोक्ततन्तुभिः ।।७२९।।

अस्त्राण्यस्याः पुरः कृत्वा जागृयात् सकलां निशाम् ।

[फलयुतबिल्वशाखाच्छेदनमन्त्रः]

अथो उषसि सप्तम्यां कृतनित्यक्रियो बुधः ॥७३०॥
पूर्ववद् बिल्वशाखायां देवीमभ्यर्च्य मानवः ।
शितां गृहीत्वा छुरिकां मन्त्रमेनं समुच्चरन् ॥७३१॥
फलद्वययुतां शाखां छिन्द्याद् बिल्वस्य साधकः ।
चैतन्यं प्रणवो माया रोषरावौ च डाकिनी ॥७३२॥
इमां शाखां छिन्धि युगं छेदय द्वितयं तथा ।
अस्त्रद्वयं शिरश्चापि गृहीत्वा तां करद्वये ॥७३३॥
बद्धाञ्जलिश्चतुर्मन्त्रान् पठेत् पौराणिकान् प्रिये ।
मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ ॥७३४॥
जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदाप्रियः ।
श्रीशैलशिखरे जात श्रीफल श्रीनिकेतन ॥७३५॥
नेतव्योऽसि मयागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ।
बिल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय ॥७३६॥
गृहीत्वा तव शाखां हि देवीपूजां करोम्यहम् ।
शाखाच्छेदोभद्वं दुःखं न च कार्यं त्वया तरो ॥७३७॥
देवैर्गृहीत्वा शाखां ते पूजिताम्बेति विश्रुतिः ।
पुनरन्यत् पद्यरूपं मन्त्रद्वयमुदीरयन् ॥७३८॥
पूजागृहाङ्गनद्वारि तां शाखां साधको नयेत् ।
पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं नयिष्ये त्वामुमाप्रियाम् ॥७३९॥
बिल्वशाखां समाश्रित्य राज्यं देवि प्रयच्छ मे ।
आगच्छ चण्डिके देवि सर्वकल्याणहेतवे ॥७४०॥
कात्यायनि गृहाणार्चां नमस्ते शङ्करप्रिये ।

[पत्रिकापूजाविवरणम्]

ततः पूर्वोदिताश्चान्या आहरेदष्टपत्रिकाः ॥७४१॥

ता एकीकृत्य लतयाऽपराजितसमाह्वया ।
सम्वेष्टय वसनेनापि पूजासङ्कल्पमाचरेत् ॥७४२॥
पूर्ववत् सर्वमुच्चार्य पत्रिकापीठमूर्तितः ।
ततश्च स्थापनमहं करिष्ये इति कीर्तयेत् ॥७४३॥
पत्रिकायां तथा मूर्तौ खड्गे वा यन्त्रकुम्भयोः ।
देवीमावाह्य सम्पूज्य विल्वपत्राञ्जलिद्वयम् ॥७४४॥

[देव्याः महास्नानविवरणम्]

दत्वा शक्तौ प्रकुर्वीत देव्याः स्नानं महोत्तरम् ।
तद्वै पौराणवैदिक्यमपि सङ्कीर्तयामि ते ॥७॥४५
शक्तौ दिनत्रयं कार्यमशक्तौ तु दिनद्वये ।
सर्वाभावे नवम्यां तु स्नानमावश्यकं मतम् ॥७४६॥
कुर्यादत्रापि सङ्कल्पं काम्यमेतद् यतः प्रिये ।
शतजन्मकृतात् पापान्मोचनं प्रथमं स्मृतम् ॥७४७॥
तथा चाष्टसहस्राब्दावच्छिन्नपदतः खलु ।
दुर्गालोकस्थितिरपि शतयज्ञफलाप्तियुक् ।७४८॥

[नवपत्रिकास्नापनविधिः]

नवापि पत्रिकाः शुद्धतोयेन स्नापयेत् ततः ।
प्रत्येकं तत्तदाख्याभिर्मूर्तौ नाम्ना धियापि च ॥७४९॥
मन्त्राणां पद्यरूपाणामादौ तारस्त्रपा स्मरः ।
रमा मैधं रावरोषौ डाकिन्यष्ट च वै नव ॥७५०॥
प्रत्येकं देवि देयानि तान्त्रिकस्नापनक्रमे ।
कदलीतरुसंस्थासि शम्भुवक्षःस्थलश्रिते ॥७५१॥
स्नापयाम्यद्य पत्रि त्वां नमस्ते हरवल्लभे ।
कच्चि त्वं स्थावरी भूता सद्यः सिद्धिविधायिनी ॥७५२॥
दुर्गारूपेण सर्वत्र स्नानेन विजयं कुरु ।
हरिद्रे ! हर दुःखानि शङ्करस्य सदा प्रिये ॥७५३॥

रुद्ररूपासि देवि त्वं सर्वशान्ति प्रयच्छ मे ।
जयन्ति जयरूपासि जगतां जयकारिणि ॥७५४॥
स्नापयामीह देवि त्वां जयं देहि गृहे मम ।
श्रीफल श्रीनिकेतोऽसि सदा विजयवर्द्धन ॥७५५॥
देहि मे धर्मकामार्थान् प्रसन्ना भव सर्वदा ।
दाडिम्यघप्रणाशाय क्षुन्नाशाय तथा नृणाम् ॥७५६॥
निर्मिताऽसि पुरा धात्रा प्रसीद त्वमुमाप्रिये ।
स्थिरा भव सदाऽशोके दुर्गे शोकविनाशिनि ॥७५७॥
मया त्वं पूजिता नित्यं स्थिरा भव भवप्रिये ।
ब्राह्मेषु मानो मानेषु माननीयः सुरासुरैः ॥७५८॥
स्नापयामि महादेवि मानं देहि नमोऽस्तु ते ।
लक्ष्मि त्वं धान्यरूपासि प्राणिनां प्राणदायिनी ॥७५९॥
स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे कामप्रदा भव ।

[नदीतोयेन देव्याः स्नापनम्]

ततो द्वित्रिनदीतोयं कृत्वा कलशगर्भगम् ॥७६०॥
चन्दनालोडितं चापि स्नापयेत्तेन चण्डिकाम् ।
शीता चालकनन्दा च वंक्षुर्भद्रा दृषद्वती ॥७६१॥
तुङ्गभद्रा कृष्णवेल्ला पयोष्णी नर्मदा तथा ।
तापी भीमरथी सिप्रा वितस्तैरावती तथा ॥७६२॥
गोदावती विपाशा च शतद्रुः सिन्धुरेव च ।
चर्मण्वती च कावेरी ताम्रपर्णी महानदी ॥७६३॥
करतोया बाहुदा च शोणो भद्रवती तथा ।
देविका भैरवः कोको गोमती चोत्पलावती ॥७६४॥
आत्रेयी भारती गङ्गा यमुना च सरस्वती ।
शरयूर्गण्डकी चापि श्वेतगङ्गा च कौशिकी ॥७६५॥
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ।
एताश्चान्याश्च या नद्यो भाषिता याश्च नेरिताः ॥७६६॥

देवखातानि तीर्थानि कूपा निर्झरसंज्ञकाः ।
सरांसि सिन्धवश्चापि संभेदा ये च भूतले ॥७६७॥
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु देवि दानवमर्दिनीम् ।

[देवद्वारा देव्याः स्नापनम्]

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥७६८॥
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवतीं स्नापयान्त्विमे ॥७६९॥
ख्याता ये द्वादशादित्या रुद्रा एकादशापि च ।
मरुतश्चोनपञ्चाशत् वेसवोऽष्टर्तवश्च षट् ॥७७०॥
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥७७१॥
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः स्नापयन्त्वमीः ।

[मातृकाद्वारा देव्याः स्नापनम्]

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा रतिः ॥७७२॥
बुद्धिर्लज्जा क्रिया शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु शक्तिरूपधरास्तव ॥७७३॥

[नवग्रहद्वारा देव्याः स्नापनम्]

आदित्यश्चन्द्रमाभौमबुधजीवसितार्कजाः ।
राहुः केतुश्च भवतीं स्नापयन्तु ग्रहा नव ॥७७४॥

[ऋष्यादिद्वारा देव्याः स्नापनम्]

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्योऽध्वरा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥७७५॥

[अस्त्रशस्त्रद्वारा देव्याः स्नापनम्]

त्रिशूलचक्रचापर्ष्टिभुशुण्डीपरिघा गदा ।
कुन्तमुद्गरखट्वाङ्गशक्तितोमरपर्शवः ॥७७६॥

पट्टिशो मुशलप्रासभिन्दिपालकटंकटाः ।
हुलाशतघ्नीकणपपाशकर्त्रीतलानि च ॥७७७॥
[शास्त्रद्वारा देव्याः स्नापनम्]
चत्वार ऋग्यजुः सामाथर्वणो निगमा हि ये ।
अङ्गानि शिक्षा कल्पश्च छन्दो व्याकरणं तथा ॥७७८॥
निरुक्तं ज्योतिषं चापि पुराणान्यखिलानि च ।
मीमांसान्यायवेदान्ताक्षपात्सांख्यपतञ्जलाः ॥७७९॥
स्मृतिशास्त्राणि सर्वाणि दण्डनीतिर्द्विधापि च ।
गन्धर्वायुर्धनुर्वेदाश्चतुष्षष्टिश्च याः कलाः ॥७८०॥
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि वाहनानि नृपास्तथा ।
औषधानि च सर्वाणि शिल्पविद्यादिकानि च ॥७८१॥
[नवरत्नद्वारा देव्याः स्नापनम्]
मुक्तामाणिक्यवैदूर्यवज्रेन्द्रमणयस्तथा ।
गोमेदपुष्परागौ च प्रवालः श्याम एव च ॥७८२॥
रत्नानीमानि चान्यानि कालस्यावयवाश्च ये ।
[समयद्वारा देव्याः स्नापनम्]
मन्वन्तराणि सर्वाणि चत्वार्यपि युगानि हि ॥७८३॥
अब्दमासर्तुपक्षाहोरात्रायनकला लवाः ।
राशिनक्षत्रयोगाश्च कालांशाश्चातिसूक्ष्मकाः ॥७८४॥
[सरितादिद्वारा देव्याः स्नापनम्]
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥७८५॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ।
सिन्धुभैरवशोणाद्या ये ह्रदा भुवि विश्रुताः ॥७८६॥
सर्वे सुमनसो भूत्वा भृङ्गारैः स्नापयन्तु ते ।
तक्षकाद्याश्च ये नागाः पातालतलवासिनः ॥७८७॥

स्नापयन्तु जगद्धात्रि भृङ्गारैस्त्वां सुवासितैः ।
अथ द्रव्यविशेषेण मन्त्रभेदान् ब्रवीमि ते ॥७८८॥
पौराणानपि तान्त्रीयान् महास्नापनकर्मणि ।

[शङ्खजलेन देव्याः स्नापनम्]

सर्वेषामधिपो देव ईशानो नाम नामतः ॥७८९॥
शूलपाणिर्महादेवः स त्वां स्नापयतु प्रभुः ।
स्नापयेच्छंखतोयेन मन्त्रमेनमुदीरयन् ॥७९०॥

[गङ्गाजलेन स्नापनम्]

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
स्वर्गस्रोतः समुद्भूतं स्नानं भवतु तेन ते ॥७९१॥
गाङ्गेन वारिणा देवी स्नापयेन् मनुनामुना ।

[उष्णजलेन स्नापनम्]

उष्णं सुखस्पर्शकरं ज्योतिर्वह्निसमन्वितम् ॥७९२॥
मलापहारकं बल्यं तेन स्नानं समाचर ।
स्नापयेत् पाथसोष्णेन पठन् मन्त्रममुं प्रिये ॥७९३॥

[सुगन्धितजलेन स्नापनम्]

गन्धाढ्यं शोभनं चैव शीतलं सुमनोहरम् ।
सर्वपापहरं तोयं तत्ते स्नानाय कल्पताम् ॥७९४॥
अमुनामोदिसलिलकुम्भेन स्नापयेच्छिवाम् ।

[शुभ्रजलेन स्नापनम्]

पुण्यं पवित्रं स्वच्छं च शीतलं स्वादु यज्जलम् ॥७९५॥
स्नानाय कल्पतां तत्ते तथैव श्रमशान्तये ।
मेध्याच्छशीतलाम्भोभिः स्नापयेदमुनेश्वरीम् ॥७९६॥

[पञ्चगव्येन स्नापनम्]

गावः पवित्राण्यनघा गावो विश्वस्य मातरः ।
गावोऽध्वराणां धात्र्यश्च गोषु सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥७९७॥

तदङ्गप्रसूतैः पञ्चगव्यैस्त्वां स्नापयाम्यहम् ।
इति सामान्यतो मन्त्रं पठित्वा तदनु प्रिये ॥७९८॥
प्रत्येकं पञ्चगव्येन स्नापयेत् जगदम्बिकाम् ।
गवां मूत्रेण पुण्येन सर्वाघपरिमोषिणा ॥७९९॥
स्नापयामि जगद्धात्रीं पुत्रायुर्धनवृद्धये ।
एतेन स्नापयेद्देवीं गोमूत्रेण शनैः शनैः ॥८००॥
पवित्रताकरं भूमेर्विभूतेः कारणं परम् ।
गोमयं सर्वपापघ्नं तेन त्वां स्नापयाम्यहम् ॥८०१॥
मन्त्रमेनं पठन् देवीं स्नापयेद् गोमयाम्भसा ।
यद्‌गवामङ्गसम्भूतं हविषः कारणं च यत् ॥८०२॥
दधि तत्तेऽङ्गलावण्यकरणाय भवत्विदम् ।
दध्नाऽमुना भगवतीं स्नापयेद् देशिकोत्तमः ॥८०३॥
यज्ञक्रियाकलापोऽयं यस्मिन् सर्वः प्रतिष्ठितः ।
पयसा तादृशेन त्वां स्नापयामि हरप्रियाम् ॥८०४॥
गृणन्नमु गव्यदुग्धैः स्नापयेज्जगदम्बिकाम् ।
यद्‌धोमसाधनत्वेन प्रथितं निगमादिषु ॥८०५॥
यच्चाप्यग्निमुखेनैव भुञ्जते निखिलाः सुराः ।
यस्मात् पवित्रं नैवास्ति बलवीर्यकरं च यत् ॥८०६॥
तेन त्वां स्नापयाम्यद्य गव्येन हविषेश्वरि ।
कालीममूभ्यां मन्त्राभ्यां घृतेन स्नापयेद् वुधः ॥८०७॥
एकीकृत्य ततः पञ्च गव्यानि सकलानि हि ।
तथानामिकयालोड्य कुशमूलेन वा प्रिये ॥८०८॥
यस्मात् परं नापरमस्ति मेध्यं
देहं गतं यद् वृजिनानि हन्ति ।
नास्ते परं मङ्गलकृद् यतस्तत्
स्नानाय भूयात् तव पञ्चगव्यम् ॥८०९॥

स्नापयेत् पञ्चगव्येन मन्त्रेणानेन कालिकाम् ।

[पञ्चामृतपरिचयस्तेन स्नापनम्]

गव्यं पयो दधि घृतं माध्वीकं सितशर्करा ॥८१०॥

पञ्चामृतमिदं प्रोक्तममुना स्नापयेदुमाम् ।

सारं गृहीत्वा जगतां त्रयाणां

यन्निर्मितं यज्ञकृते विधात्रा ।

पञ्चामृतं तन्मधुरं मनोज्ञं

संस्नापकं ते जगदम्ब भूयात् ॥८११॥

मनुनैवामुना पञ्चामृतेन स्नापयेच्छिवाम् ।

[पुष्पोदकेन स्नापनम्]

मायारावरमाकूर्चडाकिन्यस्त्रशिरोमनुम् ॥८१२॥

पठन् पुष्पोदकेनैव स्नापयेत् परमेश्वरीम् ।

[कुशाम्बुना स्नापनम्]

मैधप्रासादगरुडनृहरिप्रेतहृच्छिरः ॥८१३॥

गृणन् कुशाम्बुना देवीं स्नापयेद् देशिकोत्तमः ।

[इक्षुरसेन स्नापनम्]

पाशः काली भैरवी च योगिनी कर्णिका तथा ॥८१४॥

अस्त्रं हृच्छिरसी प्रोच्य फलाम्भस्नापनं चरेत् ।

ओं कात्यायन्यै विद्महे भगवत्यै धीमहि ।

तन्नौ दुर्गा प्रचोदयत् ॥८१५॥

एतेनेक्षुरसेनैव स्नापयीत सुरेश्वरीम् ।

[नारिकेलोदकेन स्नापनम्]

क्षेत्रपालाङ्कुशौ विश्वमुर्दुर्विद्युच्छिरोऽस्त्रयुक् ॥८१६॥

नारिकेलोदकैर्दुर्गां स्नपायेद् भक्ति भावितः ।

[मृदा स्नापनम्]

दण्डादिपञ्चकादस्त्रं वदन् वैभवदी मृदा ॥८१७॥

प्लावयेज्जगतां धात्रीं नृपो वा नृपसन्निभः ।
कृत्या त्रेता सृष्टिभोगानाहतान् विपरीततः ॥८१८॥
वदन् भूदाररदनमृदा स्नापनमाचरेत् ।

[हिरण्यक्षालनोद्भूतजलेन स्नापनम्]

चर्पटादीनि चत्वारि सौरङ्गाद्यानि कीर्तयन् ॥८१९॥
हिरण्यक्षालनोद्भूतजलेन स्नापयेच्छिवाम् ।

[रत्ननिर्णिक्तपयसा स्नापनम्]

तथैव पञ्च बीजानि भद्रिकादीनि संवदन् ॥८२०॥
रत्ननिर्णिक्तपयसा स्नापयेत् परमेश्वरीम् ।

[सर्वौषधिभिः स्नापनम्]

संहारिप्रमुखैः पञ्चबीजैः सर्वौषधीगणैः ॥८२१॥
अभिषिञ्चेज्जगद्धात्रीं सर्वकामार्थसिद्धये ।
सहस्रधारकुम्भेन पञ्चभिर्नीरसादिभिः ॥८२२॥
अभिषेकं संविदध्याद् दुर्गासन्तोषहेतवे ।

[पीतातैलाढ्यजलेन स्नापनम्]

पीतातैलाढ्यपाथोभिरौपदेयादिपञ्चकम् ॥८२३॥
संकीर्तयन् प्लावयोत जगन्मातरमम्बिकाम् ।
सागराः सरितः सर्वाः स्वर्गस्रोतोनदास्तथा ॥८२४॥
तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानि पृथिवीतले ।
कूपाः सरप्रस्रवणा देवखाताः सगर्तकाः ॥८२५॥
कुल्याश्च निर्झरा वाप्यो यावन्तश्च जलाशयाः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलात्मकाः ॥८२६॥
समुद्राः सप्त तद्द्वीपा ये च सप्त प्रकीर्तिताः ।
जम्बुप्लक्षकुशक्रौञ्चशाकशालमलिपुष्कराः ॥८२७॥
अभिषिञ्चन्तु सर्वे त्वां मन्त्रपीठवशीकृताः ।
अग्निमीलेति मन्त्रेण ऋग्वेदस्याद्यया ऋचा ॥८२८॥

त्वां स्नापयतु गव्येन पयः कुम्भेन चण्डिकाम् ।
ईषे त्वाख्येन मन्त्रेण स्नापयन्निक्षुजद्रवैः ॥८२९॥
षडशीतिभिदा युक्तो यजुर्वेदः सुरेश्वरीम् ।
सहस्रशाखासंयुक्तः सामवेदो मधुद्रवैः ॥८३०॥
अग्न आयाहि मन्त्रेण त्वां स्नापयतु चण्डिकाम् ।
अथर्ववेदो हविषा बहुशाखासमन्वितः॥८३१॥
शन्नो देवीति मन्त्रेण देवि त्वामभिषिञ्चतु ।
अष्टादशपुराणानि व्यासेनोक्तानि यानि हि ॥८३२॥
यानि चोपपुराणानि दध्ना त्वां स्नापयन्तु हि ।
महर्षिभिः प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि यानि हि ॥८३३॥
शतं चाशीतिरूपाणि स्नापयन्तु महेश्वरीम् ।
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥८३४॥
स्वर्गनद्यम्बुपूर्णेन आद्येन कलशेन तु ।
[1]अमुना गाङ्गतोयेन स्नापयेत् परमेश्वरीम् ॥७३५॥
मरुतस्त्वामभिषिञ्चन्तु भक्तिमन्तः सुरेश्वरि ।
मेघतोयाम्बुपूर्णेन द्वितीयकलशेन तु ॥८३६॥
एतेन वृष्टिनीराढ्यकुम्भेन स्नापयेदुमाम् ।
सारस्वतेन तोयेन स्वच्छमेध्येन चण्डिके ॥८३७॥
विद्याधराः स्नापयन्तु तृतीयकलशेन तु ।
सरस्वत्यम्बुसंपूर्णघटेनाप्लावयेच्छिवाम् ॥८३८॥
त्वां स्नापयन्तु शक्राद्या लोकपालाः समागताः ।
सागरोदकपूर्णेन तुर्येण कलशेन हि ॥८३९॥
आर्णवेनाम्बुना देवी स्नापयेन्मनुनामुना ।
वारिणा परिपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना ॥८४०॥
पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागास्त्वां कलशेन हि ।
पद्मपुष्पसमायुक्तजलकुम्भमनुस्त्वसौ ॥८४१॥

१— इतः षट् पंक्तयः घ. ङ पुस्तकयोः संगृहीता ।

हिमवन्मेरुकैलासा अभिषिञ्चन्तु पर्वताः ।
निर्झरोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन हि ॥८४२॥
अमुना नैर्झराम्भोभिः स्नापयेत् परमेश्वरीम् ।
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन कलशेन सुरेश्वरि ॥८४३॥
सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्त खेचराः ।
मन्त्रेणैतेन तीर्थाम्बुकुम्भेन स्नापनं चरेत् ॥८४४॥
वसवस्त्वाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन तु ।
सारसेनैव तोयेन दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥८४५॥
देवीमनेन मन्त्रेण सिञ्चेत् कासारवारिणा ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ॥८४६॥
यमो विवेको नियमो ब्रह्मचर्यं दया दमः ।
शान्तिर्मौनं तथा शौचं सन्तोषो मितभाषिता ॥८४७॥
यावत्यश्चोपनिषदः कैवल्यप्रतिपादिकाः ।
स्थावरं जङ्गमं चापि त्रैलोक्ये यत् प्रतिष्ठितम् ॥८४८॥
यद्ब्रह्मसृष्टावुत्पन्नं मूर्तं वामूर्तमेव वा ।
अत्रसं चात्रसंत्रापि यच्चेङ्गं तच्च नेङ्गति ॥८४९॥
अचरं यच्चरं चापि यद्वाङ्मयमवाङ्मयम् ।
ते सर्वे स्नापयन्तु त्वां नवमेन घटेन हि ॥८५०॥
स्नापयेच्छुद्धतोयेन चण्डिकां मनुनामुना ।
इत्युक्तं ते महास्नानं शरदर्चाविधौ प्रिये ॥८५१॥
दिनान्तरेऽपि कुर्वीत भक्तश्चेद् भक्तिभावितः ।

[देव्याः महास्नानफलश्रुतिः]

अनेन विधिना यस्तु स्नापयेज्जगदम्बिकाम् ॥८५२॥
सप्तजन्मकृतात् पापात् मुक्तः स्यान्नात्र संशयः ।
दिव्याष्टाब्दसहस्राणि देवीलोके वसेत्तथा ॥८५३॥

नवम्यां तु महास्नानं धनपुत्रविवर्द्धनम् ।
सहस्रयज्ञस्य फलं लभते नात्र संशयः ॥८५४॥
राजा राज्यमवाप्नोति शत्रुनाशं तथैव च ।
स्वाभीष्टमाप्नुवन्त्यन्ये महास्नानेन पार्वति ॥८५५॥

[भूतबलिविधिः]

महास्नानादनु ततो भूतेभ्यो बलिमुत्सृजेत् ।
स कौलानां मांसमद्ये माषान्नः[न्नं] स्मृतिवर्त्मिनाम् ॥८५६॥
गृहीत्वा तममुभ्यां वै मनुभ्यामुत्सृजेद् बलिम् ।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ये वसन्त्यत्र भूतले ॥८५७॥
ते गृह्णन्तु मया दत्तं बलिमेनं प्रसाधितम् ।
पूजिता गन्धपुष्पाद्यैर्बलिभिस्तर्पितास्तथा ॥८५८॥
देशादस्माद् विनिःसृत्य पूजां पश्यन्तु मत्कृताम् ।

[भूतबलिदानमन्त्रः]

ताररावौ कूर्चभूतौ भ्यसन्तो भूत एव च ॥८५९॥
ससन्ध्येष बलिर्हूं च्च मन्त्रावेतावुदाहृतौ ।
अकृते बलिदाने तु महास्नानादनन्तरम् ॥८६०॥
अफलं तद् भवेद्देवि पूजाङ्गं हीयते तथा ।
विलुम्पन्ति सदा लुप्ता न च गृह्णन्ति देवताः ॥८६१॥
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यं भूतानामपसारणम् ।
लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वांकुशाक्षतम् ॥८६२॥

[भूतापसारणमन्त्रः]

गृहीत्वा ताररोषानु निःश्रेण्यस्त्रे उदीरयेत् ।
अपसर्पन्तु भूतास्ते ये भूताः शारदर्चकाः ॥८६३॥
भूतानामविरोधेन देवीपूजां करोम्यहम् ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ॥८६४॥
अपसर्पन्तु सर्वे ते मन्त्ररूपास्त्रताडिताः ।
अन्ते मनूनामेतेषां हूं अः फडिति कीर्तयेत् ॥८६५॥

भूतादीनपसार्यैत्थं द्वारपालेभ्य एव हृत् ।

[पाद्यादिभिःदेव्याःसमर्चनमन्त्रः]

त्रपा हृद् बिल्वशाखातो वासिन्यै तदनन्तरम् ।।८६६।।
दुर्गायै कूर्चमस्त्रं च मन्त्रेणैतेन पार्वति ।
पाद्यादिभिः समभ्यर्च्य कुर्यान्नीराजनाविधिम् ।।८६७।।
धृत्वासनं ततो देवीं पत्रिकां मृण्मयीमपि ।
सञ्चाल्य गीतवाद्यादीन् विदधन् मन्त्रमुच्चरन् ।।८६८।।

[कल्पितआसने देव्याः स्थापनम्]

स्थापयेत् सुस्थिराकारां ततः कल्पित आसने ।
तारत्रपारावलक्ष्मीयोगिनीकामयोषितः ।।८६९।।
डाकिनी चापि फेत्कारी चण्डिके भगवत्यपि ।
चलद्वयं चालय द्विर्वज्रकापालिनीत्यपि ।।८७०।।
पूजालयं द्विः प्रविश हूं फट् स्वाहा ततः परम् ।
आगच्छ मद्गृहे देवि सह शक्तिभिरष्टभिः ।।८७१।।
पूजां गृहाण विधिवत् सर्वकल्याणहेतवे ।
अनेन स्थापयेद् देवीं सर्वकल्याणदायिनीम् ।।८७२।।

[देव्याः स्थिरीकरणविधिः]

दिनत्रयस्य पूजार्थं वेदिकाद्यासनादिषु ।
तारचिद्रावडाकिन्यः स्थां स्थीं त्वमम्बिके तथा ।।८७३।।
स्थिरीभव शिरश्चेति स्थिरीकुर्यात्ततः परम्

[कलशस्थापनविधिः]

ततः पुनर्विरचिते सर्वतोभद्रमण्डले ।।८७४।।
चित्रितं पञ्चवर्णेन दध्यक्षतफलान्वितम् ।
पञ्चरत्नेन हेम्ना च गर्भगेन विभूषितम् ।।८७५।।
पट्टाच्छादनसंवीतग्रीवं पल्लवशोभितम ।
व्रीहीणां वा यवानां वा स्थापयित्वोपरि प्रिये ।।८७६।।

वैदिकेन विधानेन कलशस्थापनं चरेत् ।
भूमिं स्पृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं भूरसीति वरानने ॥८७७॥
अथ धान्यमसीत्युक्त्वा व्रीहीनेवाभिमन्त्रयेत् ।
आजिघ्रेत्युच्चरन्मन्त्रं कलशं तत्र विन्यसेत् ॥८७८॥
वरुणस्येति मन्त्रेण पाथोभिः परिपूरयेत् ।
काण्डात् काण्डादिति प्रोच्य पल्लवं विन्यसेत् ततः ॥८७९॥
फलं या फलिनीत्युक्त्वा श्रीश्चेत्युक्त्वा प्रसूनकम् ।
गन्धद्वारेत्यथो गन्धं सहस्रेत्यक्षतं न्यसेत् ॥८८०॥
स्थिरो भवेति मन्त्रेण स्थिरीकरणमाचरेत् ।
वल्मीककुञ्जररदनदीसङ्गमपर्वतात् ॥८८१॥
गोकुलाद्देवनृपतिद्वारादपि च मृत्तिकाः ।
आहृत्य हार्दमन्त्रेण प्रत्येकं निक्षिपेद् घटे ॥८८२॥
पूर्ववत् सर्ववस्त्वादिशोधनं विदधीत वै ।
प्रागुदीरितमन्त्रेण तथैवालोकनेन च ॥८८३॥
यदात्मनानवज्ञातं पूजाद्रव्यादिदूषणम् ।
अस्पृश्यस्पर्शनं वापि यदन्यायार्जितं च वा ॥८८४॥
तथा निर्माल्यसंसृष्टं कीटारोहणदूषितम् ।
नश्यन्ति तानि सर्वाणि दूषणान्यवलोकनात् ॥८८५॥

[भूतशुद्धिविधिः]

भूतापसारणं कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च ।
सम्पूज्यासनमात्मीयं गणेशगुरुदेवताः ॥८८६॥
नत्वा विदध्यात् तदनु प्राणायामत्रयं बुधः ।

[पत्रिकाया ऋष्यादिनिर्देशः]

पत्रिकायास्ततः कुर्यादृष्यादिं यतमानसः ॥८८७॥
शरत्कालीनदुर्गार्चाविधेरस्य हि नारदः ।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री श्रीदुर्गा देवता मता ॥८८८॥

बीजं ह्रीमिति निर्दिष्टं शक्तिः श्रीमपि पार्वति ।
कीलकं क्लीमिति प्रोक्तं पूजायां विनियोगता ॥८८९॥
अस्मिन्नेव ह्यवसरे सङ्कल्पं केऽपि कुर्वते ।
काम्यत्वान्नेतरे चास्य नित्यत्वान्नित्यकृत्यवत् ॥८९०॥
क्रियते यदि सङ्कल्पस्त्र्यहस्याप्येक एवं सः ।
एकप्रयोगसंहारात् फलैक्याच्च विसर्जनात् ॥८९१॥
पीठे मूर्तौ च नित्यायामृषिं तत्तन्मनोश्चरेत् ।
मृण्मूर्तिपत्रिकापक्षे मन्त्रं सर्षिं निशामय ॥८९२॥
आदौ वेदादिमालिख्य द्विवारं दुर्ग ईरयेत् ।
संबुद्धिरथ रक्षिण्याः शिरसा स[...] कीर्तयेत् ॥८९३॥
पत्रिकार्चोपचारादिप्रदानार्थं मनुस्त्वसौ ।
एकं द्वे द्वे त्रीणि च द्वे सकलो मन्त्र एव च ॥८९४॥
कराङ्गुलीहृदादिष्वमी न्यस्या मन्त्रवर्णकाः ।

[कर्तव्यताभिधानम्]

ये न्यासा यः क्रमो या च रीतिर्ये मनवोऽपि च ॥८९५॥
यावन्त्यपि च पत्राणि तन्मतोदीरितानि च ।
नैमित्तिकप्रकरणे कीर्तिता नियमा तव ॥८९६॥
तान्येव शरदर्चायां योजनीयानि सुन्दरि ।
वक्ष्ये यदस्यामधिकं नित्यबिम्बसमर्हणे ॥८९७॥
पीठन्यासोऽपि सामान्यः सविसर्गा च मातृका ।
दूतीन्यासविराण्न्यासो कालीपञ्जर एव च ॥८९८॥
यद्यद् वै दीयते द्रव्यमलङ्कारादि काञ्चनम् ।
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा च प्रेक्षणार्चने ॥८९९॥
उत्सृज्य तत्तन्नामानि तत्तन्मन्त्रेण वेदयेत् ।
द्रव्याणां दैवतं प्रोक्तं पूर्वमेव तवेश्वरि ॥९००॥

द्रव्यशोधनमप्युक्तमेवादौ तान्त्रिकक्रमे ।
सर्वशुद्धिं च पौराणक्रमे धूमलया चरेत् ॥६०१॥
[आसनाद्युपचाराणां समन्त्रसमर्पणविधिः]
इदं ते आसनं तत्त्वे मया सुरवरार्चिते ।
भवैतस्मिन् निषण्णा त्वं यावत् पूजां करोम्यहम् ॥६०२॥
दूर्वापराजितापद्मश्यामाकसहितं जलम् ।
पाद्याय कल्पते देवि विशेषार्चासु नान्यथा ॥६०३॥
पाद्यं गृह्ण महादेवि सर्वदुःखापहारकम् ।
त्रायस्व वरदे देवि घोरादस्माद् भवार्णवात् ॥६०४॥
स्नानवस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।
तच्च स्वधापदैर्दद्यान्मधुपर्कं तथा प्रिये ॥६०५॥
अर्घ्यं स्वाहापदेनैव सर्वमन्यन्नमः पदैः ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपान् ॥६०६॥
बिल्वपत्रक्षीरदूर्वासहितं सलिलं तथा ।
शङ्खपात्रगतं कृत्वा कालिकायै निवेदयेत् ॥६०७॥
दूर्वाक्षतसमायुक्तं बिल्वपत्रसमन्वितम् ।
शोभनं शङ्खपात्रस्थं गृहाणार्घ्यं हरप्रिये ॥६०८॥
नानातीर्थोद्भवं वारि सद्वस्तुपरिकल्पितम् ।
तादात्म्याद्वैतनामानौ क्रमधात्वभिधावपि ।
महानिर्वाणपूर्वा च षोढा तद्वच्च पश्चिमे ॥६०९॥
नित्यपीठे पुरोदीर्णं स्वं स्वं ध्यानं समाचरेत् ।
माहेयपत्रिकापक्षे ध्यानमाकलय प्रिये ॥६१०॥
[देव्याः ध्यानम्]
निष्टप्तस्वर्णवर्णाभां नवतारुण्यशालिनीम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनां जटामुकुटमण्डिताम् ॥६११॥
लोलदीर्घासितत्र्यक्षां खण्डेन्द्वावद्धशेखराम् ।
दाडिमीकुसुमाकारदन्तपंक्तिविराजिताम् ॥६१२॥

उत्तुङ्गपीनवक्षोजां बलित्रयविराजिताम् ।
अतिक्षामोदरीं देवीं नितम्बाभोगभासुराम् ॥९१३॥
त्रिभङ्गस्थानकतया भज्यन् मध्यामिव स्थिताम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तां सर्वालङ्करणान्विताम् ॥९१४॥
शूलं कृपाणं चक्रं च वाणं शक्तिं च दक्षिणे ।
धारयन्तीमथो वामे पाशचर्माङ्कुशान् धनुः ॥९१५॥
कण्ठीरवोपरि न्यस्तदक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहाम् ।
सम्मुखस्थितसञ्छिन्नमहिषासुरमस्तकाम् ॥९१६॥
कण्ठनालोत्थदितिजसकिरीटकचोच्चयम् ।
पाशावासकरेणैव विभ्रतीं परमेश्वरीम् ॥९१७॥
शूलेन हृदि निर्भिन्नं पश्यन्तीं दानवं रुषा ।
पाशाकारमहानागवेष्टितोदरबाहुकम् ॥९१८॥
भ्रुकुटीभीषणाकारं शोणितार्द्रकलेवरम् ।
आकृष्टासिं निगिलितकफोणिं हरिणा हठात् ॥९१९॥
स्रवद्रुधिरसन्दोहवदनेन महात्मना ।
स्तूयमानां सुरैः सर्वैः ब्रह्माजेशमुखादिभिः ॥९२०॥
लीलया दानवं हत्वा किञ्चित् किञ्चिद्हसन्मुखीम् ।

[अष्टशक्तिनामानि]

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥९२१॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपा च चण्डिका ।
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् ॥९२२॥
चिन्तयेदीदृशीं दुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।
ध्यात्वेत्थं मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ॥९२३॥
पूर्वोक्तेनैव विधिना विदध्यादर्घसंस्थितिम् ।
नैमित्तिकविधानेन विस्तारो यत्र कीर्तितः ॥९२४॥

सत्यां शक्तौ तु पाद्यादीन् पृथक्त्वेन प्रविन्यसेत् ।
अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ॥९२५॥
स्नानीयं मधुपर्कं च उपचारास्तथामयाः ।
अस्मिन्नेव क्षणे देवि पञ्चायतनपूजकः ॥९२६॥
गणेशार्कहरीशानान् सम्भारैः कल्पितैर्यजेत् ।
पीठन्यासं ततः कुर्यात् सामान्यं प्रथमं वुधः ॥९२७॥
सर्वशेषे योगरत्नं शेषमन्त्रोपबृंहितम् ।
विधाय च पुनर्ध्यानमावाहनमथाचरेत् ॥९२८॥
मुद्राविभक्तिकलितं साधको मीलितेक्षणः ।
मूलमन्त्रेणाथ सावयवीकृत्यविभावनैः ॥९२९॥
मन्वक्षरैः षडङ्गानि विन्यसेत् तत्तदुत्स्पृशन् ।
मूलपीठप्रतिष्ठायां यो मनुः प्रागुदीरितः ॥९३०॥
यन्त्रमूर्त्योस्तु तेनैव प्रतिष्ठां स्थिरयोश्चरेत् ।
मृण्मूर्तिपत्रिकाकुम्भशूलास्यादिष्वपि प्रिये ॥९३१॥
केचनेच्छन्ति तं मन्त्रं नैव कापालिकादयः ।
अन्यान् पौराणिकान् मन्त्रान् वैदिकानपि कांश्चन ॥९३२॥
ईरयेत् पत्रिकाकुम्भमाहेयप्रतिमादिषु ।
तांस्ते वदामि सुतनु नन्दिकेश्वरभाषितान् ॥९३३॥
हस्तं दत्त्वा पत्रिकायां तारादिं तत्सदित्यपि ।
त्रिरुदीर्य पठेन् मन्त्रान् नैवैतान् स्थिरपीठयोः ॥९३४॥

[पत्रिकायां देव्या आवाहन मन्त्रः]

आगच्छ मद्गृहे देवि अष्टाभिः शक्तिभिः सह ।
पूजां गृहाण विधिवत् सर्वकल्याणकारिणि ॥९३५॥
एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे ।
भक्तितः पूजयामि त्वां नवदुर्गे सुरार्चिते ॥९३६॥
दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यं चापि कल्पय ।
यज्ञभागं गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥९३७॥

शारदीयामिमां पूजां करोमि त्रिदशार्चिते ।
आज्ञापय महादेवि दैत्यदर्पनिसूदनि ॥६३८॥
दुष्पारे घोरसंसारसागरे पतितं सदा ।
त्रायस्व वरदे देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥६३९॥
ये देवा याश्च देव्यश्च चलितायां चलन्ति हि ।
आवाहयामि तान् सर्वान् चण्डिके परमेश्वरि ॥६४०॥
प्राणान् रक्ष यशो रक्ष रक्ष दारान् सुतान् नाधरम् ।
सर्वंरक्षाकरी यस्मात्त्वं हि देवि जगत्प्रिये ॥६४१॥
प्रविश्य तिष्ठ यज्ञेऽस्मिन् यावत् पूजा करोम्यहम् ।
मेनानन्दकरे देवि सर्वसिद्धिं च देहि मे ॥६४२॥
आगच्छ चण्डिके देवि सर्वकल्याणहेतवे ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥६४३॥
आवाहयामि देवि त्वां मृण्मये श्रीफले तथा ।
त्रिशूले कलशे खड्गे मण्डले चित्र एव च ॥६४४॥
कैलासशिखराद्देवि विन्ध्याद्रेर्हिमपर्वतात् ।
आगत्य विल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् ॥६४५॥
स्थःपितासि मया देवि पूजये त्वां प्रसीद मे ।
चण्डे चण्डात्मिके चण्डि चण्डविग्रहधारिणि ॥६४६॥
बिल्वशाखां समाश्रित्य तिष्ठ देवि गणैः सह ।
अथवा मृण्मये कुम्भे त्रिशूले खड्ग एव वा ॥६४७॥
तथा चित्रपटे वारि नृमुण्डे वह्निमण्डले ।
सर्वगा त्वं समागत्य सान्निध्यमिह कल्पय ॥६४८॥
देवि त्वं जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि ।
मण्डलेषु समस्तेषु सान्निध्यमनुकल्पय ॥६४९॥

चतुर्विंशतिसङ्ख्येषु अधिष्ठेयेषु चण्डिके ।
आगत्य शारदीं पूजां गृह्ण देवि प्रसीद मे ॥९५०॥
आवाहितासि देवि त्वं निखिले मण्डले तव ।
भूत्वात्रैव स्थिरात्यन्तं मद्गेहे कामदा भव ॥९५१॥
चण्डि त्वं चण्डरूपासि सुरतेजःसमुद्भवा ।
परिवारैः सहागत्य स्थितिमत्र कुरु द्रुतम् ॥९५२॥
अष्टादशैतान् प्रजपेत् मन्त्रान् पौराणिकान् प्रिये ।
ततो 'हंसः शुचीत्येवं 'प्रतद्विष्णुस्तरे' त्यपि॥९५३॥
तथा 'विष्णुर्योनि'मिति तार्तीयकतयोदितम् ।
तारव्याहृतिपूर्वा च गायत्री तारपश्चिमा ॥९५४॥
'त्र्यम्बकं' चेति पञ्चैतान् वैदिकान् प्रजपेन्मनुम् ।
नेमानपि स्थिरे पीठे मूर्तौ वा परिकल्पयेत् ॥९५५॥
ततः प्राणप्रतिष्ठां वै कुर्वीत मनुविस्तरैः ।

[देव्याः प्राणप्रतिष्ठापनमन्त्रः]

आद्येन नित्याख्यातेन निमित्तोक्तेन तत्परम् ॥९५६॥
आख्यास्यमानतार्तीयमनुना तदनन्तरम् ।
तच्च शारदपूजायां नेतरस्यां कदाचन ॥९५७॥
पीठमूर्त्योरपि तथा मण्डलेनेतरत्र च ।
तारमैधत्रपारावयोगिन्यो डाकिनी तथा ॥९५८॥
फेत्कारीकूर्चवनिता बीजानीमानि वै नव ।
एह्येहि भगवत्येवं ततो ब्रूयात् पदत्रयम् ॥९५९॥
त्रयस्त्रिंशत्कोटिपदात् तथा त्रिदशशब्दतः ।
तेजः कल्पितशब्दाच्च शरीरे परिकीर्तयेत् ॥९६०॥
पदात्तथा च महिषासुरतो मर्दिनीत्यपि ।
ततो जगत्त्रयेत्युक्त्वा पालिनि प्रतिकीर्तयेत् ॥९६१॥
कामप्रासादपाशा[हि]नृसिंहकमले ततः ।
आगच्छ द्वितयं चापि सान्निध्यं कल्पयद्वयम् ॥९६२॥

पूजालयं प्रविश्योक्त्वा तिष्ठयुग्ममतः परम्।
ततो विसन्ध्यष्टशक्तिपदात् परिवृते वदेत् ॥९६३॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं स्फुर प्रस्फुर चेदृशम् ।
अङ्कुशप्रेतभैरव्योऽमाहारप्रलयास्ततः ॥९६४॥
विद्युन्महाक्रोधताराः शिरः शेषे ततः परम् ।
शतमष्टादशोपेतं वर्णानामत्र वै मनोः ॥९६५॥
मन्त्रत्रयेणामुनैव कुर्यात् प्राणप्रतिष्ठितिम् ।
मृण्मूर्तिपत्रिकाकुम्भादिषु सर्वान्तिमं मनुम् ॥९६६॥
श्रौतं पठेन् "मनोज्योतिरिति" कौलेतरो नरः ।
नैमित्तिकोक्तेन तथा कुर्यादावाहनं ततः ॥९६७॥
मन्त्रेण त्रिरुदीर्णेन पत्र्यां पीठ एव हि ।

[पात्रस्थापनविधिः]

अथ कौलादयः कुर्युरस्मिन्नवसरे प्रिये ॥९६८॥
नैमित्तिकेन विधिना पात्रस्थापनमुत्तमम् ।
न्यासौघान् पुरतः कृत्वा नैमित्तिकविधीरितान् ॥९६९॥
शक्तौ तु पञ्चकान् सर्वान् षोढा त्रितयमेव च ।
माहेयपत्र्योर्नैतान् वै प्रकुर्वीत कदाचन ॥९७०॥
पात्राणां स्थापनं चापि कुर्यात् स्वस्वमतेन हि ।
विचाररीती तेषां वै नैमित्तिक उदीरिते ॥९७१॥
सा कल्पना च ते मन्त्राः स क्रमः संस्थितिश्च सा ।
ते न्यासाः शोधनं तच्च वस्तूनां तर्पणं च तत् ॥९७२॥
शरदर्चापीठमूर्त्योर्नैमित्तिकसमर्हणात् ।
कस्यापि मत ईशानि नैवाण्वपि भिद्यते ॥९७३॥
विशिष्यातो मया तन्त्रपौराणिकविधिद्वयम् ।
उच्यते समनुप्रायो बुद्धिमद् बुद्धिगोचरम् ॥९७४॥
पत्रिकादिषु पौराणं तान्त्रिकं पीठ एव हि ।
वस्त्वर्पणस्य प्रत्येकं ये मन्त्राः पूर्वमीरिताः ॥९७५॥

नैमित्तिकार्चनविधौ ग्राह्यास्तेऽत्रापि पार्वति ।
प्रत्येकं मनवो ये वै पत्रिकादिषु संस्थिताः ।।६७६।।
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि तत्तद्वस्त्वर्पणाविधौ ।
यथा तत्तन्मनूच्चारादनुमूलमनूदितम् ।।६७७।।
कल्पते वस्तुदानाय तथात्रापि सुरेश्वरि ।
पौराणिकं मनुं प्रोच्य तदन्ते परिकीर्तयेत् ।।६७८।।
द्वात्रिंशदर्णकं मन्त्रमथवा भैरवोदितम् ।
कात्यायनोपासितं यज्जयदुर्गादशाक्षरम् ।।६७९।।
ताभ्यां पौराणिकार्चायां वस्तुदानं समूह्यते ।
द्वयोरशक्तावेकं वा आवश्यकतयेरयेत् ।।६८०।।
वक्ष्येऽनयोरुद्धृतिं त आद्यं नन्दीश्वरार्चितम् ।
तारत्रपाभ्यां ङेऽन्ताभ्यां दक्षयज्ञविनाशिनी ।।६८१।।
महाघोराऽपि च तथा योगिनीकोटिशब्दतः ।
तद्वत् परिवृता कार्या मायाबीजं ततः परम् ।।६८२।।
पूर्ववद् भद्रकाली च हृन्मन्त्रः सर्वशेषगः ।
अथवा तारतो दुर्गे इति वारद्वयं वदेत् ।।६८३।।
संबुद्ध्यन्ता रक्षिणी च तर्जनी मनुरन्त्यगः ।
यद्यपीमौ मनू देवि तान्त्रिकौ समुदीरितौ ।।६८४।।
तथापि पौराणिकान्ते नियोज्यौ तत्तदर्हणे ।
अथ सर्वोपचारीयान् वक्ष्ये पौराणिकान् मनून् ।।६८५।।
पूर्वमेवोदिताः सन्ति निमित्तार्चासु तान्त्रिकाः ।
त एवात्र नियोक्तव्याः प्रत्येकं तत्तदर्पणे ।।६८६।।
पत्रिकादिषु पौराणाः पीठमूर्त्योस्तु तान्त्रिकाः ।

[देवीतुष्टिविधायकोपचारः]

आसनं पाद्यमर्घ्यं च ततोऽन्वाचमनीयकम् ।।६८७।।

मधुपर्कं स्नानजलं वस्त्रं भूषणचन्दने ।
पुष्पं धूपश्च दीपश्च नेत्राञ्जनमतः परम् ॥९८८॥
अलक्तं चापि नैवेद्यं प्रदक्षिणनमस्कृती ।
उपचारा इति प्रोक्ता देवीतुष्टिविधायकाः ॥९८९॥
यद्यद् वै दीयते द्रव्यमलङ्कारादि काञ्चनम् ।
तेषां दैवतमुच्चार्य कृत्वा च प्रेक्षणार्चने ॥९९०॥
उत्सृज्य तत्तन्नामानि तत्तन्मन्त्रेण वेदयेत् ।
द्रव्याणां दैवतं प्रोक्तं पूर्वमेव तवेश्वरि ॥९९१॥
दव्यशोधनमप्युक्तमेवादौ तान्त्रिकक्रमे ।
सर्वशुद्धिं च पौराणक्रमे धूमलया चरेत् ॥९९२॥

[आसनाद्युपचाराणां समन्त्रसमर्पणविधिः]

इदं त आसनं दत्तं मया सुरवरार्चिते ।
भवैतस्मिन् निषण्णा त्वं यावत् पूजां करोम्यहम् ॥९९३॥
दूर्वापराजितापद्मश्यामाकसहितं जलम् ।
पाद्याय कल्पते देवि विशेषार्चासु नान्यथा ॥९९४॥
पाद्यं गृह्ण महादेवि सर्वादुःखापहारकम् ।
त्रायस्व वरदे देवि घोरादस्माद् भवार्णवात् ॥९९५॥
स्नानवस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम् ।
तच्च स्वधापदैर्दद्यान्मधुपर्कं तथा प्रिये ॥९९६॥
अर्घ्यं स्वाहापदेनैव सर्वमन्यन्नमः पदैः ।
गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपान् ॥९९७॥
बिल्वपत्रक्षीरदूर्वासहितं सलिलं शुचि ।
शङ्खपात्रगतं कृत्वा कालिकायै निवेदयेत् ॥९९८॥
दूर्वाक्षतसमायुक्तं बिल्वपत्रसमन्वितम् ।
शोभनं शङ्खपात्रस्थं गृहाणार्घ्यं हरप्रिये ॥९९९॥
नानातीर्थोद्भवं वारि सद्वस्तु परिकल्पितम् ।
गृहाणार्घ्यमिदं देवि जगद्धात्रि नमोऽस्तु ते ॥१०००॥

चन्द्रजातीलवङ्गैलाकक्कोलसहितं जलम् ।
विशेषाचमनीयं वै दद्याद् देव्यै फलेच्छया ।।१००१।।
आमोदिवस्तुसुरभीकृतमेतदनुत्तमम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ।।१००२।।
इमा आपो मया भक्त्या तव पादतलेऽर्पिताः ।
आचामय महादेवि प्रीता शान्तिं प्रयच्छ च ।।१००३।।
सुराभावे घृतं दधि मधु कांस्ये निवेदयेत् ।
मधुपर्कं तदुद्दिष्टं प्रार्थनीयं दिवौकसाम् ।।१००४।।
मधुपर्कं महेशानि ब्रह्मणा परिकल्पितम् ।
मया निवेदितं तुभ्यं गृहाण जगदीश्वरि ।।१००५।।
मधुपर्कप्रदानान्ते पुनराचमनीयकम् ।
दातव्यं प्राशनान्तेऽस्य यत उच्छिष्टता भवेत् ।।१००६।।
वारीदं हिममामोदि प्रसन्नं मेध्यमेव च ।
मया निवेदितं भक्त्या स्नाह्यनेन सुरेश्वरि ।।१००७।।
नानावर्णसमायुक्तं पट्टसूत्रादिनिर्मितम् ।
वासः शुक्लं तथा रक्तं गृहाण त्रिदशेश्वरि ।।१००८।।
देहशोभाकरं पूतं रञ्जितं रागवस्तुभिः ।
परिधत्स्व जगद्धात्रि वासो भक्त्या निवेदितम् ।।१००९।।
वाससः परिधानान्ते पुनराचमनीयकम् ।
दातव्यं भक्तिभावेन स्मृत्युक्तत्वान्मनुष्यवत् ।।१०१०।।
दिव्यरत्नसमायुक्तं वह्निभानुसमप्रभम् ।
अलङ्कारास्तवाङ्गानि शोभयन्तु सुरेश्वरि ।।१०११।।
अनुलेपनमेतत्ते महासुरभिशीतलम् ।
मया निवेदितं देवि गृहीत्वा लेपयाङ्गकम् ।।१०१२।।
इदं कुङ्कुममामोदि ग्रामारण्यसमुद्भवम् ।
घ्राणसन्तर्पणं हृद्यं मया दत्तं प्रगृह्यताम् ।।१०१३।।

कर्पूरागुरुसम्मिश्रो वनस्पतिरसोद्भवः ।
मया निवेदितो धूपो देवदेवि प्रगृह्यताम् ॥१०१४॥
अग्निज्योती रविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च ।
ज्योतिषामुत्तमं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१०१५॥
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च ।
त्वमेव जगतो ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१०१६॥
स्निग्धमुष्णं हृद्यतमं दृशां शोभाकरं तव ।
गृहीत्वा कज्जलं सद्यो नेत्राण्यञ्जय पार्वति ॥१०१७॥
त्वत्पादाम्भोजनखरद्युतिकारि मनोरमम् ।
अलक्तकमिदं देवि मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥१०१८॥
नानाविधानि रम्याणि स्वादूनि रसवन्ति च ।
मया दत्तानि गृह्यन्तां नैवेद्यानि सुरार्चिते ॥१०१९॥
फलमूलानि सर्वाणि ग्रामकाननजानि हि ।
नानाकारसुगन्धीनि गृहाण त्वं हरप्रिये ॥१०२०॥
चतुर्विधमिदं भक्ष्यं देवि षड्भी रसैर्युतम् ।
सदा तृप्तिकरं रम्यमिदमत्र प्रगृह्यताम् ॥१०२१॥
गव्यसर्पिः पयोयुक्तं नानामधुरमिश्रितम् ।
निवेदितं देवि मया परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥१०२२॥
अमृतैरर्चितं दिव्यं घृतखण्डविनिर्मितम् ।
पिष्टकं विविधं स्वादु गृहाण हरवल्लभे ॥१०२३॥
मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम् ।
मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम् ॥१०२४॥
ताम्रपात्रे स्थितं सीधुं पयो गव्यमथात्र वा ।
नारिकेलोदकं कांस्ये गृहाण शङ्करप्रिये ॥१०२५॥
पानीयं शीतलं स्वच्छं प्रसन्नं घनसारयुक् ।
भोजने तृप्तिकृद् देवि कृपया परिगृह्यताम् ॥१०२६॥

भोजनान्ते प्रदातव्यं पुनराचमनीयकम् ।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण सर्वत्रैव शुचिस्मिते ॥१०२७॥
फलपत्रकसंयुक्तं कर्पूरादिसुवासितम् ।
मुखकान्तिकरं हृद्यं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥१०२८॥
दूर्वाङ्कुरं ततो देव्यै दद्यात् साधकसत्तमः ।
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते भुक्तिमुक्तिदे ॥१०२९॥
दूर्वां गृहाण देवि त्वं मां निस्तारय सङ्कटात् ।
विल्वपत्रं ततो देव्यै पृथक्त्वेन प्रदीयते ॥१०३०॥
अमृतोद्भवं श्रीयुक्तं महादेवप्रियं सदा ।
पवित्रं ते प्रयच्छामि पत्रं मालूरशाखिनः ॥१०३१॥
नानापुष्पेण रचितां तन्तुनद्धां सुगन्धिनीम् ।
प्रभ्रष्टां वानलाक्षाय [?] तव देवि निवेदये ॥१०३२॥
सर्वशेषे प्रदातव्यं सिन्दूरं पत्रिकार्चने ।
अनुलेपनकाले तु पीठमूर्त्योर्भिदेयती ॥१०३३॥
अलिकाधिकशोभायाः कारकं नागसम्भवम् ।
अतिरागिसमुत्पिञ्जं [?] सिन्दूरं परिगृह्यताम् ॥१०३४॥
चमरीपुच्छजं श्वेतं हेमदण्डि सुलोम च ।
मयार्पितं राजचिह्नं चामरं प्रतिगृह्यताम् ॥१०३५॥
बर्हिबर्हकृताकारं मध्यदण्डसमन्वितम् ।
गृह्यतां व्यजनं देवि देहस्वेदापनुत्तये ॥१०३६॥
येन भीषयसे दैत्यान् येन पूरयसीश्वरम् ।
तां घण्टां ते प्रयच्छामि महिषघ्नि प्रसीद मे ॥१०३७॥
दीपैरनेकैर्विहितमारात्रिकमिमं शुभम् ।
निवेदयामि ते देवि संहराज्ञानजं तमः ॥१०३८॥
सर्वशेषे प्रदातव्यं पुष्पाणामञ्जलित्रयम् ।
तन्मनुस्तु वरारोहे दुर्गागायत्र्युदोरिता ॥१०३९॥

ओं चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।।१०४०।।
अनेन विधिना यस्तु मन्त्रैरेभिस्तु पार्वति ।
महिषघ्नीं महामायां पत्रिकासु प्रपूजयेत् ।।१०४१।।

[पत्रिकापूजायाः फलश्रुतिः]

अश्वमेधफलं प्राप्य स गच्छेच्चण्डिकालयम् ।
इहापि च भवेत् सद्यः कल्याणानां स भाजनम् ।।१०४२।।
पूजारीतिर्वरारोहे पीठमूर्त्योरपीदृशी ।
मन्त्रभेदः परं ज्ञेयः पात्राणां स्थापनं तथा ।।१०४३।।
प्रत्येकं तु ततः कुर्यात् पत्रिकाणां प्रपूजनम् ।
यावच्छक्योपचारेण मन्त्रेणापि पृथक् पृथक् ।।१०४४।।
एका तत्तदधिष्ठात्री देवता परिकीर्तिता ।
तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्यन्ता समावाह्यार्चयेत् प्रिये ।।१०४५।।

[नवपत्रिकाधिष्ठात्र्यः]

आदौ तु रम्भाधिष्ठात्री ब्रह्माणी परिकीर्तिता ।
कालिका कच्च्यधिष्ठात्री त्रिपुरघ्नेन भाषिता ।।१०४६।।
दुर्गा हरिद्राधिष्ठात्री जयन्ती कार्तिकी तथा ।
शिवा च बिल्वाधिष्ठात्री दाडिमाधिष्ठिता तथा ।।१०४७।।
शत्रुसंघक्षयकरीं विज्ञेया रक्तदन्तिका ।
मुनिभिः शोकरहिताशोकाधिष्ठात्र्युदीरिता ।।१०४८।।
तथैव मानाधिष्ठात्री चामुण्डा परिकीर्तिता ।
लक्ष्मीश्च धान्याधिष्ठात्री नन्दीशेनोपपादिता ।।१०४९।।
नवपत्रिकाधिष्ठात्री कात्यायन्यप्युदीरिता ।
यथासां क्रमतो देवि नामान्युक्तानि ते मया ।।१०५०।।

तथैव मन्त्रमेकैकं क्रमेण प्रब्रुवेऽधुना ।

[नवपत्रिकाधिष्ठातॄणां मन्त्राः]

ब्रह्माणि त्वं समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ॥१०५१॥
रम्भारूपेण सर्वत्र शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ।
महिषासुरयुद्धेषु कच्ची भूतासि कालिके ॥१०५२॥
मनुष्यानुग्रहार्थाय लोकमेनमुपागता ।
हरिद्रे ! वरदे देवि दुर्गारूपासि शोभने ॥१०५३॥
मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे ।
निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः पुरा ॥१०५४॥
जयन्ति पूजितासि त्वमस्माकं वरदा भव ।
महादेवप्रियकरो वासुदेवप्रियः सदा ॥१०५५॥
सदा कालीप्रियकर बिल्ववृक्ष नमोऽस्तु ते ।
दाडिमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य सम्मुखे ॥१०५६॥
चामुण्डा प्रीतिमकरोस्तस्मात्त्वां पूजयाम्यहम्
हरप्रीतिकरो वृक्षो ह्यशोकः शोकनाशनः ॥१०५७॥
दुर्गाप्रीतिकरत्वेन मामशोकं सदा कुरु ।
यस्य वृक्षे वसेद्देवी मानवृक्ष शचीप्रिय ॥१०५८॥
ममैवानुग्रहार्थाय पूजां गृह्ण सुरेश्वरि ।
जगतः प्राणरक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥१०५९॥
उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात् त्वं रक्ष मां सदा ।
पत्रिके नव दुर्गे त्वं महादेवमनोहरे ॥१०६०॥
पूजां समस्तां संगृह्य रक्ष मां त्रिदशेश्वरि ।
प्रत्येकमित्थं सम्पूज्या मन्त्रैरेतैरुदीरितैः ॥१०६१॥
नामभ्यामपि ङेऽन्ताभ्यामुक्ताभ्यां पूर्वमेव ते ।
सामान्यपीठन्यासोक्तनामभिर्ङेऽन्तबृंहितैः ॥१०६२॥

दिक्पालानपि नित्योक्तवाहनायुधसंयुतान् ।
पीठमूर्त्योस्तु बहुभिर्नित्यनैमित्तिकोदितैः ॥१०६३॥
आवृत्त्यर्चनविस्तारैर्यजेत परमेश्वरीम् ।
यावती कथिता नित्य इतिकर्तव्यता मया ॥१०६४॥
तथा नैमित्तिके चापि द्वयोमपि नियोजयेत् ।
संप्रयोगममन्त्राणामवदं नैत्यके विधौ ॥१०६५॥
तं केवलं विहायेशि सर्वमन्यमुपाचरेत् ।
नैमित्तिकीयः स ग्राह्योऽन्यः सर्व उभयात्मि[त्म]कः ॥१०६६॥
प्रयोगो यादृशीयस्तु तादृशीयं हि तर्पणम् ।
शक्तौ तु पत्रिकार्चायां दशास्त्राणि प्रपूजयेत् ।१०६७॥
ङेऽन्तैस्तारहृदोर्मध्याधिष्ठितैस्तत्तदक्षरैः ।

[महिषासुरपूजाविधानम्]

ततोऽनु सर्वपूजान्ते पूजयेन् महिषासुरम् ॥१०६८॥
बलिं दद्यात् स्वशक्त्या च पशूनपि खगानपि ।
नैमित्तिके तद्विधानं प्रागेव तव कीर्तितम् ॥१०६९॥

[अष्टमीकृत्यवर्णनम्]

एतावत् सप्तमीकृत्यमथाष्टम्यर्चनं शृणु ।
सप्तम्युक्तविधानं हि पूर्वमेवानुवर्तते ॥१०७०॥
अधिकं यत् तदाख्यास्ये सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ।
शोधनं द्रव्यजातानामासनादेस्तथैव च ॥१०७१॥
प्राणायामो भूतशुद्धिर्मातृकान्यास एव च ।
तथा पीठषडङ्गाख्यन्यासौ न्यासान्तराण्यपि ॥१०७२॥
विधाय पूर्वोक्तरीत्या महास्नानं तथैव च ।
दर्पणे प्रतिविम्बं च कारयित्वा पुरोक्तवत् ॥१०७३॥
दन्तकाष्ठं निवेद्याथ सङ्कल्पं विरचय्य च ।
अर्घसंस्थापनादीनि विधाय च पुरोक्तवत् ॥१०७४॥

समाप्यात्मार्चनं चापि घटे गणपतिं यजेत् ।
सूर्यादीनपि पञ्चायतनीं सम्पूज्य यत्नतः ॥१०७५॥
ध्यात्वाथ मानसैरेवोपचारैः परिपूज्य च ।
उपचारैः षोडशभिर्महामायां समर्चयेत् ॥१०७६॥
तैस्तैर्मन्त्रैस्तत्तदनुक्रमण्या चापि पार्वति ।
मुद्राप्रदर्शनैस्तैस्तैरुपचारनिवेदनैः ।१०७७॥
पीठमूर्त्योस्तान्त्रिकोक्तरीत्या पूजनमाचरेत् ।
पत्रिकासु च पौराणक्रमतो जगदीश्वरि ॥१०७८॥
कृत्वावरणपूजां हि पीठे द्वाभ्यां समाचरेत् ।
नित्यनैमित्तिकोक्ताभ्यां महाष्टम्यर्चनक्रमे ॥१०७९॥

[पत्रिकापूजायामष्टशक्तिपूजायाः विशेषाभिधानम्]

विशेषं कञ्चिदाख्यास्ये पत्रिकायाः प्रपूजने ।
पूर्वादिवसुकोणेषु दशोपचरणैर्यजेत् ॥१०८०॥
देव्याः शक्तीः क्रमेणैवोग्रचण्डाद्या विशेषतः ।
मन्त्रमालामयीसंस्थैर्मन्त्रैरासां तु कौलिकः ॥१०८१॥
नन्दिकेशपुराणोक्तैर्मनुभिः पद्यरूपिभिः ।
श्रुत्यध्वन्याः पूजयेयुरुग्रचण्डादिकाः प्रिये ॥१०८२॥

[अष्टशक्तिपूजामन्त्रः]

मनूस्तदीयानधुना ब्रवीमि तव सुन्दरि ।
तारह्रीकमला आदौ मध्ये ङेऽन्ताभिधा तथा ॥१०८३॥
मध्ये [अन्ते] हृन्मनुरेवं हि परिपाटी प्रकीर्तिता ।
उग्रचण्डा तु भयदा मध्याह्नार्कसमप्रभा ॥१०८४॥
सा मे सदास्तु वरदा तस्यै नित्यं नमो नमः ।
प्रचण्डे पुत्रदे नित्यं प्रचण्डे गणसंवृते ॥१०८५॥
जगदानन्ददे देवि प्रसन्ना भव सर्वदा ।
चण्डोग्रे घोररूपासि सर्वभूतभयप्रदा ॥१०८६॥

सौम्या भूत्वा मयि सदा वरदा भव शोभने ।
या सिद्धिरिति नाम्ना तु देवेशेन प्रकाशिता ॥१०८७॥
सासि त्वं सासि देवेशि नमस्ते चण्डनायिके ।
देवि चण्डात्मिके चण्डि चण्डारिविजयप्रदे ॥१०८८॥
धर्ममोक्षप्रदासि त्वं नित्यं मे वरदा भव ।
या सृष्टिस्थितिसंहारगुणत्रयसमन्विता ॥१०८९॥
यास्याः परा न चान्यास्ति चण्डवत्यै नमोनमः ।
चण्डरूपा महाचण्डा चण्डनायकचण्डिका ॥१०९०॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी तस्यै नित्यं नमो नमः ।
बालार्कारुणनेत्रा या सर्वदा भक्तवत्सला ॥१०९१॥
चण्डासुरस्य मथनी वरदा साऽस्तु चण्डिका ।

[चतुःषष्टियोगिनीपूजा]

ततोऽष्टदलपद्मस्य अष्टावृत्त्या सुरेश्वरि ॥१०९२॥
यजेच्चतुःषष्टिमिता योगिनीर्गणरूपिणीः ।
तारत्रयं पुरो दत्वा शेषे नम इदं पदम् ॥१०९३॥
ङेऽन्तं तत्तन्नाम तासां मध्ये कृत्वा नियोजयेत् ।
उपचारैः पञ्चभिर्वा पुष्पैर्वा केवलाक्षतैः ॥१०९४॥
ब्रह्माणी चण्डिका रौद्री गौरीन्द्राणी तथैव च ।
कौमारी भैरवी दुर्गा नारसिंही च कालिका ॥१०९५॥
चामुण्डा शिवदूती च वाराही कौशिकी तथा ।
माहेश्वरी शाङ्करी च जयन्ती सर्वमङ्गला ॥१०९६॥
करालिनी मुक्तकेशी शिवा शाकम्भरी तथा ।
भीमा शान्ता भ्रामरी च रुद्राणी चण्डरूपिणी ॥१०९७॥
क्षमा धात्री स्वधा स्वाहा अपर्णा च महोदरी ।
घोररूपा महाकाली विद्युज्जिह्वा कपालिनी ॥१०९८॥
क्षेमङ्करी महामाया मेघमाला बलाकिनी ।
शुष्कोदरी चण्डघण्टा महाप्रेता प्रियङ्करी ॥१०९९॥

खरतुण्डी ऋक्षकर्णी बलप्रमथनी तथा ।
मनोन्मथन्यपि ततः सर्वभूतदमन्यपि ॥११००॥
उमा तारा महानिद्रा विजया च जया तथा ।
शैलपुत्री महोल्का च त्रिशूलिन्यञ्जनप्रभा ॥११०१॥
कूष्माण्डी विश्वसन्त्रासा तथा कात्यायनी परा ।
कालरात्रिर्महागौरी चतुःषष्टिरिमा मताः ॥११०२॥
पूजयेन्मण्डलस्यान्तः सर्वकामार्थसिद्धये ।
पुनश्च कोटियोगिन्यः पूज्या एकाख्यया प्रिये ॥११०३॥

[नवदुर्गापूजाविधिः]

पद्मपत्राग्रभागेषु पूर्ववन्मन्त्रकल्पनैः ।
ततो देवीसन्निधाने सम्यग् दुर्गाः शुभप्रदाः ॥११०४॥
ऐशान्यादिक्रमाद् द्वे द्वे मध्ये वा नव पूजयेत् ।
आसामप्युग्रचण्डादिवन्मन्त्रः परिकीर्तितः ॥११०५॥
पाद्यादिभिः पूर्ववच्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।
मृत्युञ्जयप्राणसंस्थैरथ पौराणिकैरपि ॥११०६॥
पूर्वः पक्षः कौलिकानामुत्तरः श्रुतिशालिनाम् ।
तन्मन्त्रानधुना वक्ष्ये सावधाना निशामय ॥११०७॥
चतुर्मुखीं जगद्धात्रीं हंसारूढां वरप्रदाम् ।
सृष्टिकर्त्रीं महाभागां ब्रह्माणीं तां नमाम्यहम् ॥११०८॥
वृषारूढां शुभां शुभ्रांत्रिनेत्रां वरदां शिवाम् ।
माहेश्वरीं नमस्यामि जगत् संहारकारिणीम् ॥११०९॥
कौमारीं पीतवसनां मयूरवरवाहिनीम् ।
शक्तिहस्तां शोणदेहां नमामि वरदां सदा ॥१११०॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं कृष्णविग्रहाम् ।
स्थितिरूपां खगेन्द्रस्थां वैष्णवीं प्रणमाम्यहम् ॥११११॥

वराहरूपिणीं देवीं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धराम् ।
शुभदां नीलवसनां वाराहीं तां नमाम्यहम् ॥१११२॥
नृसिंहरूपिणीं भीमां दैत्यदानवघातिनीम् ।
विकरालनखीं शुभ्रां नारसिंहीं नमाम्यहम् ॥१११३॥
इन्द्राणीं गजकुम्भस्थां सहस्रनयनां शुभाम् ।
नमामि वरदां देवीं सर्वदेवनमस्कृताम् ॥१११४॥
चामुण्डां मुण्डमथनीं मुण्डमालोपशोभिताम् ।
अट्टाट्टहासमुदितां नमाम्यात्मविभूतये ॥१११५॥
कात्यायनीं दशभुजां महिषासुरघातिनीम् ।
प्रसन्नवदनां देवीं वरदां प्रणमाम्यहम् ॥१११६॥
चण्डिके नव दुर्गे त्वं महादेवप्रिये सदा ।
पूजां समस्तां संगृह्य रक्ष मां त्रिदशेश्वरि ॥१११७॥
कात्यायन्याश्च दुर्गाया मन्त्रद्वयमिदं मतम् ।
इमे तेनैव रूपेण पूजयेत् सुरवन्दिते ॥१११८॥

[एकादशदेवीपूजाविधिः]

पुनः पूर्वोक्तविधिना देवीरेकादशार्चयेत् ।
जयन्तीं मङ्गलां कालीं भद्रकालीं कपालिनीम् ॥१११९॥
दुर्गां क्षमां शिवां धात्रीं स्वधां स्वाहां च पूजयेत् ।

[अस्त्रपूजाविधिः]

ततोऽस्त्रपूजां कुर्वीत सप्तम्यर्चनतोऽधिकाम् ॥११२०॥
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च मन्त्रैरेव सुरेश्वरि ।
आदौ तु दक्षिणे भागे ततो वामे प्रपूजयेत् ॥११२१॥
पाद्यादिभिस्त्रिशूलादीन् केवलैरक्षतैरथ ।
सर्वायुधानां प्रथमो निर्मितस्त्वं पिनाकिना ॥११२२॥
शूलसारं समालिख्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् ।
असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥११२३॥

श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।
चक्र त्वं विष्णुरूपोऽसि विष्णुपाणौ सदा स्थितः ॥११२४॥
देवीहस्तगतश्चासि चक्रराज नमोऽस्तु ते ।
सर्वायुधानां श्रेष्ठ त्वं दैत्यसेनानिसूदन ॥११२५॥
भयेभ्यः सर्वदा रक्ष तीक्ष्णवाण नमोऽस्तु ते ।
शक्ते त्वं सर्वदेवानां गुहस्य च विशेषतः ॥११२६॥
शक्तिरूपेण सर्वत्र रक्षां कुरु नमोऽस्तु ते ।
रक्षारूपेण खेट त्वमरिसंहारकारकः ॥११२७॥
सदा देवीकरगतो मां रक्ष बहुसङ्कटात् ।
सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन ॥११२८॥
चाप मां सर्वतो रक्ष साकं सायकसत्तमैः ।
पाश त्वं नागरूपोऽसि विषपूर्णो विषोदरः ॥११२९॥
शत्रूणां दुःसहो नित्यं नागपाश नमोऽस्तु ते ।
अङ्कुशोऽसि नमस्तुभ्यं गजानां त्वं नियामकः ॥११३०॥
देवानामपि रक्षार्थं पार्वत्यासि धृतः करे ।
यस्या निनादमाकर्ण्य शकृन्मूत्रे प्रसुस्रुवुः ॥११३१॥
दैत्यसंघाः पाहि सा त्वं घण्टे नानाविधाद् भयात् ।
पर्शो त्वमतितीक्ष्णोऽसि सर्ववैरिविमर्दन ॥११३२॥
देवीहस्तगतश्चासि सदा तुभ्यं नमो नमः ।
यानि यानीह मुख्यानि प्रसिद्धान्यायुधानि च ॥११३३॥
क्षयकारीणि शत्रूणां विख्यातानि जगत्त्रये ।
यानि यान्यम्बिका धत्ते करेषु स्वेषु सर्वदा ॥११३४॥
भुशुण्डीप्रासपरिघभिन्दिपालहुलागुडाः ।
ऋष्टितोमरकुन्ताश्च पट्टिशो मुसलस्तथा ॥११३५॥
गदाशतघ्नीकणपछुरिकाकर्तरीमुखाः ।
सर्वांस्तान् पूजयाम्यद्य महाष्टम्यां विशेषतः ॥११३६॥

सर्वे रक्षन्तु मां नित्यं सर्वसिद्धिं ददत्वपि ।
तारात् कूर्चाच्च दुर्गायै सर्वायुधपदादपि ॥११३७॥
धारिण्यै नम उच्चार्य दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम् ।

[देव्या आभूषणपूजाविधिः]

ततो देव्याः किरीटादीनलङ्कारान् प्रपूजयेत् ॥११३८॥
ताराद्येन नमोऽन्तेन नाम्ना ङेऽन्तेन तस्य च ।

[देव्याः सिंहासनपूजाविधिः]

ततः प्रपूजयेद् देव्याः सिंहासनमनुत्तमम् ॥११३९॥
ताराद् वज्रनखाद् दंष्ट्रायुधाय परिकीर्त्य हि ।
महासिंहाय हूं हृच्च सिंहमेतेन पूजयेत् ॥११४०॥
यथोपकल्पितैरेवोपचारैः कुसुमाक्षतैः ।
तदन्ते मनुनैतेन देव्याः सिंहासनं यजेत् ॥११४१॥
आसनं चासि देव्यास्त्वं घोरदंष्ट्रा सटान्वित ।
हिमाद्रिशिखराकार सिंहराज नमोऽस्तु ते ॥११४२॥

[महिषासुरपूजाविधिः]

देव्या दत्तवरत्वेन विशेषान्महिषासुरम् ।
अष्टम्यां च नवम्यां च पूजयेद् बहुविस्तरैः ॥११४३॥
यावच्छक्त्युपचारैस्तु पाद्यादिभिरनेकधा ।
नमोऽन्तः प्रणवादिश्च ङेऽन्तोऽन्तर्महिषासुरः ॥११४४॥
एतेन मनुना सर्वोपचारानस्य चार्पयेत् ।
न सामान्यासुरधिया साक्षाद् रुद्रधियैव हि ॥११४५॥
पूजान्ते कीर्तयेन्मन्त्रानमून् बद्धाञ्जलिः प्रिये ।
रुद्रोऽस्यसुरराज त्वं देवानां दर्पनाशक ॥११४६॥
पितुर्वरप्रार्थनेया [न] महिषीगर्भसम्भव ।
कात्यायन्या समं योद्धुं सामर्थ्यं कस्य विद्यते ॥११४७॥

केनासुरेण विधृतः समरे मधुसूदनः ।
केनान्येन विजित्याजौ त्रिदशाः सेवकीकृताः ॥११४८॥
मन्वन्तरत्रयं केन भुक्तं राज्यमकण्टकम्
बभूव कस्य वा सेना परार्द्धशतसम्मिता ॥११४९॥
रुद्ररूपधरायातो महिषासुर ते नमः ।
ततः सम्पूजयेद् देवि चतुरो वटुकानपि ॥११५०।
सिद्धपुत्रं ज्ञानपुत्रं तथा सहजपुत्रकम् ।
शेषे समयपुत्रं च मन्त्रमेषां निशामय ॥११५१॥
वेदादिकमलाबीजे पुरतोऽन्ते नमोऽपि च ।
तत्तन्नाम्ना सह तथा वटुको विग्रहीकृतः ॥११५२॥
ङेऽन्त इति मन्त्राः स्युरेतेषां जगदीश्वरि ।
समस्तैरुपचारैस्तु यथाविभवकल्पितैः ॥११५३॥
पूजयेद् वटुकादीमांच्छृणवन्याधृ[वृ]तिपूजनम् ।

[क्षेत्रपालपूजाविधिः]

पूजयेत् क्षेत्रपालांश्च मध्ये किञ्जल्कपत्रयोः ॥११५४॥
हेतुकं त्रिपुरघ्नं च अग्निजिह्वं तथैव च ।
अग्निवेतालसंज्ञं च कालं चाथ करालकम् ॥११५५॥
एकपादं भीमनाथमुत्तरादिक्रमेण तु ।
अधुना मन्त्रमेतेषां ब्रवीमि शृणु पार्वति ॥११५६॥
तारकूर्चक्षेत्रपालबीजत्रयमिदं पुरः ।
तत्तन्नाम्ना सह पुनः क्षेत्रपालः सविग्रहः ॥११५७॥
ङेऽन्तो महाभीषणश्च तद्वदेव प्रकीर्तितः ।
क्रोधो हृच्छिरसी चापि मन्त्रा एषां वरानने ॥११५८॥
मण्डलस्य चतुर्दिक्षु द्वौ द्वौ मध्ये प्रपूजयेत् ।
भैरवान्नव देवेशि शारदर्चनकर्मणि ॥११५९॥

[नवभैरवपूजाविधिः]

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्त एव च ।
आनन्दश्च कपाली च भीषणस्तदनन्तरम् ॥११६०॥
संहारी सर्वशेषे स्यात् कीर्तिता नव भैरवाः ।
तारत्रपारोषबीजं तत्तन्नाम ततः परम् ॥११६१॥
भैरवान्तं विग्रहि च ङेऽन्तं हृन्मन्त्रसंयुतम् ।

[अष्टदिगीशपूजाविधिः]

दिक्ष्वष्टसु बहिः पश्चाद् दिगीशानष्ट पूजयेत् ॥११६२॥
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चाथ नैर्ऋतो वरुणस्तथा ।
वायुः सोमश्च ईशान एतन्नाम्ना परिस्थिताः ॥११६३॥
वज्रं शक्तिश्च दण्डश्च खड्गः पाशाङ्कुशस्तथा ।
ध्वजशूले अमीषां तु शस्त्राणि कथितानि ते ॥११६४॥
निर्ऋतेर्वरुणस्यापि मध्येऽनन्तः प्रकीर्तितः ।
तदस्त्रं चक्रमुदितं तथेन्द्रेशानमध्यतः ॥११६५॥
ब्रह्मा सपद्म इत्येते दिगीशा दश कीर्तिताः ।
मन्त्ररीतिमिदानीं त्वं समाकलय भामिनि ॥११६६॥
प्रणवं पुरतो दत्वा तत्तन्नाम ततः परम् ।
ततः परं तत्तदस्त्रं सशब्द परिवृंहितम् ११६७॥
सवाहनश्च सपरिवारश्च तदनन्तरम् ।
शब्दाश्चत्वार इत्येते ङेऽन्ताः कार्या नमस्ततः ॥११६८॥

[बलिदानविधिः]

ततो दद्याद् बलिं देव्यै पूर्वोदितविधानतः ।

[पीठमूर्त्योः पूजा]

अष्टम्यामधिकं दद्यात् सप्तमीबलिदानतः ॥११६९॥
नैमित्तिकक्रमेणैव पीठमूर्त्यर्चनं चरेत् ।
शक्तौ नित्योदितावृत्त्यर्चनं कुर्वीत साधकः ॥११७०॥

नान्यां पूजां वरारोहे व्यवस्थेयं शिवोदिता ।
पीठमूर्तौ पत्रिकामृण्मूर्तौ यो भक्तिभावितः ॥११७१॥
कुरुते तस्य विहितं पूजनद्वितयं तदा ।
पत्रिकायाः पुरः पूजापीठमूर्त्योस्ततः परम् ॥११७२॥
सर्वाऽपि तान्त्रिकी रीतिः पीठमूर्त्योरुदीरिता ।
पत्रिकादिषु पौराणी रीतिरुक्ता पुरारिणा ॥११७३॥
असंसृष्टं पृथक् कृत्य द्वयमेतन्मयोदितम् ।

[दुर्गासप्तशतीपाठविधिः]

ततः परं सुरेशानि पाठयेदथवा पठेत् ॥११७४॥
मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतां भगवतीस्तुतिम् ।
समग्रां वा पठेदाहो वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥११७५॥
महिषासुरस्याप्यथवा मधुकैटभयोरपि ।
कुर्यादुभयमेवात्र विधिसङ्कल्पपूर्वकम् ॥११७६॥
ब्राह्मणान् वरयित्वैव वस्त्रालङ्करणासनैः ।
विदध्यात् कामनोल्लेखं पूजां शक्त्या च पुस्तके ॥११७७॥
शनैः पठेत् पाठकोऽपि वर्णोच्चारणपूर्वकम् ।
सुव्यक्तं नातिविश्लिष्टं न शिरश्चालगीतिवत् ॥११७८॥
तनुमान्दोलयन्नापि न हसन् न रुदन् व्रजन् ।
नाश्नन् नान्यैरालपंश्च न मध्यच्छिन्नवत्तथा ॥११७९॥
आचान्तः कृतशौचश्च पदोरुदगमनोयवान् ।
एतेन विधिनाऽधीते तुष्यते जगदम्बिका ॥११८०॥
यथोक्तफलदात्री च भवति प्राणवल्लभे ।
यथैतत्पाठतो देवि प्रीता स्याद् द्रुतमीश्वरि ॥११८१॥
न तथा धूपदीपस्रग्बलिनैवेद्यविस्तरैः ।
पठनं पाठनं वापि तस्मादेतस्य यत्नतः ॥११८२॥

कार्यं शारदपूजायां कालिकातुष्टिमिच्छता ।
देवि शारदपूजायां यथैतस्य हि नित्यता ॥११८३॥

[होमविधिः]

होमस्यापि तथा ज्ञेया मुख्ये अङ्गे इमे मते ।
हस्तमात्रं विधायादौ स्थण्डिलं शुद्धया मृदा ॥११८४॥
तत्राग्निस्थापनं कृत्वा वैदिकैर्मनुभिः प्रिये ।
घृताहुतिं वा जुहुयात् तिलमिश्रामथापि वा ॥११८५॥
बिल्वपत्रं वाथ पद्मं पायसं वा मधूक्षितम् ।
मन्त्रस्तत्र तु विज्ञेयो भारती षोडशाक्षरी ॥११८६॥
अथवा जयदुर्गाया मन्त्रो यः परिनिष्ठितः ।
सप्तशत्यास्तथा देवि एकैकः श्लोक एव वा ॥११८७॥
मन्त्रे सहस्रसंख्या स्याच्छक्तावयुतमेव वा ।
उभयत्रापि दातव्या कर्मान्ते दक्षिणा शुभा ॥११८८॥
इदं कर्मद्वयं देवि मूर्तेः पुरत आचरेत् ।

[रात्रौ सप्तशतीपाठहोमयोर्निषेधः]

नाप्यदो द्वितयं कार्यं क्षपायां वासरादृते ॥११८९॥
तस्यां कृते तु विफलं जायते वेदशासनात् ।
देवी सप्तशतीपाठं गृह्णाति विधिना कृतम् ॥११९०॥
विधिना वाऽप्यविधिना पुनर्होमं प्रतीच्छति ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्यो होमः शारदपूजने ॥११९१॥
होमः सप्तशतीपाठो बलिर्वादित्रवादनम् ।
चतुष्टयमिदं शस्तं मासीषे कालिकार्चने ॥११९२॥
प्रभूतबलिदानं च कार्यं भूत्यनुसारतः ।
तद्विधानं पुरैवोक्तं पशुजातिविशेषतः ॥११९३॥
समाप्य त्रयमासाद्यं प्रदोषे पर्युपस्थिते ।

[कुमारीपूजाविधिः]

कुमारीपूजनं कुर्याद् त्रिधिना पञ्चमं हि तत् ॥११९४॥

न तथा तुष्यति शिवा बलिहोमस्तुतीरणैः ।
कुमारीपूजनेनात्र यथा सद्यः प्रसीदति ॥११९५॥
न केवलं पूजयेत्ता भोजयेच्चापि यत्नतः ।
भावि भद्राभद्रमुभे तदनक्ति सुरेश्वरि ॥११९६॥
स्वयं तद्रूपमास्थाय मूढभावमुपेयुषी ।
दिदृक्षुरायाति शिवा भक्तिपूजनसम्भृती ॥११९७॥
तस्मादत्रादरः कार्यो भक्तिभावं च जानता ।
देवतास्त्रिविधोत्पातैर्यथादेश हिताहितम् ॥११९८॥
सूचयन्ति तथैवैषा वार्षिकं सुरवन्दिते ।
तद्विज्ञानार्थमप्येषा पूजितव्या प्रयत्नतः ॥११९९॥
चतुर्णामपि कौलानां स्मर्तानामानुकल्पिनाम् ।
नैवात्र मतभेदोऽस्ति नैवार्चनभिदापि वा ॥१२००॥
न च पूर्वोत्तरौ पक्षौ न च सन्देहकल्पना ।
भवेच्च फलबाहुल्यं तुष्टिर्देव्यास्तथैव च ॥१२०१॥
विशिष्य ज्ञायतेऽनेन तथा भावि शुभाशुभम् ।
ज्ञाते शुभे भवेत्तोषोऽन्यस्मिंश्चोपायचिन्तनम् ॥१२०२॥
व्यङ्गता चाप्यकरणात् पूजायाः परिकीर्तिता ।
करणात् साङ्गताऽपि स्यादन्यस्मिन्नकृतेऽपि हि ॥१२०३॥
एवं दोषगुणौ ज्ञात्वा कुर्वीत विधिपूर्वकम् ।
कुमारीपूजनं भक्त्या शरत्पूजनकर्मणि ॥१२०४॥
बलिहोमादयश्चास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अथ तत्प्रक्रियां वक्ष्ये सावधाना भव प्रिये ॥१२०५॥
यामले डामरे तन्त्रे तथा भैरवनामनि ।
मदुक्तसंहितायां च सर्वत्र सममेव हि ॥१२०६॥
शारदीयार्चनस्याङ्गं महोदयमहाफलम् ।
कौलानां निशि पूजोक्ता स्मार्तानामपराह्णिकी ॥१२०७॥

नित्या तु शारद्यर्चायां काम्या नैमित्तिकीतरा ।

[कुमारीस्वरूपम्]

सुस्नातां रक्तपीतादिनानारागोज्ज्वलांशुकाम् ॥१२०८॥

सर्वालङ्कारचित्राङ्गीमज्ञातानङ्गचेष्टिताम् ।

अजातपुंमनःसङ्गां सप्ताष्टनववार्षिकीम् ॥१२०९॥

अनीचजातिं गौराङ्गीं पितृमातृमतीमपि ।

अदन्तुरामवाग्दत्तामधिकोनाङ्गवर्जिताम् ॥१२१०॥

अदीर्घकेशीमुर्द्रिक्तां सुस्मितास्यां मनोहराम् ।

[वर्ज्यकुमारीलक्षणम्]

श्यामां दीर्घदतीमोतुनयनां पिङ्गमूर्धजाम् ॥१२११॥

गतिस्वनत्तनूकुल्यां (?) कुब्जां खञ्जां च खर्वटाम् ।

भ्रूकेशालपत्वसहितां तथा चैव गलद्व्रणाम् ॥१२१२॥

जातस्तनरजोऽनङ्गां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।

एतद्भिन्ना कुमारी तु वरणीयार्चनक्रमे ॥१२१३॥

[[कुमारीपूजासमयः]

नवम्यामस्तगते सूर्ये समाप्ते बलिकर्मणि ।

गीतवादित्रनिर्घोषैरानन्दादरपूर्वकम् ॥१२१४॥

नीत्वा पूजागृहद्वारि कुमारीस्ता अयुग्मिकाः ।

[कुमारीसंख्यानियमः]

पञ्च वा सप्त वा चापि नवैकादश वा पुनः ॥१२१५॥

मुख्यैका तासु कर्तव्या या स्यात् सर्वाङ्गसुन्दरी ।

बह्वीनामप्यभावे हि भवेदेका कुमारिका ॥१२१६॥

काम्ये नैमित्तिके वैका बह्व्यः शारदपूजने ।

श्रेणीभूता उत्थिताश्च नम्रीभूतानना अपि १२१७॥

[कुमारीपूजाविधिः]

स्थापयित्वा क्रमेणैता मुख्यामादौ नियोज्य च ।

देवीबुद्धिं विधायास्यां साधको विगतज्वरः ॥१२१८॥

१गृहीतसलिलामत्रः कल्पितार्चनसम्भृतिः ।
प्राणायामं विधायादौ ततो भूतापसारणम् ॥१२१९॥
गुरुं गणपतिं नत्वा वामदक्षिणयोस्ततः ।
मध्ये कुमारीं च तथा मूलदेवीस्वरूपिणीम् ॥१२२०॥
छोटिकाभिस्तथा तालत्रितयैर्बन्धनं दिशाम् ।
ततो रेखां प्रकुर्वीत दीर्घया जलधारया ॥१२२१॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण स्थापयेदुत्थितां हि ताम् ।
वेदादिलज्जाशाकिन्यः पवित्रमण्डले ततः १२२२॥
सन्निध्यं कल्पय स्वाहा मन्त्र एष उदीरितः ।
ततोऽपरेण मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन सुन्दरि ॥१२२३॥
आवाहयेत् करं धृत्वा वारिमण्डलमध्यगाम् ।
सारस्वतरमाकामयोगिनीडाकिनीमिताम् ॥१२२४॥
पञ्चबीजीं समुद्धृत्य एह्येहि भगवत्यपि ।
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य करीति तदनन्तरम् ॥१२२५॥
कुमारीरूपधारिण्युदीर्य वज्रपदं वदेत् ।
कापालिनि त्वर द्वन्द्वं भौवनेशीत्रपास्त्रियः ॥१२२६॥
सान्निध्यमावेशय च स्वाहा शेषे प्रकीर्तितः ।
पञ्चाशदर्णघटितो मन्त्रोऽयं समुदीरितः ॥१२२७॥
कुमार्या मूलभूतायाः पादौ प्रक्षालयेत्ततः ।
कथयिष्यमाणमन्त्रेण पात्रे संस्थापयेत्ततः ॥१२२८॥
तन्मन्त्रो मैधपाशौ च प्रसादोऽङ्कुश एव च ।
नृसिंहबीजात् पादौ च ततो निर्णेजयामि च ॥१२२९॥
मुदिता भवेति च सकृत् सकृत् प्रमुदिता भव ।
ततः कुर्चास्त्रशीर्षाणि पादप्रक्षालने मनुः ॥१२३०॥

१—आसनोपरि संस्थित्वा साधितार्चनसम्भृतिः ख

तज्जलं मस्तके दद्यात् देवीपादोदप्रज्ञया ।
स्वोत्तरीयांशुकेनैव पादावुपनयेत्ततः ॥१२३१॥
पुनरक्षतमादाय विघ्नानुत्सारयेत् प्रिये ।
उदीर्यमाणमन्त्रेण तालत्रयपुरस्सरम् ॥१२३२॥
तारपाशकलाकूर्चास्त्राणि प्रथमतो वदेत् ।
भूतान्यपसारय च विघ्नान्नाशय चेत्यपि ॥१२३३॥
हृच्छीर्षे चरमे दद्यादेकविंशाक्षरो मनुः ।
कुमार्या सहिताः सर्वे तया देवीस्वरूपया ॥१२३४॥
दर्शनार्थं समायान्ति यावन्त्यो देवयोनयः ।
प्रेता भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वा गुह्यका अपि ॥१२३५॥
राक्षसा दानवा यक्षा ये चान्ये क्रूरकर्मणः ।
सह प्रविश्य कौमार्या मण्डपं शारदार्चनम् १२३६॥
लुम्पन्ति च कुमार्यर्चां पूजां विध्वंसयन्ति च ।
अतो वारद्वयं कार्यं विघ्नस्योत्सारणं प्रिये ॥१२३७॥
ततः स्ववामहस्तेन कुमार्या दक्षिणं करम् ।
गृहीत्वा दक्षचरणं विनिःक्षेपपुरस्सरम् १२३८॥
पङ्क्तिभूताः कुमारीस्ताः श्लोकरूपं मनुं पठन् ।
पूजागृहान्तः शनकैर्नम्रमौलिः प्रवेशयेत् ॥१२३९॥
त्वमम्ब जगतामाद्ये जगदाधाररूपिणि ।
कुमारीरूपमास्थाय प्रविशेदं गृहं मम ॥१२४०॥
भवत्याः कीदृशं रूपं जाने मातरहं नहि ।
कुमारीरूपमेवेदं पश्यामि नरचक्षुषा ॥१२४१॥
भक्तिं मदीयां विज्ञाय त्वत्पादाम्बुजयोः शिवे ।
त्वया प्रकटितं रूपमीदृशं सर्वसिद्धये ॥१२४२॥
दृष्टिः कार्या न मे पापे सञ्चारे नासतः पथः ।
दृढायां केवलं भक्तौ दातव्या सुरवन्दिते ॥१२४३॥

शिवद्यास्तव रूपं हि कीदृशं नेति जानते ।
ज्ञास्यामि को वराकोऽहं पाञ्चभौतिकविग्रहः ॥१२४४॥
इति पञ्च पठन् श्लोकान् स्वपृष्ठेनैव ता नयेत् ।
अनीक्षमाण एवेशि गीतवाद्यपुरस्सरम् ॥१२४५॥
तैजसे वा ततः पीठे दारवे शैल एव वा ।

[यन्त्रनिर्माणविधिः]

सिन्दूरैर्मण्डलं कृत्वा यन्त्रमेतत् समालिखेत् ॥१२४६॥
सर्वान्तस्तु त्रिकोणं स्यात् षट्कोणं तद्बहिः स्मृतम् ।
स्वसम्मुखक्रमेणैव षट्सु कोणेषु तेषु हि ॥१२४७॥
दक्षिणावर्ततो देवि लिखेदग्रेऽङ्कुराणि हि ।
कुलाङ्गना योगिनी च शाकिनीवनितारुषः ॥१२४८॥
रमा च तद्बहिर्लेख्यं पद्ममष्टदलं पुनः ।
तद्बहिः षोडशदलं ततो भूपुरमेव च ॥१२४९॥
वर्तुलत्रितयं तस्य बहिर्लेख्यं वरानने ।
ईदृग्यन्त्रं समालिख्य मुख्याया अञ्जलिं शनैः ॥१२५०॥
स्पृष्ट्वा स्वाञ्जलिना वक्ष्यमाणमन्त्रमुदीरयन् ।
पीठे लिखितयन्त्रे तां दृङ्मीलमुपवेशयेत् ॥१२५१॥
सर्वा अन्यास्तु संस्थाप्यास्तस्या वामे विपश्चिता ।
मुख्यं यत् पूजनं प्रोक्तं मुख्याया एव तन्मतम् ॥१२५२॥
तत् पूजयैव ताः सर्वाः पूजिताः स्युर्न संशयः ।
यन्त्रोपवेशने मन्त्रमधुना कलय प्रिये ॥१२५३॥
चैतन्यपाशकमलात्रपाशाकिन्य एव हि ।
एह्येहि भगवत्युक्त्वा कौमार ब्रह्मचारिणि ॥१२५४॥
कौमारीरूपधारिण्यनन्तरं डाकिनीं स्मरेत् ।
अस्त्रं च पौष्करं कूटं वज्रकापालिनीत्यपि ॥१२५५॥
गुह्यकालि समाभाष्य गुह्यानन्तपदं ततः ।
शक्तिधारिणि संलिख्य भासाकूटमुदीरयेत् ॥१२५६॥

अस्त्रं शत्रुप्रमर्दिन्युक्त्वा महाबलवर्द्धनि ।
चण्डयोगेश्वरि प्रोच्य फेत्कारीबीजमन्वतः ॥१२५७॥
स्वाधिष्ठानं ततः कूटं गौरि गौरीपदं ततः ।
ततः शरीरे सान्निध्यं कुरु द्वन्द्वं रुषो युगम् ॥१२५८॥
अस्त्रद्वयं नमः स्वाहा महामन्त्र उदाहृतः ।
यन्त्रेऽमुनैवोपवेश्य ततो दद्याद् बलिं प्रिये ॥१२५९॥
समांसभर्जितान्नेन हालाधारान्वितेन हि ।
समागताभ्यः पूर्वोक्तदेवयोनिभ्य आदरात् ॥१२६०॥
तन्मन्त्रः प्रणवो मैधो लज्जा कूर्चश्च शाकिनी ।
डाकिनी चापि फेत्कारी नृसिंहो भूत एव च ॥१२६१॥
कुमारी पदमाभाष्य भ्यसन्ता सहचर्यपि ।
इमं बलिं गृहण युगं गृह्णापय युगं तथा ॥१२६२॥
भक्ष भक्षय च द्वन्द्वमितोऽपसरतद्वयम् ।
द्वयं बहिस्तिष्ठत च यावत्पूजां करोम्यहम् ॥१२६३॥
कूर्चास्त्रयोस्त्रयं प्रोच्य ततो हृच्छिरसी वदेत् ।
बलिं दत्वा ततो देवयोनिभ्यः परमेश्वरि ॥१२६४॥
आरभेत निरालस्यः कुमारीन्यासमुत्तमम् ।
न्यसनीयस्थलं तन्न स्वाङ्गं किन्तु मनुं पठन् ॥१२६५॥
कुमार्यङ्गेषु विन्यस्येदेवं शास्त्रस्य निश्चयः ।

[कुमारीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अस्य कुमारीन्यासस्य प्रजापति ऋषिर्मतः ॥१२६६॥
छन्दस्तु विराट्गायत्री कुमारीरूपयान्विता ।
गुह्यकाली देवता च योगिनी बीजमेव च ॥१२६७॥
लक्ष्मीः शक्तिः समुद्दिष्टा त्रपा कीलकमेव च ।
कुमारीन्यास एवास्य विनियोग उदाहृतः ॥१२६८॥

एवमृष्यादिकं कृत्वा कुर्यात् करषडङ्गके ।
रूपादिभिश्च शब्दान्तैः ससर्गकुणपार्णकैः ॥१२६९॥

[कुमारीन्यासोद्धारः]

अथ न्यासोद्धृतिं वक्ष्ये ससामान्यविशेषकाम् ।
आदौ बीजद्वयं स्थेयंततो नामानि वै पृथक् ॥१२७०॥
पृथक् पृथक् ततश्चाङ्गं चरमे तु षडक्षरी ।
सा कालव्यापिनी देवि सामान्येयमुदाहृता ॥१२७१॥
विशेषो मैधशाकिन्यौ सर्वत्र पुरतः स्थिते ।
नामान्यादौ खलु महाचण्डयोगेश्वरी मता ॥१२७२॥
ततः सिद्धिकराली च पुनः सिद्धिविकराल्यपि ।
महाडामर्यथ ज्ञेया वज्रकापालिनी ततः ॥१२७३॥
मुण्डमालिन्यट्टहासिन्यतो द्वे परिकीर्तिते ।
चण्डकापालिनी कालचक्रेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥१२७४॥
गुह्यकाली ततः कात्यायनी कामाख्यया सह ।
चामुण्डा सिद्धिलक्ष्मीश्च कुब्जिका तदनन्तरम् ॥१२७५॥
मातङ्गी तदनु ज्ञेया चण्डेश्वर्यथ कीर्त्यते ।
सर्वशेषे तु कौमारी एता अष्टादशेरिताः ॥१२७६॥
अङ्गान्यतो वच्मि शिरो मुखं तदनु चक्षुषः ।
कर्णौ नासापुटे चापि कपोलौ तत्परौ पुनः ॥१२७७॥
अधरोष्ठौ दन्तपंक्तिः स्कन्धौ हृदयमेव च ।
बाहू च जठरं पृष्ठमूरू जानू तथैव च ॥१२७८॥
जङ्घे पादौ च सर्वाङ्गं तावन्त्येव स्थलानि च ।
शेषे तेऽधिष्ठतु स्वाहा विज्ञेयेयं षडक्षरी ॥१२७९॥
एतानि न्यसनीयानि स्थानानि त्रिदशेश्वरि ।
कुमार्या एव न स्वस्य विज्ञातव्यानि धीमता ॥१२८०॥

[अर्घस्थापनम्]

ततोऽर्घस्थापनं कुर्यान्नैत्यकेयमुदाहृतम् ।
पूजोपकरणस्यापि शुद्धिरुक्ता पुरोक्तवत् ॥१२८१॥

[पीठन्यासविधिः]

स्पृष्ट्वा कुमार्या मूर्द्धानं पीठन्यासं समाचरेत् ।
यन्त्रवैद्धि ततः स्वाङ्गे परं भेद इयान् प्रिये ॥१२८२॥

[श्रीपात्रस्थापनविधिः]

श्रीपात्रं केवलं स्थाप्यं यथा नित्ये प्रकीर्तितम् ।
विधानं तत् कुमार्यै तु दातव्यं पूजनान्तरे ॥१२८३॥
स्वयं नैपोयुञ्जीत विशेषोऽयमुदाहृतः ।
ततः षडङ्गं कुर्वीत कुमार्या वक्ष्यमाणकम् ॥१२८४॥
विदधीत ततो देवि गुह्यकाल्याः पुरोदितम् ।
कुमार्याः कलयेशानि ध्यानं यत्त्रिदशैः कृतम् ॥१२८५॥

[कुमारीध्यानम्]

या कौमारी सरसिजभुवाराधिता सृष्टिहेतो—
र्या दैत्यानां निधनकृतये विष्णुना संस्तुता च ।
संहारार्थं त्रिपुररिपुणा पूजिता या कराभ्यां
सा कौमारं वपुरनुगता गुह्यकाली पुरोऽस्तु ॥१२८६।
आवश्यकं तु कौलानां पूर्वोक्तध्यानमीश्वरि ।
स्मार्तानां हि विकल्पोऽत्र तवैतत् प्रतिपादितम् ॥१२८७॥
उपचारांस्ततः सर्वान् पाद्यादीन् स्तुतिपश्चिमान् ।
दद्यात् कुमारीगायत्र्या कुमार्यै दधदत्वराम् ॥१२८८॥

[कुमारीगायत्री]

तामिदानीं निबोधस्व यस्यां पूजा प्रतिष्ठिता ।
मैधात् ताराच्च शाकिन्याः कुमार्यै विद्महे वदेत् ॥१२८९॥

अपारमावधूभ्यश्च कन्यकायै तु धीमहि ।
पाशप्रासादकामेभ्यस्तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥१२९०॥
एषा कुमारीगायत्री त्रिंशदर्णात्मिका मता ।
मन्त्रेणानेन वै दद्यादुपचारान् स्वशक्तितः ॥१२९१॥
अनुवर्जनदो मन्त्रः पश्चाद् वक्ष्यामि ते प्रिये ।

[कुमारीदेयवस्तूनि]

भूषणानि दुकूलानि सिन्दूरालक्तकावपि ॥१२९२॥
कज्जलादर्शपिष्टाततालवृन्तानि पेटिका ।
परिकर्माधारचोलमञ्जिकापीठदोलिकाः ॥१२९३॥
मञ्चालिका च मञ्जूषा पादुके कुथपट्टजे ।
चण्डातकोपसंव्याने तथोद्वर्तनभाजनम् ॥१२९४॥
शय्योपधानपर्यङ्काः समुद्गश्च प्रसाधनी ।
प्रतिग्राहश्च हिन्दोला तथा सीमन्तवर्तिका ॥१२९५॥
गोरोचनामृगमदौ कर्पूरं कुङ्कुमं तथा ।
एवमादीनि चान्यानि यावच्छक्यानि सुन्दरि ॥१२९६॥
प्रदातव्यानि वस्तूनि कुमारी तुष्यते यथा ।
मन्त्रः प्रदान एतेषा गायत्र्येव प्रकीर्तिता ॥१२९७॥
ततो यत् स्थापितं पात्रं कुमार्यै प्रतिपादयेत् ।
स्वीकुर्यात् सा च तत्रैव तथा यत्नं समाचरेत् ॥१२९८॥
अगृहीते तु तत्पात्रे महान् दोषोऽभिजायते ।
अतो यत्नस्तथा कार्यः स्वीक्रियेत यथा तया ॥१२९९॥
ततो गृहीत्वा कुसुमाक्षते तस्याः कलेवरे ।

[कुमारीतनौ पञ्चाशत्शक्तिपूजाविधिः]

पञ्चाशत्संख्यकाः शक्तीः क्रमतः परिपूजयेत् ॥१३००॥
ता इदानीं प्रवक्ष्यामि सावधाना निशामय ।
आद्या जया च विजया ऋद्धिदा माययान्विता ॥१३०१॥

कला च सिद्धिदा सूक्ष्मा प्रभा स्यात् सुप्रभा ततः ।
विद्युता च विशुद्धिश्च नन्दिनी च विभूतियुक् ॥१३०२॥
अपराजिता च ललिता लक्ष्मीगौरी तथैव च ।
अथ मेधा च गायत्री सावित्री च स्वधा पुनः॥१३०३॥
स्वाहेच्छे च क्रिया विद्या प्रज्ञा दीप्ता च चेतना ।
भद्रा ज्येष्ठा तथोमा च शिवा च मुदिता क्षमा ॥१३०४॥
श्रद्धाऽथ विमला कौमुद्यपि वै विशदा ततः ।
अशोका ज्ञानदा चैव बलदा राज्यदापि च ॥१३०५॥
मैत्री तदनु रुद्राणी भवानी च मृडान्यपि ।
सर्वज्ञा चण्डिका चापि कुमारी सर्वशेषगा ॥१३०६॥
पञ्चाशत्संख्यका एताः कुमार्याः शक्तयः स्मृता ।

[भैरवादिपूजाविधिः]

भैरवानष्ट तदनु पूजयेदक्षतादिभिः ॥१३०७॥
भैरवीभ्येस्ततो विघ्नविनायकेभ्य एव च ।
बटुकक्षेत्रपालभ्यां योगिनीभ्यस्ततोऽपि च ॥१३०८॥
भूतेभ्यः प्रेतयक्षेभ्यो डाकिनीभ्यस्तथैव च ।
कुर्वीत पूजनं देवि कुसुमाक्षतचन्दनैः ॥ १३०९॥

[अष्टदेवीपूजाविधिः]

पुनरष्टौ सर्वशेषे ङेऽन्ता देवीर्यजेत् प्रिये ।
महामाया कालरात्री ततो वै सर्वमङ्गला ॥१३१०॥
पूज्या डमरुका पश्चाद् राजराजेश्वरी तथा ।
सम्पत्प्रदा भगवती कुमारी तदनन्तरम् ॥१३११॥
समाप्येत्थं कुमार्यर्चां तत्पुरो भुवि वारिणा ।

[विविधविधान्नोत्सर्गविधिः]

वर्तुलं मण्डलं कृत्वा तन्मध्ये कुलकामिनीम् ॥१३१२॥

विलिख्य लाजकुसुमाक्षतचन्दननागजैः ।
पूजयेन् मण्डलं तच्च शुभदायै नमो वदेत् ॥१३१३॥
स्थालीगतं ततः सर्वमन्नं तत्र निवेश्य हि ।
नानाविधांश्च सामग्रीं लेह्यचोष्यादिघट्टिताम् ॥१३१४॥
मांसमीनसुरापूर्णां भक्ष्यचर्व्यादिपूरिताम् ।
कुमारीदक्षहस्तं च स्थापयित्वान्नमूर्द्धनि ॥१३१५॥
उत्तानं वक्ष्यमाणेन मनुनाऽन्नं समुत्सृजेत् ।

[विविधविधान्नोत्सर्गमन्त्रः]

मैधतारौ शाकिनी च त्रपा प्रेतश्च भैरवी ॥१३१६॥
योगिनीकामकमला बीजानि पुरतो नव ।
जय द्वयं भगवति महाचण्डपदादनु ॥१३१७॥
योगेश्वरि कुमारीरूपधारिणि ततो वदेत् ।
स्वरूपं दर्शय द्वन्द्वं ततः प्रकटय द्वयम् ॥१३१८॥
डाकिनी नरसिंहश्च क्रोधादपि महापदम् ।
भोगानु वैभवे प्रोच्य इदमन्नं ततः परम् ॥१३१९॥
गृहणद्वयं भुञ्ज युगं खाहि युग्मं ततः परम् ।
मम शत्रून् संहर द्विर्नाशय द्वितयं तथा ॥१३२०॥
साम्राज्यं तदनु द्विर्द्विर्देद देहि पदद्वयम् ।
क्षेममाब्दिकमुच्चार्य ब्रूहि युग्ममनन्तरम् ॥१३२१॥
ततः सिद्धिकराल्युक्त्वा सिद्धितो विकरालि च ।
बीजानि त्रीणि तत्पश्चात् फेत्कारीहारकर्णिकाः ॥१३२२॥
स्फुरद्वयं प्रस्फुर द्विर्मां रक्ष युगलं तथा ।
कूर्चद्वयं चास्त्रयुगं नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥१३२३॥
शतमेकोनपञ्चाशदक्षराणि मनाविह ।

[अन्यकुमरीपूजाविधिः]

इतरासां कुमारीणां प्रत्येकं पूजनं चरेत् ॥१३२४॥

गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैरनु सम्भृतैः ।
शक्तौ तयैव गायत्र्याऽशक्तौ देवेश्यमन्त्रकम् ।।१३२५।।
अन्यानि यादृशान्यस्यै मुख्यायै कल्पितानि हि ।
अन्याभ्यस्तादृशान्येव दातव्यान्येष निश्चयः ।।१३२६।।
फलाफलं तु मुख्याया ज्ञेयमत्र विपश्चिता ।

[कुमारीभोजनकालिककर्तव्यतोपदेशः]

भुञ्जानासु कुमारीषु न तूर्यध्वनिमाचरेत् ।।१३२७।।
नान्यत्र च मनो दद्यात् संबाधं नैव कल्पयेत् ।
कोलाहलं निषेधेत अमङ्गल्यानि यानि च ।।१३२८।।
रुदितापानवायू च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
सावधानो भवेदत्र किमादौ भक्षयन्ति ताः ।।१३२९।।
कुत्र दृष्टिं प्रक्षिपन्ति भीताः किं वा भवन्त्यमूः ।
इत्यादि नानाजातीयाश्चेष्टा आसां प्रयत्नतः ।।१३३०।।
सावधानतया ज्ञेया भद्राभद्रस्य सूचकाः ।
भक्षयन्तीषु तास्वेवं पठेत्तत्स्तोत्रमत्वरः ।।१३३१।।
कृताञ्जलिर्नम्रशिरा आसामन्ने क्षिपन् दृशौ ।

[कुमारीभोजनकालिकस्तोत्रम्]

जयकालि महाभीमे भीमरावे भयापहे ।।१३३२।।
संसारदावाग्निशिखे वृजिनार्णवतारिणि ।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभूतेशप्रभृत्यमरवन्दिते ।।१३३३।।
सर्गपालनसंहारकारिण्यहितमारिणि ।
गुह्यकालि परानन्दरसपूरितविग्रहे ।।१३३४।।
परब्रह्मरसास्वादकैवल्यानन्ददायिनि ।
गुणातीतेऽपि सगुणे महाकल्पान्तनर्तकि ।।१३३५।।
कुमारीरूपमास्थाय विज्ञाप्यज्ञास्वरूपिणि ।
आगतासि ममागारं शारद्यर्चा समाप्तये ।।१३३६।।

साम्वत्सरिककल्याणसूचनाय तथैव च ।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥१३३७॥
यस्मात्त्वमीदृशं कृत्वा कौमारं रूपमुत्तमम् ।
गुह्यकालि समायाताऽब्दिकपूजाजिघृक्षया ॥१३३८॥
त्वमेवैतेन रूपेण देवेभ्यः प्रार्थिता पुरा ।
दत्तवत्यसि साम्राज्यं वरानपि समीहितान् ॥१३३९॥
मह्यमप्यद्य देवेशि वरं देहि सुपूजिता ।
ब्रह्मणे सृष्टिसामर्थ्यं त्वं पुरा दत्तवत्यसि ॥१३४०॥
विष्णवे च त्वमेवादास्तथा पालनशक्तिताम् ।
महारुद्राय संहारकर्तृत्वमददः शिवे ॥१३४१॥
देवेभ्यश्चापि दैत्यानां नाशने दक्षतामपि ।
अन्तर्यामिन्यसीशानि त्रिलोकीवासिनामपि ॥१३४२॥
निवेदयामि किं तेऽहं सर्वकर्मैकसाक्षिणि ।
शत्रुनाशं राज्यलाभं शरीरारोग्यमेव च ॥१३४३॥
त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिं याचेऽहं चतुरो वरान् ।
नमस्ते भगवत्यम्ब नमस्ते भक्तवत्सले ॥१३४४॥
नमस्ते जगदाधाररूपिणि त्राहि मां सदा ।
मातर्न वेद्मि रूपं ते न शरीरं न वा गुणम् ॥१३४५॥
भक्त्या हृत्स्थितया पूजां तव जानाम्यनन्यधीः ।
त्वं माता त्वं पिता बन्धुस्त्वमेव जगदीश्वरि ॥१३४६॥
त्वं गतिः शरणं त्वं च स्वर्गस्त्वं मोक्ष एव च ।
विहाय त्वां जगन्मातर्नान्यां जानामि देवताम् ॥१३४७॥
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः ।
एभिः श्लोकैः स्तुतिं कुर्यात् कुमारीणां वरानने ॥१३४८॥
दद्यादाचमनीयं हि भोजनान्ते गतत्वरः ।
ततः प्रदद्यात् ताम्बूलं मृगचन्द्राधिवासितम् ॥१३४९॥

सह वाद्यादिभिस्तावदनुव्रज्य विसर्जयेत् ।

[कुमारीभोजनचेष्टाभ्यां शुभाशुभफलज्ञानम्]

शुभाशुभफलं वच्मि साम्प्रतं तव पार्वति ॥१३५०॥
तत्राप्यादौ शुभं वक्ष्ये विपरीतं ततोऽस्य च ।
तदुच्छिष्टं ततो दद्याज्जम्बुकेभ्योऽथ भूतले ॥१३५१॥
निखनेदप्सु वा देवि समालोड्य विसर्जयेत् ।
आदौ भक्ते करे दत्ते सुभिक्षं विषये भवेत् ॥१३५२॥
पायसे यजमानस्य पशुवृद्धिः प्रजायते ।
घृते स्यादायुराधिक्ये पूप ऐश्वर्यमृद्ध्यते ॥१३५३॥
तथा मोदकशष्कुल्योः सन्ततिर्भूयसी भवेत् ।
मत्स्यजातिष्वर्थलाभः कृशरे यानसम्पदः ॥१३५४॥
मांसे तु पुत्रलाभः स्यात् तेमने कामिनो भवेत् ।
फलं मांसविशेषस्य भिन्नं भिन्नं ब्रुवे हि तत् ॥१३५५॥
अर्थलाभस्तु वाराहे खाड्गे तु विजयो रणे ।
माहिषेण तु मांसेन राज्यप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥१३५६॥
आरोग्यं[1] हारिणेनाशु कार्ष्णसारेण वाग्मिता ।
शाशे मेधावितां गच्छेदाजेऽप्यजरतामपि ॥१३५७॥
आवये पलले देवि सर्वकल्याणमाप्नुयात् ।
कामठे मेदिनीलाभो बह्वन्नत्वं च राङ्कवे ॥१३५८॥
वार्ध्रीनसे शत्रुनाशो हांसे मनुजवश्यता ।
तैत्तिरेऽभीष्टसिद्धिश्च वर्तके पापसंक्षयः ॥१३५९॥
मनस्तोषो रसालायां फलेक्ष्वोर्विश्ववश्यता ।
कीर्तिस्तु महती दध्नि दुग्धे सम्पदनुत्तमा ॥१३६०॥
पिष्टके तनयावाप्तिः शाके च रिपुसंक्षयः ।
हालायां पुण्यवृद्धिः स्यात् चोष्ये संसत्सु वाग्मिता ॥१३६१॥

१— रारोग्यं क

धनागमः फाणिते तु कूर्चिकायां बलोन्नतिः ।
तुम्बीबृन्ताककूष्माण्डकारवेल्लपटोलकैः ।।१३६२।।
घोषशूरणदीर्घाङ्घ्रिमूलकैस्तेमने कृते ।
विद्यालाभो भवेद्देवि तक्रे वाक्पटुतापि च ।।१३६३।।
गोधूमचूर्णघटितवस्तुनि प्रतिभावने ।
देव्यां दृष्टौ भवेन्मोक्षो मण्डपेऽप्युन्नतिर्भवेत् ।।१३६४।।
चामरछत्रयोस्तालवृन्तपर्यङ्कयोरपि ।
घण्टादर्पणयोश्चापि दृग्दाने भूपतिर्महान् ।।१३६५।।
आकल्पालङ्करणयोः स्पर्शचालनदृष्टिषु ।
नानाविधानि सौख्यानि भवन्ति महितुः प्रिये ।।१३६६।।
एवंविधानि भूयांसि चेष्टितान्यशनानि च ।
शुभादेशीनि जायन्ते विपरीतान्यतः शृणु ।।१३६७।।
मुख्यभूता कुमारी चेद्धसति द्वित्रिवारकम् ।
दुर्भिक्षं जायतेऽवश्यं प्रजाः स्युः पीडिता अपि ।।१३६८।।
राजा विनाशमायाति कुमार्या रोदने कृते ।
उच्चारे तु महामारी पुरीषे पुरदाहनम् ।।१३६९।।
अभोजने शत्रुभयमापदो बहुभोजने ।
अभाषणे त्वामयाः स्युर्विपदो बहुभाषणे ।।१३७०।।
उपसर्गा बहुविधाश्चेष्टया करपादयोः ।
अतिलज्जा विनाशाय तथा निर्लज्जता शुचे ।।१३७१।।
नानोत्पातास्तु मौने स्युः स्वापे राज्ञो विनाशनम् ।
सर्वनाशस्तु भीतायां क्रुद्धायां मृत्युरेव च ।।१३७२।।
आवेशे तत्क्षणाद् राजा म्रियते नात्र संशयः ।
शङ्कितायां शत्रुशङ्का श्रान्तायामीतितो भयम् ।।१३७३।।
चिन्तितायां तु विज्ञेयं तद्राष्ट्रस्यैव पातनम् ।
मोहे वित्तविनाशः स्याज्जाड्ये पूजा तु निष्फला ।।१३७४।।

चाञ्चल्ये चञ्चला लक्ष्मीः पूजकस्यैव जायते ।
विषादवत्यथ यदि कुमारी तत्र जायते ॥१३७५॥
सराजं सप्रजं राष्ट्रं तदा सीदति पार्वति ।
रोगेण म्रियते राजा यदि रुग्णा प्रजायते ॥१३७६॥
दुर्भिक्षमरकातङ्कामत्यश्रूणि विमुञ्चति ।
सर्वनाशो भवेत्तर्हि धुनोति यदि मस्तकम् ॥१३७७॥
त्रस्तायां रिपुतस्त्रासस्तस्य राज्ञः प्रदिश्यते ।
कम्पे सति स्याद् विमुखी कालिका परमेश्वरी ॥१३७८॥
नीचैः शिरश्चेत् कुरुते असन्तुष्टा तदेश्वरी ।
हीनायुः स्यात्तदा पृथ्वीपतिश्चेद् गद्गदस्वना ॥१३७९॥
पूजकस्य भवेद् दैन्यं व्याकुला यदि जायते ।
मोहेन व्याकुलायां तु सर्वं नगरमाकुलम् ॥१३८०॥
व्रीडितायां भवेद्रोगः स्वेदे दारधनक्षयः ।
अधोवायु त्यजति चेत् कुमारी दैवयोगतः ॥१३८१॥
पीडितं परचक्रेण तदा भवति पत्तनम् ।
गीतं गायति चेत्तत्र कुमारो रहिता क्रिया ॥१३८२॥
सप्रजाराष्ट्रतनयदारस्य नृपतेर्मृतिः ।
सहागताभिः कदाचिन्मुख्या विवदते यदि ॥१३८३॥
तदा समायात्यकस्मात् परचक्रं सुदारुणम् ।
यया कयाचित् सार्द्धं वा येन केनचिदेव वा ॥१३८४॥
कुमारी भाषते वीतभयमन्दाक्षसाध्वसा ।
प्रजायन्ते तदा तस्य विषयेषु षडीतयः ॥१३८५॥
व्यत्यासं यदि भक्ष्यस्य कुर्वते करचालनैः ।
व्यस्तं समस्तं भवति मनसो वाञ्छितं प्रिये ॥१३८६॥
उपायनीकृतं यत्तद्द्रव्यं देव्यै तु मण्डपे ।
तच्चेत् कराभ्यां स्पृशति कान्दिशीको भवेन्नृपः ॥१३८७॥

निर्वापयति चेद् दीपं कुमारीमुखमारुतैः ।
बुद्धिभ्रंशो भवेत्तर्हि ज्ञानदीपश्च नश्यति ॥१३८८॥
दैवयोगाद्धि नृत्यन्ति कुमार्यश्चेत् सुराकुलाः ।
सराजकः सविषयः श्मशानमिव जायते ॥१३८९॥
वासांस्युत्सृज्य नग्नाः स्युर्यदि तत्र कुमारिकाः ।
शत्रुभिर्ध्रियते तर्हि राजा समरमूर्द्धनि ॥१३९०॥
यदि फूत्कृत्य कूर्द्दन्ते करौ धृत्वा भ्रमन्ति च ।
भूतावेशः क्षितीशस्य जायते नात्र संशय ॥१३९१॥
उच्चरिष्यामि हर्म्ये वा वदन्तीत्थं कुमारिकाः ।
भोजनावसरे तर्हि महामारी भयं भवेत् ॥१३९२॥
वामे वा दक्षिणे वापि चलत्तारकया दृशा ।
रक्तोग्रया घूर्णयते शिरः स्वस्य कुमारिका ॥१३९३॥
कुरुते वाट्टाहासं सा येन त्रस्यन्ति मानवाः ।
भूतावेशो भवेत्तर्हि प्रेता नृत्यन्ति वा पुरे ॥१३९४॥
दन्तैर्दन्तान् पीडयित्वा कुर्यात् कटकटारवम् ।
प्रयाति सदनं मृत्योः सदारसुतबान्धवः ॥१३९५॥
दृशावनिमिषे कृत्वा संदश्यौष्ठं रदेन च ।
सन्तर्जयति शीर्षं च कम्पयन्ती कुमारिका ॥१३९६॥
तदेव फलमुद्दिष्टं यस्मात् कटकटारवे ।
आत्यन्तिकं भजेन्मौनं करेणान्नं स्पृशेन्न च ॥१३९७॥
शिरोऽत्यर्थं च नमयेदङ्गुष्ठेन लिखेद् भुवम् ।
विदध्यात् भूतले रेखां करजैर्निष्प्रयोजनम् ॥१३९८॥
संहताभ्यां कराभ्यां च कण्डूयेदथवा शिरः ।
तृणान्यकारणं छिन्द्यादङ्गुलीस्फोटमाचरेत् ॥१३९९॥
पाणिभ्यां मुद्रयेन्नेत्रे द्वौ कर्णौ पिदधाति वा ।
कुर्वीत वा बाहुरिकां पार्ष्णिघृष्टिं करोति वा ॥१४००॥

महान्तं ग्रासमादत्ते मुखं व्यादाय तिष्ठति ।
अन्नोपरि क्षुतं धत्ते जृम्भणं वा मुहुर्मुहुः ॥१४०१॥
गृहीत्वा पाणिना वान्नं चतुर्दिक्षु क्षिपत्यपि ।
उत्थाय वा प्रचलति त्यक्त्वान्न पूजनं तथा ॥१४०२॥
आयाति वमनं वास्याः स्यातां रोमाञ्चवेपथू ।
निर्गच्छतोऽथवा गात्रात् पूयास्रे हेतुमन्तरा ॥१४०३॥
अकस्मादेव कुरुते काकुं चेत् कारणं विना ।
अश्लीलं बलगति तथा स्ववर्ग्यर्थे प्ररोदिति ॥१४०४॥
अमुक्तालङ्कृतीर्मुञ्चेद् गृहं यास्यामि वा वदेत् ।
यस्य कस्यापि कुर्याद् भर्त्सनं तत्स्थले स्थिता ॥१४०५॥
उपालभेत वा काञ्चित् सहैवास्या उपेयुषीम् ।
भिनत्ति वाऽनिदानं सा स्वहस्तवलयानि वा ॥१४०६॥
कृते मृतस्य कस्यापि बन्धोः शोचति तत्रगा ।
यत्किञ्चिद् वा प्रलपति निर्निमित्तं कुमारिका ॥१४०७॥
सर्वमेतदमङ्गल्यं विज्ञेयं त्रिदशार्चिते ।
दुर्भिक्षं धननाशश्च रोगो मारी भयं तथा ॥१४०८॥
पदे पदेऽत्र विपदः शोको व्याधी रिपून्नतिः ।
परचक्रागमोऽकस्मादग्निदाहः पुरे गृहे ॥१४०९॥
मृत्युस्त्रासश्च दारिद्र्यं विच्छेदो बन्धुभिः सह ।
भूतप्रेतपिशाचाभिनिवेशोऽपि गृहे गृहे ॥१४१०॥
अष्टभिस्तु महारोगैः प्रजानां निधनं भवेत् ।
इतस्ततः प्रधावन्ति लोका भयनिपीडिताः ॥१४११॥
किं बहूक्तेन देवेशि कल्प आकालिको भवेत् ।
इतरेषामणीयस्तु भयं राज्ञां महद् भवेत् ॥१४१२॥
कुमारीचेष्टितद्वारा ज्ञायते हि शुभाशुभम् ।
वार्षिकं च फलं राज्ञो जयो वाथ पराजयः ॥१४१३॥

मृत्युर्दुःखं धनं सौख्यं शत्रुभीतिर्बलोन्नतिः ।
राज्यवृद्धिः प्रजापीडा व्यङ्ग्यतानीकसंक्षयः ॥१४१४॥
कुमारीपूजनात् सर्वं जायते भोजनादपि ।
परीक्ष्यं यत्नतस्तस्माद् राज्ञा स्वस्य शुभाशुभम् ॥१४१५॥
अर्चातोऽपि विशेषेण भोजनेन सुरेश्वरि ।
जाते शुभे समीचीनं वृत्ते तदितरत्र हि ॥१४१६॥
काम्यार्चा बहुसम्भारैर्दोषं तज्जं निवारयेत् ।
निवृत्य स्वगृहं याता यदि रुग्णा कुमारिका ॥१४१७॥
तस्मिन्नेवाह्नि भवेत् तथापि न शुभं फलम् ।
इत्यादि फलबाहुल्यं शुभस्याप्यशुभस्य च ॥१४१८॥
मया विविच्य कथितं ध्रियस्व हृदि यत्नतः ।

[पीठमूर्त्योर्निशीथपूजाविधिः]

ततो निशीथसमये विधिवत् पूजनं पुनः ॥१४१९॥
पीठमूर्त्योः प्रकुर्वीत धूपदीपानुलेपनैः ।
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यादिभिस्तथा ॥१४२०॥

[शिवाबलिविधिः]

केचिदत्र प्रयच्छन्ति शिवाभ्यो बलिमुत्तमम् ।
उपासका अमुष्या हि यत्नतो विधिपूर्वकम् ॥१४२१॥
पुराद् बहिर्निःसलाके महारण्यसमीपतः ।
गृहीत्वा भक्ष्यवस्तूनि पूजासम्भृतिमप्युत ॥१४२२॥
आप्तैरनुगतो द्वित्रैः प्रदद्यात् फेरवे बलिम् ।
आमानि पक्वान्यपि च मांसानि बहु ना यजेत् ॥१४२३॥
तत्रोदीची दिग्वदनो वीतभीः शुचिरूर्जितः ।
प्राणायामं षडङ्गं च विधायार्धं प्रपूर्य च ॥१४२४॥
उत्थाय मुक्तचिकुरः शिवा आकारयेच्छनैः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पुष्पाण्यञ्जलिना दधत् ॥१४२५॥

अस्थापयन् कमपि हि नरं स्वोभयपार्श्वयोः ।
तारो मैधं भौवनेशी कूर्चप्रासादमन्मथाः ॥१४२६॥
भूतदण्डत्रपागोऽशुशुक्लमेषास्ततः परम् ।
दस्रशक्तिरमाश्चापि बीजानीमानि षोडश ।,१४२७॥
एकादशानां शब्दानां संबुद्धिः क्रमतस्ततः ।
तत्राद्या गुह्यकालोति घोररावा ततोऽप्यनु ॥१४२८॥
महाकापालीति ततो विकटदंष्ट्रा ततः परम् ।
सम्मोहिनी शोषिणी च करालवदना तथा ॥१४२९॥
मदनोन्मादिनी चापि ज्वालामालिन्यनन्तरम् ।
शिवारूपिण्यपि ततो भगवत्यथ कोर्तयेत् ॥१४३०॥
आगच्छ युगलं प्रोच्य मम सिद्धिमितोरयेत् ।
देहि रक्ष द्वययुगयोर्मध्ये मामिति कीर्तयेत् ॥१४३१॥
दण्डो[1] लज्जा च गौः शुक्लः पूरकः कुम्भकोऽपि च ।
महाक्रोधक्षेत्रपालौ युग्मं कूर्चास्त्रयोः शिरः ॥१४३२॥
त्रिरेनं मनुमाभाष्य वर्त्मासां प्रतिपालयेत् ।
आगताश्चेद् बहुफलं नागताश्चेन्न च क्षतिः ॥१४३३॥
अनागमनजो दोषो विचार्योऽस्य शिवाबलौ ।
आयाताभ्यस्तु दूरेण प्रणमेच्छिरसा मुहुः ॥१४३४॥
दविष्ठो भक्तिभावेन पूजयेत् सुसमाहितः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१४३५॥
नैवेद्यधूपदोपैश्च यद्यदन्यच्च सम्भवेत् ।
यावच्छक्योपचारेण भक्तिनम्रः समर्चयेत् ॥१४३६॥
सामग्रीं महतीं नीतामेकीकृत्याग्रतः शनैः
वामेन संस्पृशन्नन्नं दक्षेणाम्बु करेण हि ॥१४३७॥

१—इतिः पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

उत्सृजेन् मनुनानेन शिवाभ्यो बलिमीश्वरि ।
वेदादिर्भौवनेशी च फेत्कारी कूर्च एव च ॥१४३८॥
डाकिनी शाकिनी चैव तथा दण्डादिपञ्चकम् ।
गुह्यकाली महाघोररावा च भगमालिनी ॥१४३९॥
तथ शिवारूपिणी च ज्वालामालिन्यनन्तरम् ।
ललज्जिह्वा महादंष्ट्रा महाबलपराक्रमा ॥१४४०॥
करालवदना चापि वज्रकापालिनीति च ।
महाचण्डपदस्यान्ते तथा योगेश्वरीत्यपि ॥१४४१॥
महाकापालिनी चापि जगच्छब्दाज्जनन्यपि ।
महारात्रो महामाया सर्वशेषे तु षोडशी ॥१४४२॥
श्मशानवासिनीत्येवं सम्बोधनतया स्थिता ।
इमं महाबलिमिति प्रयच्छामि ततो वदेत् ॥१४४३॥
गृह्णगृह्णापय द्वन्द्वं खाद खाहि युगं युगम् ।
मम सिद्धिं समाभाष्य कुरुयुग्ममनन्तरम् ॥१४४४॥
प्रासादरावनृहरिपराभैरव्यथापि च ।
भासापुष्करहैरण्यगर्भकूटान्यतः परम् ॥१४४५॥
परोक्षमपरोक्षं मां द्विषतः परिकीर्तयेत् ।
नाशयादौ मारय च स्तम्भयोच्चाटयापि च ॥१४४६॥
हन विध्वंसय मथ विद्रावय पचापि च ।
छिन्धि शोषय तस्यानु त्रासय त्रुट मोहय ॥१४४७॥
उन्मूलय तथा भस्मीकुरु जृम्भय चेत्यपि ।
स्फोटय क्षोभय दह खाहि विभ्रामयेति च ॥१४४८॥
हन सन्ताडय तुरु दम मर्दय पातय ।
मूर्छयावेशया तथा भिन्धि ज्वरय चेत्यपि ॥१४४९॥
धमोन्मादय भक्षापि छेदयेत्यन्तिमक्रिया ।
अस्य षट्त्रिंशकस्यैव द्विवारोच्चारणं स्मृतम् ॥१४५०॥

तत उच्चारयेत् तावत् सर्वभूतवशंकरि ।
ततः सर्वजनेत्युक्त्वा मनोहारिणि कीर्तयेत् ॥१४५१॥
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य कर्यतो भगवत्यपि ।
द्विर्द्विर्ज्वल प्रज्वल च शिवारूपधरे तथा ॥१४५२॥
काली तथा च कापाली महाकापाल्यपि त्रयम् ।
सम्बोधनं तथा वाच्यं ततो दण्डादिपञ्चकम् ॥१४५३॥
सराकामेस[ष]माभाष्य प्रासादत्रयमीरयेत् ।
राज्यं मे समनूद्धृत्य दद देहि युगं युगम् ॥१४५४॥
किलि युग्माच्च चामुण्डे यमघण्टे हिलेर्युगात् ।
मम सर्वाभीष्टमिति पदतः साधय द्वयम् ॥१४५५॥
संहारिणी च सम्मोहिनी संबुद्ध्या पदद्वयम् ।
कुरुकुल्ले किरियुगं महाचण्डे तुरुद्वयम् ॥१४५६॥
महामाये स्फुरद्वन्द्वं प्रस्फुरद्वितयं ततः ।
जय जीव युगं युग्मं विश्वं पाहि द्वयं ततः ॥१४५७॥
गुह्यकालि प्रसीद द्विः कूर्चत्रितयमेव च ।
अस्त्रत्रयं नमः शीर्षमेष मन्त्रो मयोदितः ॥१४५८॥
त्रिरुच्चार्य सकृद्वापि सर्वं वस्तु समुत्सृजेत् ।
स्थानात् तस्मादपसरेत किञ्चिद्दूरतरं प्रिये ॥१४५९॥
शिवा यथा वीतभया आगच्छन्त्यन्नसन्निधौ ।
तत्र स्थित्वा निरीक्षेत किं किं ता भक्षयन्ति हि ॥१४६०॥
सर्वा आगत्य चेत् सर्वं प्रदत्तं भक्षयन्ति हि ।
विनिर्दिशेत् सर्वसिद्धिं राज्यलाभं धनागमम् ॥१४६१॥
यद्यत्ता भक्षयन्त्यन्नं तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यद्यच्च नैव खादन्ति तत्तन्नैव फलं लभेत् ॥१४६२॥
शिवाबलिविधाने तु विशेषोऽस्योपवर्णितः ।
तेन नात्र ब्रुवे देवि ग्रन्थाधिक्यभयादपि ॥१४६३॥

कुमारीरूपमास्थाय यथा याति महेश्वरी ।
शिवारूपं तथा कृत्वा स्वयमायाति कालिका ॥१४६४॥
अतो भक्तिः प्रकर्तव्या तासु यत्नेन साधकैः ।
शिवासु भक्षयन्तीषु सर्वेभ्यो बलिमाहरेत् ॥१४६५॥
संहारभैरवायादौ वटुकेभ्यस्ततः परम् ।
विनायकेभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रपालेभ्य एव च ॥१४६६॥
योगिनीभ्यो डाकिनीभ्यः शिवदूतीभ्य एव च ।
पुरोक्तो मन्त्र आसां हि तेन तेन बलिं हरेत् ॥१४६७॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्द्धे तु मध्यमा सिद्धिरभक्ष्ये तु विपद् भवेत् ॥१४६८॥
शिवाबलिविधानेन शारद्यर्चा महाफला ।

[शिवाबलिमाहात्म्यम्]

फलावाप्तिर्भूयसी च जायते परमेश्वरि ॥१४६९॥
विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरञ्जीवी निरामयः ।
धार्मिको विजयी दक्षो यशस्वी भूपसन्निभः ॥१४७०॥
ज्ञातिश्रेष्ठः पुत्रवांश्च सर्वयोषित्प्रियः सुखी ।
रूपवान् धनवान् धीरो विक्रान्तो विश्वपूजितः ॥१४७१॥
कुलीनः सर्वविच्चैव भवत्यत्र न संशयः ।
सौन्दर्यबलविक्रान्तिविद्यायुर्धनधीरताः ॥१४७२॥
प्रतापकान्तिप्रभुत्वशीलौदार्यदयादयः ।
अणिमाद्याः सिद्धयश्च दासा इव भजन्ति तम् ॥१४७३॥
यत्किञ्चिदस्ति देवेशि समस्ते जगतीतले ।
करामलकवत्सर्वं भवन्त्यस्य न संशयः ॥१४७४॥
शिवाबलेस्तु महिमा मया वक्तुं न शक्यते ।
न चापि फलबाहुल्यं सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥१४७५॥
अव्याहतगतित्वं च सर्वाकर्षणमोहनम् ।
सर्वं साधयति क्षिप्रं शिवाबलिविधानतः ॥१४७६॥

आरोग्यं मनसः सौख्यं विजयोऽबाधता तथा ।
अविघ्नता दुःखनाशः पुत्रलाभः सुखोन्नतिः ॥१४७७॥
सर्वकल्याणवाञ्छाप्तिः भयनाशो महोदयः ।
नानाविपद्विनाशश्च जायते हि शिवाबलेः ॥१४७८॥
बलिदानस्य माहात्म्यं कथयिष्ये कियत्तव ।
निशामयातः प्रकृतं फलस्यान्तो न विद्यते ॥१४७९॥
खादित्वोत्थाय तिष्ठत्सु शिवावृन्देषु तत्र हि ।
दण्डवत् प्रणमेत् सर्वाः स्वेष्टदेवीधियामुया ॥१४८०॥
पुष्पाञ्जलिं समादाय गन्धचन्दनचर्चितम् ।
उत्थाय मुक्तचिकुरो मीलिताक्षो दिगम्बरः ॥१४८१॥
भक्तिशाली वीतभयः किञ्चित् प्रणतकन्धरः ।
स्तुतिं कुर्यात् स्तवैरेतैर्वरप्रार्थनपूर्वकम् ॥१४८२॥

[शिवास्तुतिः]

शिवारूपधरे देवि गुह्यकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे शृगालिनि ॥१४८३॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिण्यनघे शिवे जम्बूकरूपिणि ॥१४८४॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि महाकालि नमोऽस्तु ते ॥१४८५॥
सर्वसिद्धिप्रदे भीमे भयङ्करि भयापहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि मम भक्तस्य चण्डिके ॥१४८६॥
संसारतारणतरे जय सर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥१४८७॥
संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छसि ।
दुर्गे किराति शबरि प्रेतासनगतेऽभये ॥१४८८॥

अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ।
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुःसुतान् स्त्रियम् ।।१४८९।।
शिवाबलिविधानेन त्वं प्रसन्ना भवेश्वरि ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ।।१४९०।।
इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत् ।
ततस्तच्छेषमन्नं यद्भाजनं वान्यदेव वा ।।१४९१।।

[शिवाबलिसमापनकृत्यम्]

सर्वं हि निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ।
यदि काकाः खराः श्वानो ये चान्ये पापजातयः ।।१४९२।।
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नः प्रजायते ।
रात्रावेव समागच्छेन्निर्भयो विपिनान्तरात् ।।१४९३।।
आगत्य गन्धपुष्पाद्यैः पुनर्देवीं प्रपूजयेत् ।

[सन्धिपूजाविधिः]

अष्टमीनवमीसन्धौ कुर्वते केचिदर्चनम् ।।१४९४।।
तत् सन्धिपूजनमिति पुराणादिषु कीर्तितम् ।
नवम्यामर्द्धरात्रे वा तत्परेणापि पूजनम् ।।१४९५।।
तान्त्रिकाः केचिदिच्छन्ति सिद्धि तूभयथार्चनम् ।
चामुण्डारूपधारिण्यास्तत्र देव्यास्तु पूजनम् ।।१४९६।।
विहितं वान्यरूपिण्याः कृत इत्येष निश्चयः ।
तन्मन्त्रं ध्यानमस्याश्च समाकलय साम्प्रतम् ।।१४९७।।

[चामुण्डापूजामन्त्रः]

प्रणवश्चाङ्कुशः कालीशाकिनीचण्डयोगिनीः ।
खेचरी क्रोधफ्रेत्कारी विद्युत्कालरतित्रपाः ।।१४९८।।
भुजङ्गमहाक्रोधसौपर्णान् षोडशोद्धरेत् ।
चामुण्डे इति संकीर्त्य ज्वल युग्मं हिलेः किलेः ।।१४९९।।

मम शत्रूनिति प्रोच्य युगं त्रासय मारय ।
हनयुग्मं पच युगं भक्षय द्वितयं तथा ॥१५००॥
कालीत्रपारुषां युग्मं द्विरस्त्रं पावकाङ्गना ।
एकसप्तत्यक्षरोऽसौ मन्त्रः परमशोभनः ॥१५०१॥
राथीतरऋषिश्चास्य जगतीच्छन्द एव ।
चामुण्डा देवता प्रोक्ता कूर्चं बीजमुदाहृतम् ॥१५०२॥
फेत्कारी शक्तिरुद्दिष्टा गरुडः कीलकं मतम् ।
समस्तशत्रुक्षयाय विनियोगः प्रकीर्तितः ॥१५०३॥
चामुण्डाख्येन बीजेन षड्दीर्घान्वितवर्ष्मणा ।
षडङ्गद्वयमुद्धृत्य गायत्र्याभ्यर्चनं चरेत् ॥१५०४॥
घोररावा मुण्डमालिन्येतत् पदयुगं ततः ।
चामुण्डा सर्वशेषे स्यादन्यत्सर्वं पुरोक्तवत् ॥१५०५॥
अथ ध्यानं ब्रुवे देवि येनार्चा सिद्धिमृच्छति ।

[चामुण्डाध्यानम्]

धरालग्नशिरोजानुप्रसुप्तकुणपोपरि ॥१५०६॥
निषेदुषीं निःपललसर्वावयवभीषणाम् ।
त्वगस्थिमात्रघटितामत्युग्राकारदर्शनाम् ॥१५०७॥
शिवाकारपिशङ्गाभजटाभारविराजिताम् ।
स्कन्धावसक्तसंशुष्कनृकरोटचवतंसकाम् ॥१५०८॥
नरास्थिनिर्मितानेकभूषणां भीषणाकृतिम् ।
मुण्डमालापरिक्षिप्तां ललज्जिह्वास्यचालिनीम् ॥१५०९॥
विकरालमहादंष्ट्रां रौद्रीं रुद्रपरिग्रह [हा?]म् ।
अतिशुष्कोदरश्रोणिनितम्बोरुपयोधराम् ॥१५१०॥
गणेयोभयपार्श्वस्थपञ्जरास्थिकरालिनीम् ।
दीर्घतालद्रुमाकारकरपादां हन्समुखीम् ॥१५११॥

खर्जूरकण्टकाकाररोमराजिविराजिताम् ।
लौहसूर्पाकृतिनखां समुत्कम्पिशिरोरुहाम् ॥१५१२॥
कूपाकारत्रिनयनां विद्युच्चपलतारकाम् ।
लम्बमानौष्ठाधरां तां नाभिलग्नपयोधराम् ॥१५१३॥
विदीर्णसृक्कयुगलां नारान्त्रकटिसूत्रिणीम् ।
दिगम्बरां चर्वयन्तीं शवं कटकटारवैः ॥१५१४
अष्टादशभुजां भीमां चरन्तीं पितृकानने ।
वामे करे चर्मचापखट्वाङ्गडमरून् क्रमात् ॥१५१५॥
अङ्कुशं च तथा पाशं भिन्दिपालं शवं तथा ।
रक्तपूर्णकपालं च धारयन्तीं महोदरीम् ॥१५१६॥
दक्षिणे बिभ्रतीं खड्गं विशिखं च त्रिशूलकम् ।
चक्रं शक्तिं गदां पर्शुमस्थिमालां च कर्तृकाम् ॥१५१७॥
दिवा कालाभ्रसदृशीं जवापुष्पारुणां निशि ।
बलाकासमदन्तालीं भुजङ्गकुटिलभ्रुवम् ॥१५१८॥
अतिभीमाकृतिधरां दृष्टयैव मरणप्रदाम् ।
घोराट्टहासां गगने प्लवन्तीं सर्वतोमुखम् ॥१५१९॥
चिन्तयेदीदृशाकारां चामुण्डां मुण्डमालिनीम् ।
एवं ध्यात्वा च सम्पूज्य विविधोपायनादिभिः ॥१५२०॥

[पञ्चाशत्कालीबलिविधिः]

शक्तौ तु मार्तिकाः स्थालीः पूरयेदनु तेमनैः ।
पक्वाममांसमाषैश्च रुधिरैर्देयपक्षिणाम् ॥१५२१॥
ताश्च सम्पूजयेद् गन्धै रक्तपुष्पाक्षतैरपि ।
उपरिष्टाद् धूपदीपैरपि माल्येन संयुताः ॥१५२२॥
पञ्चाशत् संख्यकाः कृत्वा देव्यग्रे पंक्तिशः प्रिये ।
पञ्चाशत् संख्यकाभ्यश्च कालीभ्यो बलिमाहरेत् ॥१५२३॥

नाम्ना तु तत्तत्कालीनां ङेऽन्तेन त्रिदशेश्वरि ।
मृत्युञ्जयप्राणगतैरखिलैर्मनुभिश्च वा ॥१५२४॥
बलिं समुत्सृजेत् तेन महतीं श्रियमश्नुते ।

[शक्तिपूजोपदेशः]

शक्तिपूजामतः पश्चात् केचित् कुर्वन्ति कौलिकाः ॥१५२५॥
तद्विधानं पुरैवोक्तं तेनैवैतां समापयेत् ।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य पतित्वा दण्डवद् भुवि ॥१५२६॥
भक्तिनम्रः स्तुतिं जल्पेत् काकुगद्गदया गिरा ।

[दण्डप्रणामपरिचयः]

अलिकं नासिका बाहू वक्षो जठरमेव ॥१५२७॥
पादौ क्ष्मां स्पृशतो दण्डप्रणामः स हि गद्यते ।

[देवीस्तुतिः]

आयुर्देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ॥१५२८॥
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ।
प्रचण्डे पुत्रदे नित्यं सुप्रीते सुरनायिके ॥१५२९॥
कुलोद्द्योतकरे चोग्रे जयं देहि नमोऽस्तु ते ।
उग्रचण्डे प्रचण्डासि प्रचण्डबलनाशिनि ॥१५३०॥
रक्ष मां सर्वदा देवि विश्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ।
दुर्गोत्तारिणि दुर्गे त्वं सर्वाशुभनिसूदिनि ॥१५३१॥
धर्मार्थमोक्षदे देवि नित्यं मे वरदा भव ।
दुर्गे देवि महाभागे त्राहि मां शरणागतम् ॥१५३२॥
महिषासृङ्मदोन्मत्ते प्रणतोऽस्मि प्रसीद मे ।
हर पापं हर क्लेशं हर शोकं हराशुभम् ॥१५३३॥
हर रोगं हर क्षोभं हर मारं हर प्रिये ।
कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि ॥१५३४॥

धर्मकामप्रदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।
सङ्ग्रामे विजयं देहि धनं देहि सदा गृहे ॥१५३५॥
धर्मकामार्थसंपत्तीर्देहि देवि नमोऽस्तु ते ।
महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥१५३६॥
आयुरारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ।
आयुर्ददातु मे कालो पुत्रानपि सदा शिवा ॥१५३७॥
अर्थकामौ महामाया विभवं सर्वमङ्गला ।
शिरो मे चण्डिका पातु कण्ठं पातु महेश्वरी ॥१५३८॥
हृदयं पातु चामुण्डा सर्वतः पातु कालिका ।
ब्रह्माणी चैव कौमारी वाराही वैष्णवी तथा ॥१५३९॥
माहेश्वरी नारसिंही इन्द्राणी शिवदूत्यपि ।
महाकाली च चामुण्डा भैरवी कौशिकी तथा ॥१५४०॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव अतिचण्डा च चण्डिका ॥१५४१॥
एताश्चान्याश्च रुद्राणि यास्ते तिष्ठन्ति शक्तयः ।
ताभिः सहैव मां रक्ष सङ्ग्रामे सङ्कटे तथा ॥१५४२॥
नानापुराणवाक्येन नानादेवर्षिभाषितैः ।
सदा शिवाज्ञया चापि त्वमेव शरणं मम ॥१५४३॥
त्वां विहायेतरां नैव संश्रये देवतां शिवे ।
अतः परं यदुचितं तत्कर्तुं मातरर्हसि ॥१५४४॥
आन्ध्यं कुष्ठं च दारिद्र्यं रोगं शोकं च दारुणम् ।
बन्धुस्वजनवैराग्यं दुर्गे त्वं हर दुर्गतिम् ॥१५४५॥
राज्यं तस्य प्रतिष्ठा च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा ।
प्रभुत्वं तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ॥१५४६॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितं मम ।
आगतासि यतो दुर्गे माहेश्वरि ममालयम् ॥१५४७॥

अर्घ्यं पुष्पं च नैवेद्यं धूपं दीपं बलिं तथा ।
गृहाण वरदे देवि कल्याणं कुरु मे सदा ।।१५४८।।
कृत्वैवं विधिना दण्डप्रणामं स्तुतिपूर्वकम् ।

[देवीविसर्जनम्]

पूजां समर्पयेद् देव्यै गृहीत्वा पाणिना जलम् ।।१५४९।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि ।
यदर्चितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ।।१५५०।।
ग्रहीतुं शारदीं पूजां मर्त्यमण्डलमागताम् ।
चण्डिके त्वां नमाम्यद्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।।१५५१।।
कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चरसि भूतानां ज्ञात्री त्वं सर्वसाक्षिणी ।।१५५२।।
एतावत् कृत्यमुदितं शारदीयार्चनक्रमे ।
प्रातरारभ्य देवेशि रात्रेर्यामत्रयावधि ।।१५५३।।
शिवाबलिं कुमार्यर्चां प्रभूतं बलिमेव च ।
हित्वादस्त्रयमष्टम्यामयमेव विधिः प्रिये ।।१५५४।।
ततः प्रसादं देव्या यदवशिष्टं भवेदनु ।
गन्धं पुष्पं च नैवेद्यं सिद्धं चासिद्धमेव च ।।१५५५।।
बन्धुभिः सह भुञ्जीत हास्यकौतुकपूर्वकम् ।
गीतनृत्त्यादिकं पश्चाद् देव्यग्रे विनियोजयेत् ।।१५५६।।
क्रीडां च ज्ञातिभिः सार्द्धं विदधीत विचक्षणः ।
ततो दशम्यां निर्वाह्य स्नातो नित्यक्रियां निजाम् ।।१५५७।।
यावच्छक्त्युपचारैस्तु पूजयन्नयासमुज्जहत् ।
कृताञ्जलिः पठेत् पश्चात् विसर्जनमनूनिमान् ।।१५५८।।

[विसर्जनमन्त्रः]

विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मदर्चितम् ।
पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।१५५९।।

शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुरा।
अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥१५६०॥
न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणान्।
एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः ॥१५६१॥
तां भक्तिं हृदि सम्भाव्य शारद्यर्चां प्रगृह्य च।
गच्छ देवि निजं स्थानं मह्यं दत्वा वरान् बहून् ॥१५६२॥
एतान् मन्त्रान् समुच्चार्य चरलग्ने चरांशके।
प्रतिमां पत्रिकां वापि चालयेत् पूजकः शनैः ॥१५६३॥
निर्माल्येन ततो देव्याः पूजयेत् कलशोपरि।
निर्माल्यवासिनीं देवीं ङेऽन्तेनादःपदेन हि ॥१५६४॥
प्रदर्श्य योनिमुद्रां च ऐशान्यां दिशि निक्षिपेत्।
निर्माल्यं भगवत्यास्तच्चण्डेश्वर्यै नमो वदेत् ॥१५६५॥

[मृण्मय्याः प्रतिमायाः जले विसर्जनम्]

मृण्मूर्तिं पत्रिकां वापि जलेऽगाधे विनिःक्षिपेत्।
स्रोतस्यथो मज्जयित्वा नदीवेगेन हारयेत् ॥१५६६॥
पीठमूर्ती स्वकस्थाने चालयित्वा निवेशयेत्।
चालने यन्मनुद्वन्द्वं तदिदानीं निशामय ॥१५६७॥
उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य मे।
कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः सह शक्तिभिः ॥१५६८॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥१५६९॥
गम्यतामर्थलाभाय क्षेमाय विजयाय च।
शत्रोर्दर्पविनाशाय पुनरागमनाय च ॥१५७०॥
व्रज त्वं स्रोतसि जले मद्गेहे तिष्ठ भूतये।
आगामिवत्सरे च त्वं पुनरायास्यसि ध्रुवम् ॥१५७१॥

इति देवीं चालयित्वा मनुना कथयिष्यता ।
महावाद्यरवं कुर्यात् नभोदिक्पूरि सर्वतः ।।१५७२।।
तारत्रपारुषश्चैव शाकिनी डाकिनी तथा ।
चामुण्डे चल युग्मं च चालय द्वितयं तथा ।।१५७३।।
कूर्चास्त्रानलकान्ताभिर्मनुभिश्चालनकर्मणि ।
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।।१५७४।।
ढक्काभेरीझर्झरैश्च पणवानकगोमुखैः ।
तालवादित्रवीणाभिरातोद्यैर्डिण्डिमैरपि ।।१५७५।।
मुरजैर्वेणुभिर्हिक्कैस्तालमानलयान्वितैः ।
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।।१५७६।।
वेशयुग्वेशनिचयैर्विविधैः शबरोत्सवैः ।
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ।।१५७७।।
भगलिङ्गक्रियाशब्दैर्वेशचेष्टाभिरुक्तिभिः ।
विसर्जनस्यावसरे क्रीडितव्यं निजेच्छया ।।१५७८।।
कार्यं जरद्भिरप्येतद् देवीसन्तोषहेतवे ।
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ।।१५७९।।
तस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात् सुदारुणम् ।
एतत् प्रासङ्गिकीं देव्या उक्तिं समवधारय ।।१५८०।।
ममानन्दे सदानन्दः सदानन्दो भविष्यति ।
ममानन्दे निरानन्दो निरानन्दो भविष्यति ।।१५८१।।
यथा यथा ममानन्दे भवत्युन्मत्तवज्जनः ।
तथा तथाऽहं तुष्यामि तत्कृतार्चासु वल्लभः ।।१५८२।।
ख्यातं मम भगं चिह्नं लिङ्गं चिह्नं तव प्रभो ।
लिङ्गाङ्कत्वाद् भगाङ्कत्वादियं माहेश्वरी प्रजा ।।१५८३।।
त्वां मां विहाय नैवान्यत् किञ्चित्त्रिभुवनोदरे ।
तस्मात् मत्पूजनस्यान्ते त्वन्मच्चिह्नोक्तिभिर्जनः ।।१५८४।।

यः क्रीडति महाभाग स मे मनसि तिष्ठति ।
अकुर्वाणोऽपि सुरतं भगं भगमिति ब्रुवन् ॥१५८५॥
लिङ्गं लिङ्गमिति प्रोच्य मां तोषयति तत्क्षणात् ।
रेतः सिक्तं भवेद् यादृक् तादृक् तत्र प्रजायते ॥१५८६॥
भगं त्रिजगतां स्रष्टृ को विनिन्दितुमर्हति ।
इत्यादिवचनैर्देव्या यथेप्टं विहरेज्जनः ॥१५८७॥
उपस्थयोनिजभनशब्दैस्तत्तत्क्रियान्वितैः ।
ततो नीत्वोदकाभ्यासं स्वयमम्भः प्रविश्य च ॥१५८८॥
पत्रिकां मृण्मयीं मूर्तिं तदन्तः स्थापयेच्छनैः ।
निमज्याम्भसि सम्पूज्य पत्रिकावर्जिता जले ॥१५८९॥
मया, देवि वरान् दत्वा ततो गच्छ निजालयम् ।
इत्यनेन तु मन्त्रेण देवीं संस्थापयेज्जले ॥१५९०॥
पीठमूर्त्योरिदं कर्म न कार्यं त्रिदशेश्वरि ।
ततः सर्वैर्जनैः सार्द्धं जलक्रीडां समाचरेत् ॥१५९१॥
निमज्जनोन्मज्जनैश्च तथा पिञ्जुलिताम्बुभिः ।
अन्यैर्जलविहारैश्च क्षणं कौतुकमाचरेत् ॥१५९२॥
प्रदद्याद् दक्षिणां पूजाकारयित्रे स्वशक्तितः ।
हिरण्यं रजतं धेनुर्भूमिर्वासांसि मन्दिरम् ॥१५९३॥
यावच्छक्यं च यच्छक्यं दातव्या दक्षिणा ततः ।
यानि देव्यै प्रदत्तानि महोपकरणानि च ॥१५९४॥
विभज्य तानि सर्वेभ्यो दातव्यानीति निश्चयः ।
एवमुक्तप्रकारेण कृत्वा शारदपूजनम् ॥१५९५॥
यदाप्नोति फलं देवि तदिदानीं निशामय ।
सप्तलोकोपरि शिवे वैकुण्ठो लोक उच्यते ॥१५९६॥
तदूर्ध्वं शिवलोको हि गोलोकस्तदनन्तरम् ।
तस्योपरि प्रियतमे देवीलोको विराजते ॥१५९७॥

योजनानां कोटिशतं विस्तीर्णस्तावदायतः ।
विभवो वा गुणा यस्य मम वाचामगोचराः ॥१५६८॥
कल्पकोटिशतं साग्रं तत्रायं वसति प्रिये ।
अव्याहतगतिर्भूत्वा षडानन इवापरः ॥१५६९॥
त्रिलोकीं विचरत्येष द्वितीयो द्विरदाननः ।
यदीहावतरत्येष कदाचित् कालपर्ययात् ॥१६००॥
शतसम्बत्सरायुः स्यात् समस्तपृथिवीपतिः ।
तेजसा सूर्यसदृशः कान्त्या चन्द्रमसा समः ॥१६०१॥
कुबेरसन्निभो वित्ते क्षमायां क्षमया समः ।
स्थैर्ये सुमेरुणा तुल्यो गाम्भीर्ये सागरोपमः ॥१६०२॥
विद्यया वाक्पतिसमः सौन्दर्ये मन्मथोपमः ।
प्रियम्बदो विनीतश्च दाताऽमितपराक्रमः ॥१६०३॥
किं बहूक्तेन देवेशि यावन्तो हि गुणाः स्मृताः ।
तमेकं संश्रयन्ते हि समुद्रं सरितो यथा ॥१६०४॥
प्रत्येकमस्या बाहुल्यं वर्तते फलसम्भवे ।
न विस्तरभयाद् वच्मि डामरेषु तदीरितम् ॥१६०५॥
न तादृशं फलं किञ्चिद्यन्न स्याच्छारदार्चनात् ।

[नीराजनविधिः]

अथ नीराजनं राजाऽपराह्णे विदधीत वै ॥१६०६॥
विचित्रवेशवसनः सह स्वजनबान्धवैः ।
चूडामणिपरिस्फूर्जत्किरीटः कुण्डलोज्ज्वलः ॥१६०७॥
लसत्प्रालम्बिको मुक्तामाली कटकमण्डितः ।
केयूरी शृङ्खली तद्वदङ्गुलीयकभूषितः ॥१६०८॥
उष्णीषी बद्धनिस्त्रिंशश्चर्चितो मलयद्रवैः ।
चन्द्रकुङ्कुमकस्तूरीविलेपनसुवासितः ॥१६०९॥
नानाविषयजानश्वान् भूषाभिः परिबृंहयेत् ।
गान्धारजातांस्तुरगान् पारसीकोद्भवानपि ॥१६१०॥

काम्बोजजानायुभवान् बाह्लीकमणिमन्थजान् ।
युक्तांस्तदीयभूषाभिः कुथाभिरुपशोभितान् ॥१६११॥
एवमेव गजेन्द्रांश्च कुथघण्टाङ्कुशोज्वलान् ।
कलिङ्गजङ्गलभवांश्चेदितेलङ्गसम्भवान् ॥१६१२॥
एवं रथानपि व्यूहेत्तदुपस्करसंयुतान् ।
पादातींश्च भटांश्चापि नानाप्रहरणान्वितान् ॥१६१३॥
कोदण्डशरनिस्त्रिंशशूलपट्टिशतोमरान् ।
गदापरिघचक्रर्ष्टिभुशुण्डीप्रासकौरजान् ॥१६१४॥
भिन्दिपालहुलाशक्तिपर्शुकुन्ताहिमुद्गरान् ।
खट्वाङ्गवज्रमुसलपाशायोगुडकर्त्तरीः ॥१६१५॥
शतघ्नीशल्यकुद्दालक्रकचछुरिकास्तथा ।
एतान्यन्यानि चास्त्राणि दधतः स्फुरितौजसः ॥१६१६॥
चतुरङ्गं बलं चेत्थं कृत्वाग्रेसरमीश्वरः ।
नानाविधैर्वाहनैश्च पा[पौ]रजानपदानपि ॥१६१७॥
वादित्राणि च सर्वाणि वादयित्वा विशेषतः ।
महाकोलाहलं कृत्वा समराभिप्रयाणवत् ॥१६१८॥
जय जीवेति निनदैः स्तूयमानो महीपतिः ।
विनिर्गच्छेत् पुरात् स्वीयादनुकूलां दिशं प्रति ॥१६१९॥
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा ताम्बूलं चर्वयेन् मुहुः ।
नटान् मल्लान् बन्दिनश्च शिल्पिनो गणिकास्तथा ॥१६२०॥
दैवज्ञान् वणिजो दूतानन्यान्वैदेशिकानपि ।
विलोकयन् हृष्टमना एतेभ्यः पारितोषिकम् ॥१६२१॥
ददद्ुत्साहसंयुक्तो विजिगीषुरिव व्रजेत् ।
एतन्नीराजनं रामघटनाया बलास्त्रयोः ॥१६२२॥
एतत् कृत्वा महीपालो भूषितस्तेन चान्वितः ।

[खञ्जनादिदर्शनविधिः]

खञ्जनं सारसं चाषं प्रयत्नेन विलोकयेत् ॥१६२३॥

अनूपकच्छगोष्ठागगोविडम्बुरुहादिषु ।
स्थितोरुवन् विधुन्वानः पक्षती खञ्जनः शुभः ॥१६२४॥
मङ्गल्यं खञ्जनं दृष्ट्वा मेध्यस्थाने मनोरमे ।
शुभं स्यादशुभं ज्ञेयं विपरीते न संशयः ॥१६२५॥
वृक्षेषु गोषु मृगवाजिमहोरगेषु
राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु ।
भस्मास्थिकाष्ठतुष लोमतृणेषु दृष्टो
ऽरिष्टं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः ॥१६२६॥
तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्
यस्मिन् पुनर्वसति तत्र दिशन्ति कां च ।
अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरीषणे च
तत्कौतुकाय च शुभाय च खञ्जरीटः ॥१६२७॥
दृष्ट्वा तु खञ्जनं राजा प्रणमेद् विहिताञ्जलिः ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्यं श्लोकरूपं वरानने ॥१६२८॥
खञ्जनः खञ्जरीटश्च शङ्खमौलिः शुभप्रदः ।
महापद्मो नीलगलश्चपलाङ्गो हरिर्द्विजः ॥१६२९॥
यः खञ्जरीटं प्रणमेदेभिर्नामभिरष्टभिः ।
जायते मंगलं तस्य ततो गेहे यतः पथि ॥१६३०॥
नारायणशरीरोत्थ संवत्सरशुभप्रद ।
शालग्रामशिलाकण्ठ खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥१६३१॥
वासुदेवस्वरूपेण सर्वकामफलप्रद ।
पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते ॥१६३२॥
त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्व-
मदृश्यतामेषि रुषोद्गमेन ।
त्वं दृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां
त्वं खञ्जनाश्चर्यमयो नमस्ते ॥१६३३॥

अशुभं खञ्जनं दृष्ट्वा देवब्राह्मणपूजनम् ।
शान्तिं कुर्वीत कुर्याच्च स्नानं सर्वौषधीजलैः ॥१६३४॥
अयं खगस्तु विज्ञेयो विष्णुरूपी महेश्वरि ।
संसूचयति वर्षोत्थं मङ्गलामङ्गलद्वयम् ॥१६३५॥

[सारसदर्शनफलम्]

देवीरूपस्तु विज्ञेयः सारसः पक्षिराडपि ।
तं दृष्ट्वा तोयतर्वद्रिसदूर्वोर्वीतलेषु हि ॥१६३६॥
प्रणमेच्छुभदं केशशवास्थिगमभद्रदम् ।
तथा कुर्वाण आहारं चञ्च्वा कण्डूं तनावपि ॥१६३७॥
तिष्ठन् कुलाये शावाय दद्द्वा भोजनं शुभः

[सारसस्य प्रणतिमन्त्रः]

सारसः सरसीवासः पुष्करः पुष्करालयः ॥१६३८॥
विघ्नापहर्ता पक्षीन्द्रो देवीरूपो महाबलः ।
विघ्नं नाशय पक्षीन्द्र शुभं देहि महाबल ॥१६३९॥
पुष्कराब्दफलं ब्रूहि जहि शत्रून् महाबल ।
पठित्वेदं पद्ययुगं प्रणमेत् सारसं बुधः ॥१६४०॥
विपरीते तथैतस्य पूर्ववच्छान्तिकं चरेत् ।

[चाषदर्शनफलम्]

अथ चाषं निरीक्ष्यापि महारुद्रस्वरूपिणम् ॥१६४१॥
पूर्वोदितेषु स्थानेषु प्रणमेन्मङ्गलप्रदम् ।
अन्यत्राशुभदातारं विहगं शिवरूपिणम् ॥१६४२॥

[चाषस्य प्रणतिमन्त्रः]

अशोकश्च विशोकश्च नन्दीशः पुष्टिवर्द्धनः ।
ताम्रचूडो मणिग्रीवः स्वस्तिकश्चापराजितः ॥१६४३॥
अष्टावेतानि नामानि चाषं दृष्ट्वा तु यः पठेत् ।
अग्रतो धनलाभाय पार्श्वतो विजयाय च ॥१६४४॥
पृष्ठतः क्षेमवित्ताभ्यां दिव्यचाष नमोऽस्तु ते ।
अशोकाय नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टप्रदाय च ॥१६४५॥

नीलकण्ठाय भद्राय भद्ररूपाय ते नमः ।
भद्रस्त्वं देहि मे भद्रमाशां पूरय पूरक ॥१६४६॥
स्वस्तिकोऽसि कुरु स्वस्ति त्वं मां नन्दीश नन्दय ।
अशोक कुर्वशोकं मां पुष्य त्वं पुष्टिवर्द्धन ॥१६४७॥

[शमीवृक्षप्रदक्षिणम्]

एवं चाषं नमस्कृत्य गृहीत्वा पीतमृत्तिकाम् ।
प्रदक्षिणीकृत्य तथा शमीवृक्षं महीपतिः ॥१६४८॥

[विविधकर्तव्यविधिः]

नियुद्धं प्रेक्ष्य भल्लानां भटानां शस्त्रलाघवम् ।
भरतानां प्रेक्षणं च धावनं गजवाजिनाम् ॥१६४९॥
अस्तं गते दिनमणौ दीपिकाशतसंवृतः ।
प्रविशेन्नगरं राजा कोलाहलपुरस्सरम् ॥१६५०॥
अनेन विधिना यस्तु कुरुते शारदं महम् ।
तस्य देवी सदा तुष्टा सदनं नैव मुञ्चति ॥१६५१॥
फलं यच्छारदार्चाया वक्तुं तत् केन शक्यते ।
उपरागे तु कर्तव्या पूजा नैमित्तिके यथा ॥१६५२॥
नैव तस्मिन् पशुबलिर्दानं विहितमीश्वरि ।
न पात्रस्वीकृतिर्मध्ये न शक्तिपरिपूजनम् ॥१६५३॥
न च न्यासादिबाहुल्यं नावृत्त्यर्चनभूरिता ।
कालेन तावता पूजा यावत्येव समाप्यते ॥१६५४॥
तावत्येव विधेयात्र नाधिका वै कदाचन ।
ग्रहमुक्तावपि कृता नैमित्तिक्युच्यते नहि ॥१६५५॥
निमित्तं राहुसंयोगस्तस्मिन् वृत्ते कथञ्चन ।
तदवच्छिन्नकालेन प्रोक्ता पूजौपरागिकी ॥१६५६॥
स्मार्तानां नाधिकारोऽस्ति पूजायां श्राद्धमन्तरा ।
ग्रहे तु तदकुर्वाणो निरये परिपच्यते ॥१६५७॥
इत्युक्ते पूजने देवि शारदीयौपरागिके ।
ईदृश्येव हि वासन्ती पूजा कार्या मधौ सिते ॥१६५८॥

इति श्रीमदादिनाथविरचितायां महाकालसंहितायां पञ्चशत—साहस्र्यां शारदीपूजाविधानं नाम त्रयोदशतमः पटलः ।

चतुर्दशतमः पटलः ।

[दमनारोपणपवित्रारोहणविध्योरवतरणम्]

एवं ते कथितौ देवि शारदीयौपरागिकौ ।
पूजाविधी विशेषेण श्रौततान्त्रिकरूपिणौ ॥१॥
नित्यनैमित्तिकी पूजा काम्या वेमेथवा पुनः ।
सर्वा निष्फलतां यान्ति यद्येनां न समाचरेत् ॥२॥
दमनारोपणाख्यैका पवित्रारोपणी परा ।
प्रतिसंवत्सरं चैते यो न कुर्वीत साधकः ॥३॥
तस्य वर्षकृता पूजा व्यर्था भवति भामिनि ।
कृतामपि विलुम्पन्ति भूतप्रेतादयो गणाः ॥४॥
प्रतिसंवत्सरं तस्मात् कुर्याद् यत्नेन साधकः ।
दमनारोपणं कर्म पवित्रारोहणं तथा ॥५॥
पुरा पुरारिणा सद्यः कामे भस्मीकृते प्रिये ।
जाते विवाहे पार्वत्या निवृत्ते कौतुके तथा ॥६॥
स्वस्वस्थानं प्रयातेषु सर्वेषु त्रिदशेष्वथ ।
हिमालयकृतावासं नवोद्वाहमुदन्वितम् ॥७॥
महानुरागिणं मत्वात्मनि देवी हिमाद्रिजा ।
रहसि प्राह गिरिशं मदनाविष्टचेतसम् ॥८॥

पार्वत्युवाच

एकं विज्ञप्तुमिच्छामि प्राणनाथ महेश्वर ।
आस्थाय परमं योगं योगीन्द्रेण त्वया प्रभो ॥९॥
आवां बुभुक्षुर्मदनो दग्धो नयनवह्निना ।
किमर्थं परिणीताहमथ भोगं समुज्झता ॥१०॥
आवयोः किं सुखं तस्मिन् मृते रतिविवर्द्धने ।
यद्यसि त्वं मया सार्धं चिकीर्षुः केलिमुत्तमाम् ॥११॥

२—युयुक्षुः ङ।

सञ्जीवय तदा कामं प्रीतये मम धूर्जटे ।
श्रुत्वेत्थं गिरिजावाक्यं रतिलीलासुखावहम् ॥१२॥
स्मितं विधाय प्रोवाच मानयन् प्रेयसीं भवः ।
श्रीभगवान् उवाच
ईदृशी यदि ते श्रद्धा कामसञ्जीवने प्रिये ॥१३॥
न दास्यसि रतिं चापि तं विना चेद् गिरीन्द्रजे ।
एष सञ्जीवयास्येनं प्रीतये तव पार्वति ॥१४॥
ख्यातिं प्रख्यापयिष्यामि तवानेन च कर्मणा ।
विधास्यामि तथा चान्यां व्यवस्थां भुवनत्रये ॥१५॥
अद्योत्तराफल्गुनीभं तिथिश्चापि त्रयोदशी ।
शुक्लः पक्षश्चैत्रमासो योगो वृद्धिस्तथैव च ॥१६॥
स्रक्ष्यामि मृतमप्येनं मुदे तव ममापि च ।
पूजाकाले मधुमासपुष्पैरेवास्य विग्रहम् ॥१७॥
सङ्कल्प्य रचयिष्यामि पश्यन्त्यास्तव पार्वति ।
इत्युक्त्वाज्ञाप्य गणपानानाय्य कुसुमानि च ॥१८॥
कामं सञ्जीवयामास तत्तदङ्गं प्रकल्प्य सः ।

[कामसञ्जीवनविधिः]

सर्वं शरीरं दमनैर्वदनं कमलेन च ॥१९॥
नासां चम्पकपुष्पेण दृशौ कुवलयेन च ।
मल्लिकाभिः कपोलौ द्वौ यूथीभिरलिकं तथा ॥२०॥
द्वौ कर्णौ करवीरैश्च पाटलाभिर्हनुद्वयम् ।
माधवीभिर्जत्रुणी द्वे शिरीषैर्गण्डयोर्युगम् ॥२१॥
नासापुटे द्वे वकुलैः कर्णिकारैर्गलस्तथा ।
चूताङ्कुरैर्बाहुयुगं केशपाशः कुरुण्टकैः ॥२२॥
काञ्चनारैरंसयुगं कुन्दैः कुक्षियुगं[1] तथा ।
वक्षःस्थलमशोकैश्च जठरं केतकीदलैः ॥२३॥

१—द्वयं क

पार्श्वद्वयं जातिभिश्च वंक्षणं किंशुकैरपि ।
शतपत्रैरूरुयुगं द्वे जंघे जवया तथा ॥२४॥
पारिजातैर्मरुवकैः कदम्बैर्बन्धुजीवकैः ।
अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि प्रत्येकं कुसुमैर्भवः ॥२५॥
चकार कामदेवस्य समग्रं तु कलेवरम् ।
दमनैः कल्पयामास शरांश्चापि शरासनम् ॥२६॥
वसन्तं कोकिलान् भृंगान् मलयानिलमेव च ।
रतिं च वामदिग्भागे प्रीतिं दक्षिणतस्तथा ॥२७॥
प्रकल्प्य भगवानीशो मृतसञ्जीवनीं मनुम् ।
गृणन् सञ्जीवयामास स्वशक्त्या प्रमथाधिपः ॥२८॥
सञ्जीवितः समुत्थाय स्वसहायसमन्वितः ।
उमामहेश्वरौ भक्त्या ननाम भुवि दण्डवत् ॥२९॥
विज्ञापयामास तथा प्राप्तदेहः स्मरो हरम् ।
किं कर्तव्यं मया देव तदनुज्ञातुमर्हसि ॥३०॥

[कामं प्रति शिवस्य वरदानम्]

उवाच तं महेशानो भक्तिप्रणतकन्धरम् ।
त्रिजगन् मोहयन् नित्यं पौष्पेण धनुषा स्मर ॥३१॥
विचर स्वेच्छयैताभिः शक्तिभिः परिवारितः ।
मैत्रीभूतसहस्रैश्च तथामीभिरपि ध्रुवम् ॥३२॥
मोहयन् युवतीर्यूनः शरैः पञ्चविधैः सदा ।
मत्तः कलेवरं लब्धं त्वया देव्याः प्रसादतः ॥३३॥

[अनङ्गतिथौ कर्तव्यत्वाभिधानम्]

इयं तिथिरनङ्गाख्या तव नाम्ना भविष्यति ।
त्वामस्यां येऽर्चयिष्यन्ति गन्धपुष्पादिविस्तरैः ॥३४॥
नैवेद्यधूपदीपाद्यैर्गीतवाद्यादिनर्त्तनैः ।
अश्लीलवचनाक्षेपैर्मादकद्रव्यभोजनैः ॥३५॥
योनिलिंगादिशब्दानां प्रलापैर्हास्यकारकैः ।
तत्तदाकारवचनैर्महोत्सवसमन्वितैः ॥३६॥

त्वं वरानीप्सितान् दद्यास्तेषां मद्वचनात् स्मर ।
तत्परेऽहनि मत्पूजा विस्तार्या मकरध्वज ॥३७॥
इत्युक्त्वा संविसर्ज्यामुं सवसन्तरतिं हरः ।
[पार्वतीपूजाफलाभिधानम्]
उमामुवाच पार्श्वस्थां विहसन् मानयंश्च ताम् ॥३८॥
देवि त्वद्वाक्यमात्रेण मया संजीवितः स्मरः ।
तवापि नाम भुवने ख्यापयिष्यामि सुन्दरि ॥३९॥
कामदेवशरीराख्यैर्दमनैरधिवासितैः ।
पङ्करोपितमूलैश्च त्वामर्चिष्यन्ति ये नराः ॥४०॥
तेषां त्वयि कृता पूजा वार्षिकी सफला भवेत् ।
दमनारोपणं कर्म न कृतं यैः प्रमादतः ॥४१॥
शुभानि नाशयित्वैषामशुभानि प्रदास्यसि ।
त्वदीयाश्च गणाः सर्वे हरिष्यन्त्याब्दिकार्चनम् ॥४२॥
यथा ते शारदीयार्चा नित्या क्षेमप्रदायिनी ।
दमनारोपणं चादस्तथा भवतु भूतले ॥४३॥
इत्युक्त्वा तां प्रियां शम्भुः करेणादाय सस्मिताम् ।
रहः शृङ्गं हिमाद्रेस्तदारुरोह मुदान्वितः ॥४४॥
महाकाल उवाच
दमनारोपणं कर्म ततः प्रभृति सुन्दरि ।
स्थितमावश्यकतया कर्तव्यत्वेन च प्रिये ॥४५॥
[दमनारोपणकालनिर्णयः]
कालस्तदीयो मुख्यस्तु शुक्लः पक्षो मधोर्मतः ।
मध्यमो माधवो ज्येष्ठः शुचिस्त्वधम उच्यते ॥४६॥
चातुर्मास्ये प्रविष्टे तु यः कुर्याद् दामनं विधिम् ।
न तस्य दुर्मतेः सिद्धिर्विपरीतं च जायते ॥४७॥
भूताः प्रेता प्रनृत्यन्ति क्षुधासंपीडितोदराः ।
अस्माकं भाग्ययोगेन चेत्कश्चित् साधकाधमः ॥४८॥
सुप्ते जनार्दने कुर्याद्दमनारोपणं विधिम् ।
तदा वयं विलुम्पामो भक्षयामोऽर्चनं च तत् ॥४९॥

अतो वसन्ते शिशिरे ग्रीष्मे कुर्यादमुं विधिम् ।
नैव वर्षासु शरदि हेमन्ततौं न च प्रिये ॥५०॥
तस्मादृतुत्रये पूर्वोदिते दमनकार्चनम् ।
न परर्तुत्रये कार्यं देवीप्रीतिं विधित्सता ॥५१॥

[दमनारोपणप्रयोगः]

अथ प्रयोगं कलय देव्यै तस्य विशेषतः ।
दमनारोपणाख्यस्य कर्मणः साङ्गताकृतः [म्] ॥५२॥
अथ पूर्वदिने सायं रात्रौ वाथ महानिशि ।
समूलाग्रं दमकमानीय क्षालयेज्जलैः ॥५३॥
पीठोपरि च संस्थाप्य मुष्टिमात्राधिकं सदा ।
अधिवासनकर्माङ्गभूतं सङ्कल्पमाचरेत् ॥५४॥
राशितिथ्यादिकं प्रोच्य वर्तमानतया स्थितम् ।
वार्षिकार्चासमाप्त्यर्थं श्वःकर्तव्यस्य कर्मणः ॥५५॥
दमनारोपणाख्यस्याङ्गभूतमधिवासनम् ।
करिष्य इति संकल्प्य पञ्चायतनमर्चयेत् ॥५६॥

[काल्याः षोडशोपचारपूजाविधानम्]

उपचारैः षोडशभिस्ततः कालीं प्रपूजयेत् ।
कामं च विधिना ध्यात्वा यथाशक्ति प्रपूजयेत् ॥५७॥

[दमनाधिवासविधिः]

ततः प्रत्येकमुदितैर्वस्तुभिस्तत्क्रमेण हि ।
तत्तन्मन्त्रं पठन् धीरो दमनान्यधिवासयेत् ॥५८॥
एकैकं वस्तु संगृह्य स्पर्शयेद्दमनं शनैः ।
ततो देवीं च तेनैव क्रमेण मनुनापि च ॥५९॥

[पूजासामग्रीलम्भनम्]

सर्वशेषे तु वस्तूनि तान्येकीकृत्य साधकः ।
कृत्वैकभाजनस्थानि सर्वशेषे तु लम्भयेत् ॥६०॥
क्रमतस्त्वथ वस्तूनि शृणुष्वावहिता मम ।
शंखो वराहरोमाणि धान्यं पोत्रिरदस्तथा ॥६१॥

मृत्तिका चन्दनं गोरोचना कस्तूर्यपि प्रिये ।
कर्पूरं कुङ्कुमं दूर्वा तिलतैलं सुगन्ध्यपि ॥६२॥
ततोऽपि पेषणदृषत्सिन्दूरं कज्जलं पुनः ।
हरिद्रा स्वस्तिकं यावो दधिदुग्धाक्षतानि च ॥६३॥
फलं पुष्पं च माला च धूपदोपौ हविर्मधु ।
श्वेतसूत्रं सुवर्णं च रजतं रत्नमेव च ॥६४॥
ततः सिद्धार्थकादर्शौ विशिखं चासिपुत्रिका ।
षट्त्रिंशन्मितमेतत्स्यादधिवासनकर्मणि ॥६५॥

[वस्तुलम्भनन्त्रः]

सप्तत्रिंशत्तमं चोक्तं वन्दनं सार्ववास्तवम् ।
अथामीषां मनून्वक्ष्ये वस्तूनां लम्भने प्रिये ॥६६॥
एकैकं क्रमशो बीजं भिन्नभिन्नं पुरः स्थितम् ।
शेषेऽस्त्रं निश्चलं ज्ञेयं मन्त्राः स्युर्वदनं विना ॥६७॥
माया मैधं रमा मेधो वधूः पाशस्ततः परम् ।
प्रासादो गारुडः क्षेत्रपालः सोमो रतिस्तथा ॥६८॥
नरसिंहो योगिनी च डाकिनी कूर्च एव च ।
कल्पमाप्रेतकामाश्च कर्णिकाहारशृङ्खलाः ॥६९॥
मेखलादोपफेत्कारीकुल्यः संदीपनी ख[घ]टी ।
कालरात्रिश्च संहारो नान्दिकव्ययसारसाः ॥७०॥
विधृतिः शेखरश्चापि ब्रिन्दुकः सर्वशेषकः ।

[वादनिकमन्त्रः]

अथ वान्दनिकं मन्त्रं चरमस्थं ब्रवीमि ते ॥७१॥
तारमैधत्रपाकामवधूप्रासादविद्युतः ।
शाकिनी डाकिनी चेति नव बीजानि संमुखे ॥७२॥
ऋद्धः समृद्धो वृद्धश्च त्रिपद्या भव कीर्तयेत् ।
शुभानि त उप प्रोच्य तिष्ठन्तामिति कीर्तयेत् ॥७३॥
सन्धियुक् तारतश्चापि प्रतिष्ठ शिर एव च ।
एवं गन्धाधिवासाख्यं निर्वर्त्य दमनस्य हि ॥७४॥

तथैव कर्म कुर्वीत देव्या यन्त्रेऽथवा तनौ ।

[अष्टपताकारोपणविधि]

ततोऽष्टौ विशिखान् कृत्वा सपताकान् वरानने ॥७५॥

निखनेदष्टदिग्भागे फ्रें हूं फडिति मन्त्रकैः ।

त्रिवर्णराजिभिस्त्रिघ्नै रक्तपीतासिताभिधैः ॥७६॥

तन्तुभिर्वेष्टयेद्बाणांस्तैरेतैर्दमनं पुनः ।

[धूपादिदानमन्त्रः]

दद्यात्ततो धूपदीपबलीन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ॥७७॥

चैतन्याद्द्रावयुगलं युगं कूर्चास्त्रयोरपि ।

एष धूप इति प्रोच्य मदनाय इतीरयेत् ॥७८॥

दमनात्मन उल्लिख्य नमः स्वाहान्तिमे वदेत् ।

निवेद्य धूपमेतेन ततो दीपं निवेदयेत् ॥७९॥

तारप्रासादास्त्रबीजात्फलोऽस्तिस्रः समुद्धरेत् ।

एष दीप इयान् भेदः सर्वमन्यत् पुरोक्तवत् ॥८०॥

मसूरमाषगोधूमयवतण्डुलशालयः ।

सराजमाषचिपिटा बालेया एकतां गताः ॥८१॥

अष्टदिक्षु प्रदातव्याः शरमूलस्य सन्निधौ ।

[दिक्पालेभ्यो बलिदानम्]

प्राच्याशावासिनो रौद्राः सिद्धीनां परिपन्थिनः ॥८२॥

क्षेत्रपाला गदाहस्ता भूचराः खेचरास्तथा ।

नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥८३॥

मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।

दक्षिणाशास्थिताः सर्वे बटुका ये प्रकीर्तिताः ॥८४॥

देवीपूजासु सर्वत्र नित्यं सन्निहिता हि मे ।

नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥८५॥

मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।

भैरवा ये महाघोराः प्रतीच्याशानिवासिनः ॥८६॥

देव्या अनुचरत्वेन ख्याता अष्टौ महाबलाः ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥८७॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
गणानामधिपा ये स्युरुत्तराशानिवासिनः ॥८८॥
गजानना महाकाया ये च विघ्नविधायिनः ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥८९॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
आग्नेयोविदिशावासा योगिन्यो या भयङ्कराः ॥९०॥
देव्याः पारिषदीभूताः पूजाभागिन्य एव च ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥९१॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
नैऋत्यां विदिशि प्रोक्ता डाकिन्यो या भयप्रदाः ॥९२॥
देवीपूजावलुम्पिन्य अस्रपा विघ्नदास्तथा ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥९३॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
याश्चामुण्डाः कोटिसंख्या वायव्यां विदिशि स्थिताः ॥९४॥
करालवदना घोराः श्मशानविहितालयाः ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥९५॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
असंख्याता मातरो याः पर्यटन्ति महीतले ॥९६॥
अन्धकासृजपायिन्यो देव्याः सन्निधिमाश्रिताः ।
नमो ममास्तु युष्मभ्यं बलिरेष प्रगृह्यताम् ॥९७॥
मदनस्य तनूरूपं दमनं परिरक्ष्यताम् ।
इत्यष्टदिक्षु मनुभिरेभिर्दद्याद्बलिं प्रिये ॥९८॥
ततः प्रभृति रक्षा च विधातव्या प्रयत्नतः ।
विशेषतो वादनीयाः शङ्खा घण्टाश्च तत्पुरः ॥९९॥

सर्वां निशोथिनीं व्याप्य दीपान् प्रज्वालयेदपि ।
श्लोकानिमास्ततो देवि बद्धाञ्जलिरुदीरयेत् ॥१००॥

[कन्दर्पस्तुतिः]

कन्दर्प त्वं जगत्क्षोभकारक प्रीतिदायक ।
ब्रह्मसूनो महाभाग नरनारीसुखावह ॥१०१॥
पित्रा शप्तोऽसि च क्रोधात्तनयां स्वामभीप्सता ।
देवैः संप्रेषितश्चासि तारकस्य वधैषिभिः ॥१०२॥
गतोऽसि गिरिशाभ्यासं सुरकार्यचिकीर्षया ।
तत्र रुद्रेण दग्धोऽसि स्वकीयेन दृगग्निना ॥१०३॥
जाते विवाहे पार्वत्या विज्ञप्तो वृषभध्वजः ।
सञ्जीवयामास सद्यस्त्वां कृतं भस्मसादपि ॥१०४॥
दमनेन शरीरं ते परिकल्पितवान् प्रभुः ।
अङ्गान्यन्यैः प्रसूनैस्ते रतिप्रीतिसहायिनः ॥१०५॥
अहं च त्वां जीवयामि रुद्रवाक्येन मन्मथ ।
पिकाम्रमञ्जरीभृङ्गवसन्तमलयानिलैः ॥१०६॥
तच्छरीरात्मकैरेतैर्दमनैः स्वस्तु कालिकाम् ।
अर्चयिष्याम्याब्दिकार्चापरिपूर्त्यर्थमीश्वर ॥१०७॥
गन्धैर्नानाविधैर्द्रव्यैरद्य त्वमधिवासितः ।
श्वस्ते जीवं प्रदास्यामि कालिकाप्रीतिहेतवे ॥१०८॥

[अधिवासनरात्रिकृत्यविधिः]

इत्यष्टौ मन्त्ररूपान् वै श्लोकानुद्गीरयेत् प्रिये ।
दमनस्य पुरश्चाधिवासितस्य सुराकृतेः ॥१०९॥
गीतनृत्यादिवाद्यानि प्रकुर्वीत ततः परम् ।
रात्रौ जागरणं चापि क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥११०॥
ततः प्रभाते उत्थाय कृतनित्यक्रियां निजाम्[1] ।
कृतार्चासम्भृतिः पूजामण्डपं समुपाविशेत् ॥१११॥

१—स्वकाम् ङ ।

मूर्तियन्त्रालयादीनि कुर्यादुज्ज्वलितानि हि ।
संकल्पं पूर्ववत् कुर्यात् तदनन्तरमीश्वरि ।।११२।।
दमनारोपकर्माहं करिष्य इति चोल्लिखेत् ।
मृत्पात्रं मृत्तिकापूर्णं केशाङ्गारास्थिवर्जितम् ।।११३।।
अचलं नूतनं पूतं दक्षे संस्थाप्य साधकः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण भूमेः संशोधनं चरेत् ।।११४।।

[भूमिसंशोधनमन्त्रः]

ओं अश्विना क्षालितासि त्वं वराहेणोद्धृता पुरा ।
मया चैवोपलिप्तासि पवित्रा भव काश्यपि ।।११५।।
इत्युच्चार्य मनुं देवि गृहीत्वा गोमयं पुरः ।
दमनस्य भुवं लिम्पेद्विदध्यादपि शुष्कताम् ।।११६।।

[मण्डलनिर्माणविधिः]

ततः सिन्दूरमादाय वर्तुलं मण्डलं चरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण वितस्तिमितमीश्वरि[1] ।।११७।।
तारो मैधं रमा पाशकामवध्वस्त्रपारुषौ ।
एह्येहि मदनेत्युक्त्वा तवारिष्टमितीरयेत् ।।११८।।
कल्पयामि धरित्रीयं त्वां प्रसाध्यति चेरयेत् ।
अस्त्रं हृच्छिरसो वापि मनुर्मण्डलकल्पने ।।११९।।

[यन्त्रनिर्माणविधिः]

समीकृते तत्र यन्त्रं वक्ष्यमाणं लिखेत्ततः ।
सर्वान्तः कामवीजं स्यात् त्रिकोणं तद्बहिस्तथा ।।१२०।।
षट्कोणं तद्बहिश्चापि कोणाग्रे वनिताङ्कुरम् ।
वर्त्तुलत्रितयं दद्यादकाराद्यैस्ततोऽक्षरैः ।।१२१।।
क्षान्तैः संवेष्टयेत्सर्वं ततोऽष्टदलमम्बुजम् ।

[मृत्पूर्णमृत्तिकापात्रस्थापनविधिः]

मृत्पूर्णं मृत्तिकापात्रं संस्थाप्य करयोर्द्वयोः ।।१२२।।

१—विधिना च महेश्वरि घ ।

उदीर्यमाणमन्त्रेण निदध्यान्मण्डलोपरि ।
तारराव त्रपाकूर्चाः स्थकाराः पञ्चदीर्घिणः ॥१२३॥
स्थिरो भवेति संकीर्त्य अचलो भव चेरयेत् ।
निश्चलो भव च प्रोच्य ततस्त्वयि सुरानिति ॥१२४॥
आवाहयिष्य उच्चार्य सुप्रतिष्ठो भवेरयेत् ।

[तत्र समन्त्रजलदानविधिः]

शिरः शेषे ततस्तस्यां मृदि दद्याज्जलं शुचि ॥१२५॥
पदसन्तानरूपेण मन्त्रेण वरवर्णिनि ।
ॐ पवित्राभिराभिरद्भिरभिषिञ्चामि क्लिन्ना भव
सिक्ता भव उच्छ्वसिता भव स्तिमिता भव उर्वरा भव
त्वयि सिद्धिं धास्यामि ॐ स्वाहा ।
अनेन श्रुतिमन्त्रेण जलेनालोडयेन्मृदम् ॥१२६॥

[पङ्कनिर्माणविधिः]

पङ्कप्राये ततो जाते पुनरन्यं पठेन्मनुम् ।
पङ्कस्त्वं पृथिवीरूपो मेघरूपं जलं त्विदम् ॥१२७॥
अन्नानि त्वयि जायन्ते प्राणरूपाणि देहिनाम् ।
रोपयिष्यामि दमनं मदनस्याङ्कुराकृति ॥१२८॥
तेन त्वां पूजयिष्यामि पङ्क त्वं सुस्थिरो भव ।
इत्थं संस्थाप्य तत्पङ्कं प्राणायामं विधाय च ॥१२९॥
नद्यादिबीजैश्चार्वन्तैः षडङ्गद्वितयं चरेत् ।

[पङ्कपूजाविधिः]

पङ्कपूजां ततः कुर्यात् पीठन्यासार्चनादिवत् ॥१३०॥
तारकामांकुरौ चाद्यौ हृच्छीर्षेऽन्तिमगे तथा ।
मध्ये ङेन्ताश्च शब्दाः स्युस्तानीदानीं ब्रुवे तव ॥१३१॥
मूलप्रकृतिरित्येवं महामण्डूक एव च ।
कूर्मः शेषश्च पृथवी समुद्राः पर्वतास्तथा ॥१३२॥

मेघाश्चेमे बहुत्वे स्युरष्टदिक्ष्वष्ट पूजयेत् ।
अथ मध्येऽर्चयेत्पङ्कं बीजैस्तैरेव तादृशैः ॥१३३॥
मध्येऽमीभ्यः पदेभ्यस्तु शक्तये परिकीर्तयेत् ।
आधारोद्भित्प्राणजीवबलेच्छातृप्तिकृत्क्रियाः ॥१३४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च मध्ये तद्वत्समर्चयेत् ।
अष्टदिक्ष्वष्टदिक्पालान्मध्ये नव निधीनपि ॥१३५॥
महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वः शेषे प्रकीर्तितः ॥१३६॥

[अष्टनागपूजाविधिः]

अष्टौ नागान् पुनर्मध्ये यजेद्रीत्या तयैव हि ।
इत्थं निर्वर्त्य पङ्काङ्गपूजां पङ्कं ततोऽर्चयेत् ॥१३७॥
पाद्यादिभिस्तूपचारैर्दशभिः परिकल्पितैः ।

[पङ्कस्य बलिदानविधिः]

सर्वशेषे बलिं दद्यात्पङ्काय सुरवन्दिते ॥१३८॥
मैधत्रयं त्रपारावौ रमाकूर्चवधूस्मराः ।
सर्वाङ्कुराधारपङ्को ङेन्तौ द्वौ समुदाहरेत् ॥१३९॥
तुभ्यमेष बलिर्हार्दमनुयुक्तो मनुर्मतः ।
ततोऽनुज्ञां प्रार्थयीत बद्धाञ्जलिपुटः सुधीः ॥१४०॥

[पङ्कादनुज्ञाप्रार्थनम्]

पूजितोऽसि मया पङ्क देवबुद्ध्या त्वमादरात् ।
त्वमुद्भिज्जस्वरूपाणां पदार्थानां परायणम् ॥१४१॥
कन्दर्पवपुराकारं[१] दमनं त्वयि रोपये ।
तत्र संपूजयिष्यामि रतिप्रीतिसमन्वितम् ॥१४२॥
कामं सपरिवारं च वसन्तं मलयानिलम् ।
त्वत्त उद्धृत्य दमनं शरीरमिव मान्मथम् ॥१४३॥
देवीं संपूजयिष्यामि वार्षिकार्चासमाप्तये ।
तस्मात्पङ्क स्थिरो भूत्वा मम कार्यं प्रसाधय ॥१४४॥

१—अत्रारभ्य पंक्तिचतुष्टयं घ पुस्तके नास्ति ।

पठित्वेमान्मनून्देवि पङ्कञ्चाभ्यर्च्य यत्नतः ।

[दामनीपूजाप्रारम्भः]

प्रारभेद् दामनीं पूजां विधिना कथयिष्यता ।।१४५।।

कलशस्थापनं कृत्वा प्रथमं कथितक्रमैः ।

प्राचीभागे मण्डलस्य संपूज्य च यथाविधि ।।१४६।।

पूर्वोदितमनङ्गस्य षडङ्गं विदधीत वै ।

प्रोक्तयानङ्गगायत्र्या दमने पीठसंस्थिते ।।१४७।।

क्लीं अनङ्गाय विद्महे कामदेवाय धीमहि ।

तन्नो मदनकः प्रचोदयात् ।।१४८।।

एषा ह्यनङ्गगायत्री कथिता तव पार्वति ।

तथा सावयवीकृत्य षडङ्गान्यत्र विन्यसेत् ।।१४९।।

[दमनस्य दशोपचारपूजाविधिः]

ततो दशोपचारेण दमनं परिपूजयेत् ।

विशेषतो धूपदीपं बलिं पूर्वोदितक्रमैः ।।१५०।।

दत्वा कुर्वीत च प्राणप्रतिष्ठां दमनस्य हि ।

पीठस्थे दमने एव मनुना कथयिष्यता ।।१५१।।

[दमनस्य समन्त्रप्राणप्रतिष्ठाविधिः]

मेधानां पञ्चक प्रोच्य त्रपालक्ष्मीरुषो वधूः ।

कामः पाशः शाकिनी च डाकिनी नृहरिस्तथा ।।१५२।।

प्रासादश्चापि फेत्कारी बीजानीमानि षोडश ।

जीवात्मपरमात्मानौ मृतसंजीवनीमपि ।।१५३।।

कूटत्रयं समुच्चार्य त्वामहं जीवयामि च ।

उत्तिष्ठ किं मदन च शेष इत्यपि संलिखेत् ।।१५४।।

तारपाशत्रपाशृण्यः [1]कुल्यादिं गुडपश्चिमम् ।

बीजाष्टकं समुद्धृत्य हसबीजं ततो वदेत् ।।१५५।।

अनङ्गस्य ततः प्रोच्य इह प्राणा इतीरयेत् ।

पुनस्तान्येव बीजानि त्रयोदश सुरेश्वरि ।।१५६।।

१—कुण्यादि इति समुचितः पाठः ।

पुनस्त्वनङ्गस्य जीव इह स्थित इतीरयेत् ।
पुनस्तान्येव बीजानि अनङ्गस्य ततः परम् ॥१५७॥
सर्वेन्द्रियाणि इति च पुनश्चापि त्रयोदश ।
अनङ्गस्य पुनः प्रोच्य वाङ्मनश्चक्षुरित्यपि ॥१५८॥
श्रोत्रघ्राणाच्च रसन त्वच इत्यपि कीर्तयेत् ।
इहागत्य सुखं प्रोच्य चिरं तिष्ठन्तु शीर्षवत् ॥१५९॥
मन्त्रेणानेन च प्राणप्रतिष्ठां च विधाय वै ।
जपेदनङ्गगायत्रीं पञ्चविंशतिसंख्यकाम् ॥१६०॥
भावयेज्जीवितोऽयं वै मदनस्त्रिपुरारिणा ।
ततस्तूर्यनिनादेन घण्टाशङ्खरवेण च ॥१६१॥
सह मन्त्रं पठंस्तच्च शनैर्दमनमुद्धरेत् ।
मुष्टिबन्धेन संगृह्य द्वाभ्यामेव वरानने ॥१६२॥

[दमनोद्धारणकालिकवैदिकमन्त्रः]

वैदिकान् [1]याज्ञिकान् मन्त्रान् प्रजपेत् सुरवन्दिते ।
तारात् कामांकुरात् पञ्च तावतीश्च रतीरपि ॥१६३॥
एह्येह्यनंग सन्ध्योनं रतिप्रिय ततः परम् ।
प्रीतिप्रिय पुनश्चापि पङ्के त्वामहमित्यपि ॥१६४॥
ससन्ध्यारोपयामीति तद्वदावाहयामि च ।
सम्पूजयाम्यनु ततः सिद्धिं देहियुगं तथा ॥१६५॥
वार्षिकार्चां पूरय द्विः कन्दर्प मदनेत्यपि ।
[2]हरनेत्राग्निदग्धेति द्विरुत्तिष्ठ ततः परम् ॥१६६॥
आदौ सन्धानरहितं द्वितीयं सन्धिनान्वितम् ।
पूजां गृहाणद्वयं चापि सुप्रीतो भव चैककम् ॥१६७॥
देव्यै त्वामर्पयिष्ये च दमनाकारतो धर ।
पुष्टाद् हृष्टाच्च सन्तुष्टात् प्रत्येकं भव चेरयेत् ॥१६८॥
दण्डादिपञ्चकं प्रोच्य वदेन्नद्यादिपञ्चकम् ।
त्रिनयं त्रितयं ब्रूयात्तथा कूर्चास्त्रयोरपि ॥१६९॥

१—श्लौकिकान् इति समुचितपाठः । २—हरनयनाग्नि० ङ ।

स्वाहा तु सर्वशेषे स्याद्वैदिको मनुरीरितः ।
[दमनोद्धारकालिकपौराणिकमन्त्रः]
श्लौकिकानधुना वक्ष्ये मनून् कमललोचने ॥१७०॥
ॐ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मदन दमनाकृतिविग्रह ।
पुरा पुरारिणा दग्धोऽधुना त्वां जीवयाम्यहम् ॥१७१॥
मया त्वं रोपितः पङ्के कुर्वधिष्ठानमात्मभूः ।
स्वशक्तिभ्यां परिवृतः परिवारेण चात्मनः ॥१७२॥
मया करिष्यमाणं त्वं गृहाण मदनार्चितम् ।
त्वत्पूजयाद्य सन्तुष्टा भवत्वद्रिसुता मम ॥१७३॥
त्वदीयदेहाकृतिभिरेतैर्दमनकैः पुनः ।
पूजयिष्याम्यहं भक्त्या महामायां हरप्रियाम् ॥१७४॥
रतिः प्रीतिश्च ते शक्ती वामदक्षिणसंस्थिते ।
आवाहयामि ते च द्वे प्रीतये तव मन्मथ ॥१७५॥
परिवारांश्च ते काम सर्वानेवाह्वयाम्यहम् ।
पञ्च बाणान् पुष्पमयचापांश्चूताङ्कुराण्यपि ॥१७६॥
पिकान्विकारान्भ्रमरान् वसन्तं मलयानिलम् ।
तथान्यांस्त्वत्सहायांश्च कुरुषे यैर्जगद्वशे ॥ ॥१७७॥
सर्वानावाहयाम्यद्य त्वदीयेऽनङ्गविग्रहे ।
समागत्यात्र तिष्ठन्तु मत्पूजाग्रहणाय ते ॥१७८॥
सान्निध्यं कलयामुष्यां शाखायां दमनस्य हि ।
सशक्तिपरिवारस्त्वं यावत्पूजां करोम्यहम् ॥१७९॥
इत्येतान्नव मन्त्रांस्तु जपित्वा बहिरेव हि ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पङ्के दमनकं न्यसेत् ॥१८०॥
[दमनकन्यासविधिः]
कल्पयित्वैकादशांशानाख्यातदिगनुक्रमात् ।
मध्येऽधिकं महागुच्छं कामदेवस्य विन्यसेत् ॥१८१॥
प्रीतिं दक्षिणतश्चापि पुनः स्तवकिनीं ततः ।
वामे रतिं तत्समानामथ दिक्ष्वष्टसु प्रिये ॥१८२॥

एकैकं द्वावथ त्रीन्वा गुच्छान्सर्वत्र विन्यसेत् ।
प्राच्यां वसन्तं दयिते दक्षिणे पञ्च मार्गणान् ॥१८३॥
उत्तरे पुष्पकोदण्डं पश्चिमे मलयानिलम् ।
चूताङ्कुरांस्तथाग्नेये नैर्ऋत्ये कोकिलानपि ॥१८४॥
विकरानपि वायव्ये ऐशान्यां भ्रमरानपि ।
एवं तदेकादशधा कृत्वा पङ्केषु निर्वपेत् ॥१८५॥
[पङ्कारोपणकृन्मनुः]
मैधत्रयं त्रिकामी च अनङ्गं त्वामिति स्मरेत् ।
पूजायै निर्वपाम्युक्त्वा स्वाहा पश्चिमतो वदेत् ॥१८६॥
मनुष्वन्येषु दशसु चरमीया दशाक्षरी ।
एतस्याः प्राग्वदेत्तत्तदमन्तं शब्दमीश्वरि ॥१८७॥
स्त्र्यङ्कं पुमङ्कमथवा क्रमादेतदनन्तरम् ।
एतत्पुरोभवां वक्ष्ये षड्बीजीं क्रमतोऽधुना ॥१८८॥
तारमायारमाः स्त्रीणां त्रितयं स्याद् द्वितीयकम् ।
तारानङ्गौ शाकिनी च तार्तीयं च रतित्रयम् ॥१८९॥
पाशप्रासादनृहरिशक्तिप्रेतांकुशास्ततः ।
मैधाक्षदक्षिणाजम्भप्रलया डाकिनी तथा ॥१९०॥
चैतन्यमेखलाहारफेत्कारीशुक्लसेतवः ।
तारमन्दारभूतिन्यः कर्णिकाश्रृङ्खलाव्यथाः ॥१९१॥
तारमैधौ दुष्कृतान्तौ कुटिलारागसारसाः ।
चैतन्यतन्त्रारञ्जिन्यो मन्दचर्पटभद्रिकाः ॥१९२॥
तारचामरभारण्डविमर्दाः प्रकरो विदिक् ।
तस्य तस्य हि विख्यातः पंकारोपणकृन्मनुः ॥१९३॥
अथ पूर्वोदितप्राणप्रतिष्ठाया स्मरस्य हि ।
पङ्के संस्थाप्य दमनं पुनरेव समाचरेत् ॥१९४॥
नत्वन्येषां वरारोहे कार्योऽयं विधिरीरितः ।
प्रत्येकमुच्चारितया गायत्र्यानङ्गसंज्ञया ॥१९५॥

मूलं सावयवीकृत्य षड्दीर्घैः कलाक्षरैस्ततः ।
प्रविन्यसेत्षडङ्गानि दमने च तथात्मनि ॥१९६॥
प्राणायामं ततः कुर्याद्वारत्रयमतन्द्रितः ।
सकलं सकलैर्मन्त्रैर्विशेषार्घं प्रकल्पयेत् ॥१९७॥
पुरा मूलोदीरितया सामान्यं तदनन्तरम् ।
अनंगमातृकां देवि विदधीत ततः परम् ॥१९८॥
आद्यान्तस्थायिनौ स्यातां मातृकार्णौ सजातिकौ ।
अन्तरे कामबीजं स्यात्प्रोक्ता सानङ्गमातृका ॥१९९॥
मातृकास्थानवत्स्थानमृष्यादिस्तद्वदेव च ।
एवं ततः प्रकुर्वीत पीठन्यासं सुरार्चिते ॥२००॥
सर्वं पुरावत्तस्यापि किन्तु बीजं तदीयकम् ।
आदौ सर्वत्र संयोज्यं विदधीतोभयोरपि ॥२०१॥
आत्मदेहे ततः पंकरोपिते दमनेऽपि च ।
ततोऽप्येकं मूलपात्रमनङ्गस्य वरानने ॥२०२॥
संस्थापयीत पूर्वोक्तविधानमनुसंयुतम् ।
एवं निर्वर्त्य सकलं विधानार्द्धं पुरोक्तवत् ॥२०३॥
ध्यानं कुर्वीत कामस्य प्रीतिरत्योरपि प्रिये ।
त्रिखण्डामुद्रया पुष्पं प्रगृह्य दमनस्य हि ॥२०४॥

[कामदेवध्यानम्]

रत्नसन्दोहसंशोभिकिरीटोज्ज्वलमस्तकः ।
माणिक्यशकलोद्भासिकुण्डलद्वयशोभनः ॥२०५॥
शरत्पार्वणशीतांशुसमानमुखमण्डलः ।
माणिक्यखण्डभ्रमकृद्दन्तमण्डलमण्डितः ॥२०६॥
विशाललोचनयुगः श्यामाकुञ्चितकेशिकः ।
कङ्कणाङ्गदकेयूरस्मुक्ताहारविराजितः ॥२०७॥

वल्गत्कुण्डलविस्पष्टकपोलद्वयराजितः ।
विहसंश्चपलो गौरस्तथा सर्वाङ्गसुन्दरः ॥२०८॥
पौष्पं चापं करे वामे दक्षिणे पञ्च सायकान् ।
दधानश्चित्रवसनो मञ्जीररणिताङ्घ्रिकः ॥२०९॥
पिककोकिलझङ्कारवसन्तमलयानिलैः ।
सेव्यमानो मुदा शक्तिद्वयालिङ्गितविग्रहः ॥२१०॥
दक्षभागे प्रीतिनाम्न्या रतिनाम्न्या च वामतः ।
हरहस्तामृतरसैः सञ्जीवितकलेवरः ॥२११॥
ईदृग्विधो हि मदनो ध्यातव्यः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ।

[रतिप्रीतिध्यानम्]

अथ प्रीत्या रतेश्चापि ध्यानं कलय सुन्दरि ॥२१२॥
नीलोत्पलदलश्यामा प्रीतिः प्रौढेव कामिनी ।
तप्तकाञ्चनगौरांगी रतिर्बालेव भामिनी ॥२१३॥
समे समग्रै रन्यांशैरुभे अपि समाकृती ।
निरंकपूर्णिमापूर्णचन्द्रबिम्बसमानने ॥२१४॥
विशालफुल्लराजीवदलशोणायतेक्षणे ।
विलसद्रत्नताटङ्कश्रवणाभरणोज्ज्वले ॥२१५॥
मन्दारमालासन्नद्धधम्मिल्लभरगर्विते ।
त्रैलोक्यसारसौन्दर्ययौवनोन्मादगर्विते ॥२१६॥
सिंहासनसमारूढे विचित्रविविधाम्बरे ।
स्वच्छशीतांशुसकलसमच्छविललाटिके ॥२१७॥
विचित्रमालाललिते बहुचेटीगणैर्वृते ।
गौरांगशोभिकस्तूरीकुङ्कुमागुरुचित्रके ॥२१८॥
सुस्मितोद्भासिवदनचञ्चद्दशनकुड्मले ।
भुजाभ्यां धारयन्त्यौ ते वराभयमनुत्तमम् ॥२१९॥

उपास्यमाने कामस्य परिवारैः समन्ततः ।
मलयाचलवातेन पिकैः सुरभिणालिभिः ॥२२०॥
ध्यात्वेत्थं द्वे प्रीतिरतो दत्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ।

[समन्त्रः षोडशोपचारदानविधिः]

उपचारान् प्रयच्छेत षोडशापि प्रमाथिने ॥२२१॥
आदावुच्चार्य गायत्रीं कामबीजं ततः परम् ।
मदनायेति तदनु पदे प्रीति रतीति च ॥२२२॥
वैपरीत्येन संकीर्त्य सहितायेति चोद्धरेत् ।
एतावन्तं मनुं प्रोच्य इदं पाद्यादिकं तथा ॥२२३॥
तत्तन्मन्त्रेण सकलं प्रदद्यादत्वरः प्रिये ।
एष एव मनुर्ज्ञेयः प्रदाने सर्ववस्तुनाम् ॥२२४॥
पाद्यादीनि समस्तानि दत्वादौ मदनाय हि ।
ततो रत्यै ततः प्रीत्यै प्रदद्याद्विधिनामुना ॥२२५॥
प्रीतिर्यद्यपि मान्यास्य प्रिया दक्षिणभागगा ।
तथापि पूजा कर्तव्या रतेरादौ वरानने ॥२२६॥
यतस्तयाराध्य हरं विलप्य पुरतोऽस्य च ।
रुदत्या जीवितः कान्तः प्रसाद्य प्रमथाधिपम् ॥२२७॥
अतो रत्यादिमा पूजा प्रीतिशेषा विधीयते ।
रतेः प्रीतेश्च दातव्यं सर्वमेत्र पृथक् पृथक् ॥२२८॥
उपचारादिकं यावत् कल्पितं कामपूजने ।
ततो विधेयाऽवरणपूजा शंबरवैरिणः ॥२२९॥

[कामस्यावरणपूजाविधिः]

आदावावयवी पूजा तत्रापि हि विधीयते ।
प्रकारं तत्र कलय मन्त्रस्त्रिदशवन्दिते ॥२३०॥
येन येन प्रसूनेन यद्यदंगं प्रकल्पितम् ।
पूजनीयं तत्तदस्य मन्त्ररीतिप्रकल्पनैः ॥२३१॥

तदिदानीमहं वक्ष्ये सुगमोद्धृतिपूर्वकम् ।
सर्वाद्यमेकं बीजं हि निश्चलत्वेन संस्थितम् ॥२३२॥
ततोऽनन्तरमेकं च बीजं सर्वत्र चञ्चलम् ।
ततोऽपि पुष्पनामानि भिन्नभिन्नानि पार्वति ॥२३३॥
ततोऽप्यन्वंगप्रत्यङ्ग नामान्यस्थैर्यभाञ्जि च ।
पूर्वापरीभूतपदद्वयस्याप्यथ विग्रहः ॥२३४॥
सङ्केन्तोऽन्ते मनुश्चैकः सामान्योद्धृतिरीदृशी ।
तेन स्युरेकपञ्चाशन्मनवो भिन्नविग्रहाः ॥२३५॥
सर्वाद्यः प्रणवो बीजं चलान्याकलयाधुना ।
मैधं रमा त्रपा कूर्चः काली प्रासाद एव च ॥२३६॥
शार्किनो डाकिनी शक्तिः प्रेतो नृहरिरेव च ।
भारुण्डासानुशुक्लाश्च मौञ्जी दीपोऽत्रिरेव च ॥२३७॥
काकिनी नाकुलो वज्रं यक्षो नेमिश्च भूतिनी ।
फेत्कारी प्रलयो हारजंभशैशुकर्णिकाः ॥२३८॥
संहारः शृङ्खला चैव दुष्कृतं समरोऽपि च ।
कुटिला मणिमाला च सम्भूतिर्विरतिस्तथा ॥२३९॥
नादान्तकश्च मारण्डो परान्तः सौमतोऽपि च ।
वैनादश्चामरश्चापि कौलुंचो व्यजनं तथा ॥२४०॥
बिन्दुकश्च प्रतानश्च विदिक्शेखरदाक्षिकाः ।
सर्वशेषे स्वकं बीजं पञ्चाशच्चैकसंयुताः ॥२४१॥
एकैकं क्रमशो देयं बीजं तत्तन्मनौ प्रिये ।

[पुष्पनामानि]

अथ नामानि पुष्पाणां क्रमेणैतेन वच्मि ते ॥२४२॥
कुरुण्टकं च धुस्तूरं यूथीकृष्णापराजिताः ।
तिलकं ततः कुवलयं चम्पकं वकुलं तथा ॥२४३॥

शिरीषं मल्लिका चैव पाटला देवदार्वपि ।
[1]करवीरं च मन्दारमम्लानं कुटजं ततः ॥२४४॥
कमलं चन्द्रिका चापि दाडिमं परतोऽसनम् ।
कर्णिकारश्च स्वर्णाङ्गी काञ्चनारं च माधवी ॥२४५॥
चूताङ्कुरोऽर्जुनमथ धातकी मुनिपुष्पयुक् ।
जाती कुन्दं च पुन्नागमशोकं केतकी तथा ॥२४६॥
झिण्टी ततोऽपि कथितं नागकेशरमीश्वरि ।
शेफालिका चापि नवमल्लिका कोविदारयुक् ॥२४७॥
मालती च जयन्ती च किंशुकं शतवर्गयुक् ।
निचुलं कुमुदं चापि जवा तदनु कीर्तिता ॥२४८॥
कदम्बं वै मरुवकं बन्धुजीवमतः परम् ।
पारिजातं च दूर्वा च दमनं सर्वशेषगम् ॥२४९॥
इमान्यनङ्गदेहत्वाद्देव्यर्हकुसुमानि हि ।
त्यक्त्वा धुस्तूरकुटजदेवदार्विज्जलार्जुनान् ॥२५०॥

[पुष्पपरगतशब्दाभिधानम्]

अथैतत्परगांच्छब्दान् क्रमेणैव निबोध मे ।
केशः शिखा ललाटश्च भ्रूः कूर्चो नेत्रमेव च ॥२५१॥
नासा नासापुटं गण्डः कपोलो हनुरेव च ।
चिबुकं कण्ठ ओष्ठश्च अधरो दन्त एव च ॥२५२॥
वदनं तालु जिह्वा च मौलिश्च गल एव च ।
ग्रीवा स्कन्धस्तथा जत्रु बाहुश्चापि कफोणियुक् ॥२५३॥
मणिबन्धश्च कक्षश्च पार्श्वः कुक्षिस्तथैव च ।
नाभिवस्तिर्मेहनं च जानुर्वंक्षस्तथैव च ॥२५४॥

१—एतदारभ्य पंक्तित्रयं घ पुस्तके नास्ति ।

¹पार्ष्णिश्च प्रददं चाथ चरणं नख एव च ।
शेषे सर्वशरीरं च एकपञ्चाशदीरिताः ॥२५५॥
चरमे हार्दमन्त्रश्च स्फुट उद्धार ईदृशः ।
एवं संपूज्य कामस्य शरीरं सकलं प्रिये ॥२५६॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्यावल्लभ्यैर्वस्तुभिरेव हि ।

[कामस्यैकपञ्चाशन्नामानि]

कामानथैकपञ्चाशनामभिः परिपूजयेत् ॥२५७॥
तारकामौ पुरः प्रोच्य तत्तन्नाम च मध्यतः ।
ङेन्तं विधाय तदपि पुनः कामो वधूरपि ॥२५८॥
अस्त्रं हृदयशीर्षं च सर्वगा रीतिरीदृशी ।
आद्योऽनङ्गः समाख्यातस्ततः कन्दर्प इत्यपि ॥२५९॥
रतिप्रियः पञ्चशरः सुरतातुर उच्यते ।
मनोभवस्ततो ज्ञेयः कुसुमायुध इत्यपि ॥२६०॥
चित्तरञ्जन इत्येवं मन्मथस्तदनन्तरम् ।
संमोहनो यौवनेशो मदनस्तत्परेण च ॥२६१॥
हृत्क्षोभकश्चाकर्षकः केलिवल्लभ एव च ।
चित्तविद्रावणश्चापि दर्पको भ्रामकस्तथा ॥२६२॥
त्रिलोकीवशकारी च मकरध्वज इत्यपि ।
उन्मादकोऽन्धकारी च चण्डवेग इतः परम् ॥२६३॥
मार उच्चाटनश्चापि तथा व्यामोहदाय्यपि ।
पुष्पधन्वा स्मरश्चाथ ततः सन्तापनो मतः ॥२६४॥
मनः प्रमाथी भगदो मीनकेतुरितः परम् ।
उपस्थगो योनिवासी तथा मनसिजोऽपि च ॥२६५॥

१— एतत्पूर्वं घ पुस्तके पंक्तिद्वयमधिकमस्ति—
जठरं पृष्ठमन्त्रश्च कटिः कटः ततः परम् ।
वंक्षणस्तथा जानु जंघा गुल्फस्तथैव च ॥

पुष्पचापो यौवतेशस्तथा विश्वोपताप्यपि ।
वसन्तमित्रो मलयकेतुश्चेतःप्रमोदनः ॥२६६॥
क्रथनश्चण्डतेजाश्च धर्माधर्मप्रवर्तकः ।
कोमलायुध इत्येवं प्रमर्द्दन इतः परम् ॥२६७॥
त्रिलोकीसुखदश्चापि पिकदुन्दुभिरेव च ।
अलिमाली जगज्जेता कामोऽन्ते च प्रकीर्तितः ॥२६८॥
इत्येकपञ्चाशमिताः कामास्ते परिकीर्तिताः ।

[कामपरिवारपूजाविधिः]

ततोऽष्टदिग्गतान् कामपरिवारान् समर्चयेत् ॥२६९॥
नैवेद्यधूपदोपाद्यैर्गन्धपुष्पाक्षतैः पृथक् ।
प्रणवादि नमोऽन्तैश्च मध्ये ङेन्तपदैर्मनुः ॥२७०॥
वसन्तपुष्पकोदण्डमलयानिलनाम्नि हि ।
पञ्चमार्गणशब्दश्च प्रिये चूताङ्कुरस्तथा ॥२७१॥
कोकिलश्च विकारश्च भ्रमराश्च भ्यसन्तिमाः ।
मनुमध्ये पञ्च योज्यास्तेन तत्तन्मनुर्मतः ॥२७२॥
पृथङ्मन्त्रस्य संस्थित्याना चरेत्तन्त्रतोऽर्चनम् ।
परिवारस्यापि ततः परिवारान् प्रपूजयेत् ॥२७३॥
आद्यन्तगेन तारेण हृदयेन च मध्यतः ।
ङेऽन्तिना पदवृन्देन बहुद्विस्वोहशालिना ॥२७४॥
ग्रीष्मर्तुरथ वर्षर्तुस्ततः शरदृतुर्मतः ।
हेमन्तर्तुस्तस्य शेषे शिशिरर्तुरुदाहृतः ॥२७५॥
वैशाखादींस्ततो मासांश्चैत्रान्तान् परिपूजयेत् ।
नक्षत्राणि समग्राणि पक्षौ तिथय एव च ॥२७६॥
अयने रात्रिदिवसौ पृथग्द्वादश राशयः ।
लोकपालास्तथा चाष्टौ दिग्विदिक्पतितान्तिमाः ॥२७७॥
समुद्रानथ सप्तापि लवणाद्यभिधान्पुरः ।
नर्मदा यमुना गङ्गा कावेरी च सरस्वतो ।२७८॥

गोदावरी कृष्णवेणी चन्द्रभागाष्ट चार्चयेत् ।
पर्वतोपपदानष्टौ पूजयीत गिरीनपि ।।२७६।।
सुमेरुविन्ध्यकैलासपारिपात्रहिमालयाः ।
माल्यवान् दर्दुरः सह्य इत्येते मदनालयाः ।।२८०।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च उमा च विजया जया ।
वीरभद्रमहाकालावेतानष्टौ च पूजयेत् ।।२८१।।

[पुष्पाञ्जलित्रयदानविधिः]

ततोऽनङ्गस्य गायत्र्या दद्यातपुष्पाञ्जलित्रयम् ।

[समन्त्रबलिचतुष्टयविधिः]

धूपमारात्रिकं दत्वा प्रदद्याच्चतुरो बलीन् ।।२८२।।
मुख्यमेकमनङ्गाय रतये तदनन्तरम् ।
प्रीत्यै च परिवारेभ्यो मन्त्रानेषामतः शृणु ।।२८३।।

[मदनस्य बलिदानमन्त्रः]

मैधानां पञ्चकं प्रोच्य मायालक्ष्मीवधरुषः ।
प्रासादांकुशकामाश्च एह्येहीति ततः परम् ।।२८४।।
अनङ्गावतरेत्येवं सन्ध्यूनमुभयत्र हि ।
दमने स्वविग्रहपदाद्रूपे शङ्खादिपञ्चकम् ।।२८५।।
सर्वचित्ताकर्षकानु महाबलपराक्रम ।
धैर्यप्रमर्दनमनः शब्दात्प्रमथनोच्चरेत् ।।२८६।।
त्रैलोक्यमोहन प्रोच्य वदेन्नद्यादिपञ्चकम् ।
इमं बलिं गृह्णयुगं गृह्णापय युगं तथा ।।२८७।।
सर्वाः सिद्धीः साधय द्विः सर्वचेतांसि तत्परम् ।
मोहय द्विरनूच्चार्य प्रमोदय युगं वदेत् ।।२८८।।
जुष्टातुष्टाच्च पुष्टाच्च प्रत्येकं भव ईरयेत् ।
दण्डादिपञ्चकस्यान्ते कूर्चास्त्रहृदयं शिरः ।।२८९।।
मन्त्रेणानेन देवेशि मदनाय बलिं न्यसेत् ।

[रतेर्बलिदानमन्त्रः]

अथ मन्त्रं रतिबलिदानस्य कलय प्रिये ।।२९०।।

तारमैधत्रपाकामवध्व आगच्छ द्वितयं ततः ।
ब्रह्मनन्दिनि संकीर्त्य कामजीवप्रदायिनि ॥२९१॥
उमासहचरि प्रोच्य रते चापि रतित्रयात् ।
इमं बलिं तुभ्यमर्पयामि गृह्णद्वयं ततः ॥२९२॥
सौम्या प्रीता भवैताभ्यां प्राक्तनी च षडक्षरी ।
रत्यै बलिमनेनैव प्रदद्यात्साधकोत्तमः ॥२९३॥

[प्रीतेः बलिदानमन्त्रः]

बलिदानमनुं वक्ष्ये प्रीतेरथ वरानने ।
तारो मैधं च पाशश्च मायाङ्कुशरमावधूः ॥२९४॥
ततोऽनु कूर्चप्रासादौ नव बीजानि चोद्धरेत् ।
एह्यागच्छ ततः प्रीते प्रीतिदायिन्यतः परम् ॥२९५॥
इमं बलिं गृहाणानु सिद्धिं देहि युगं ततः ।
सिद्धिं दापय युग्मं च सिद्धिं दापय च द्वयम् [?]॥२९६॥
उक्त्वा सर्वाञ्जनमनोनिवासिनि समीरयेत् ।
कल्पादीन्यथ बीजानि नृसिंहान्तानि चेरयेत् ॥२९७॥
मुदिता भव संकीर्त्य ततः प्रमुदिता भव ।
पूर्वंगैवात्र सङ्कीर्त्या चरमीया षडक्षरी ॥२९८॥

[कामपरिवारस्य बलिदानमन्त्रः]

परिवारबलिं वक्ष्ये कामस्याथ सुरेश्वरि ।
तारकूर्चास्त्रबीजेभ्यः सर्वेभ्यः कामशब्दतः ॥२९९॥
परिवारेभ्य उच्चार्य सन्ध्याढचमुभयत्र हि ।
इमं बलिं तस्य पश्चादर्पयामि ततः परम् ॥३००॥
सिद्धिदा बृद्धिदाश्चापि भवन्तूभयतो वदेत् ।
विघ्नं हरन्तु च प्रोच्य पिशाचिन्यास्त्रयं वदेत् ॥३०१॥
अन्ते तु पूर्वंगैव स्याद्वरारोहे षडक्षरी ।
इति दत्वा तु चतुरो बलीन् पात्रं समर्पयेत् ॥३०२॥

मूलभूतं स्थापितं यत्तदनङ्गाय पार्वति ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण नेतराभ्यां कदाचन ॥३०३॥
तारमैधानङ्गवधूसुधा आदौ समुद्धरेत् ।
इदममृतमास्वादय सामरस्यं भजेत्यपि ॥३०४॥
परमानन्दं प्रविश नमः स्वाहा च पश्चिमे ।
पात्रं दत्वामुनैतस्मै गायत्रीमस्य सञ्जपेत् ॥३०५॥
अष्टोत्तरशतं देवि शक्तौ पञ्चशतीमपि ।

[जपसमर्पणमन्त्रः]

सुरकार्यसमासक्त रतिप्रीतिसमन्वित ॥३०६॥
कन्दर्प मदनावास गृहाणेमं जपं मम ।
मन्त्रमेनं समुच्चार्य समर्प्यास्मै कृतं जपम् ॥३०७॥
आरात्रिकं प्रदायाथ स्तुतिमेतामुदीरयेत् ।

[कामदेवस्तुतिः]

नमस्ते सर्वसिद्धीनां हेतवे प्रमदात्मने ॥३०८॥
सुरासुरर्षिमनुजनारीचित्तप्रमाथिने ।
ब्रह्मपुत्रमहाभाग जगदानन्ददायक ॥३०९॥
रतिप्रीतिप्राणनाथ तपोविघ्नविधायक ।
इन्द्रियाणां प्रमथन कलिपापसुहृत् स्मर ॥३१०॥
धर्मधैर्यार्थविद्वेषिस्त्रिजगद्वशकारक ।
यथाशक्ति यथाज्ञानं मया पूजा कृता तव ॥३११॥
त्वं तया तुष्य मदन शक्तिभ्यां सहितः सदा ।

[देवीपूजार्थं मदनानुज्ञाप्रार्थनम्]

अथानुज्ञां देहि मम कालिकायाः समर्चने ॥३१२॥
ततस्त्वां योजयिष्यामि देव्या सह रतिप्रिय ।
आरोपितोऽसि पङ्केऽस्मिन् यदर्थं त्वं मया स्मर ॥३१३॥
तदिदानीं करिष्यामि मदनाज्ञां प्रगृह्य ते ।
प्रणिपत्य तया रुद्रं जीवितोऽसि यतः स्मर ॥३१४॥

अतस्तत्पूजनाय त्वां प्रार्थयेऽमरवल्लभ ।
तावदेतादृगेव त्वं तिष्ठपङ्केषु पूजितः ॥३१५॥
कालिकाया यावदहं करोमि मदनार्चनम् ।
एवमाज्ञां प्रगृह्यास्य कुर्यान्नैमित्तिकार्चनम् ॥३१६॥

[दमनारोपणकर्मणि कर्तव्यविधिकथनम्]

तत्र कर्तव्यतां वच्मि विहितत्वेन संस्थिताम् ।
शोधनं सर्ववस्तुष्वाधिक्येन च पृथक्तया ॥३१७॥
सानुस्वारा सविसर्गा सनृसिंहा तथैव च ।
मातृका त्रिविधा कार्या सामान्यः पीठ एव च ॥३१८॥
आवश्यकतया प्रोक्तो योगरत्नाह्वयस्तथा ।
तादात्म्याद्वैतनामानौ कालीपञ्जर एव च ॥३१९॥
वक्त्रन्यासो धातुबीजन्यासावावश्यकौ तथा ।
तृतीयपञ्चकस्यापि न्यासाः शेषस्थितास्त्रयः ॥३२०॥
तुर्यं समस्तमेवेह कर्तव्यं पञ्चकं प्रिये ।
एकोनविंशतिमिता न्यासा एते महाफलाः ॥३२१॥
दमनारोपणार्चाया एव आवश्यका मताः ।
समयास्त्रे तथा काम्ये अन्येषामैच्छिकी स्थितिः ॥३२२॥
उपचाराः षोडश स्युर्नित्यत्वेन व्यवस्थिताः ।
फलानां कामनातोऽन्य उपचाराश्च षोडश ॥३२३॥
शक्तौ सत्यां प्रदातव्या अशक्तौ क्षतये नहि ।

[पात्रनिर्णयविधिः]

पात्राणां निर्णयमथ ब्रवीमि कमलानने ॥३२४॥
आनुकूल्येन विधिना षडेव स्मार्त आचरेत् ।
स्युः षड्त्रिंशदमत्राणि कौलकापालिकक्रमे ॥३२५॥
स्युस्त्रिंशत्तदशक्तौ तु चतुर्विंशतिरस्य च ।
न चतुर्विंशतेर्न्यूनं कार्यं कुलमतस्थितैः ॥३२६॥

स्थापनं पूजनञ्चैषां तर्पणं प्रतिपादनम् ।
नैमित्तिकार्चोदितवत्करणीयं वरानने ॥३२७॥
अष्टधा च बलिर्देयो नित्यपूजोदितक्रमैः ।
कालः स एव देवाश्च त एव परिकीर्तिताः ॥३२८॥
तथा चावरणार्चायां प्रात्यहिक्यां यदीरितम् ।
नैमित्तिक्यामपि तथा यासां यासां प्रपूजनम् ॥३२९॥
देवतानां मया प्रोक्तं द्वयोरपि च पार्वति ।
मध्येऽणुरपि न त्याज्यः सर्वथैवार्चनक्रमः ॥३३०॥
परिवारा हि यावन्तो वर्तन्तेऽस्याः क्रमागताः ।
आगच्छन्ति हि ते सर्वे दमनारोपकर्मणि ॥३३१॥
अतो यत्नेन संपूज्या यथाविभवमीश्वरि ।
जलपुष्पाक्षतदलैरभावेऽन्यस्य वस्तुनः ॥३३२॥
पूजिता मुदिताः सत्यो दद्युः सत्यं मनोरथान् ।
अपूजिताः पुनर्हन्यू रुष्टास्तस्य मनोरथान् ॥३३३॥
अत एव हि संपूज्या निरुद्विग्नेन चेतसा ।
यावदावरणार्चाया देवताः परमेश्वरि ॥३३४॥
दलकेशरकोणस्था वृत्ताष्टारांशमध्यगाः ।
पञ्चारत्र्यारबिन्दुस्थाः समष्टिव्यष्टिनामकाः ॥३३५॥
पूजाविभवविस्तारो मुख्याया अपि कीर्तितः ।
नैवेद्यधूपदीपानां यथाशक्तिप्रकल्पना ॥३३६॥
जपः स्वारसिकश्चात्र पूजा तद्वच्च मानसी ।
भूमा छागबलीनां च कर्तव्योऽत्र विशेषतः ॥३३७॥
पशूनामपि चान्येषां विहितानां समर्हणे ।
युग्मा एव प्रदातव्या नायुग्मा वै कदाचन ॥३३८॥
अवयो हरिणा च्छागाः शूकरा महिषास्तथा ।
गण्डकाः कच्छपा ग्राहाः पक्षिणो हंसकुक्कुटाः ॥३३९॥

बलित्वेन प्रदातव्या दमनारोपकर्मणि ।
एषां विधानमन्त्रादि कार्यं नैमित्तिके यथा ॥३४०॥

[शक्तिपूजाविधानम्]

शक्तिपूजा च कर्तव्या दमनारोपणोत्तरम् ।
कृते पुरस्तात्सकलं विफलं जायते प्रिये ॥३४१॥
शक्त्यर्चनेऽकृते चापि निष्फलं जायते तथा ।
अतः कार्या शक्तिपूजा दमनारोपणोत्तरम् ॥३४२॥
तस्या अपि विधानं हि यत्पूर्वं ते मयेरितम् ।
आधिक्येन प्रकर्तव्यमेवमीश्वरशासनम् ॥३४३॥
एवं निर्वर्त्य सकलं गुह्यकाल्याः प्रपूजनम् ।
साङ्गोपाङ्गप्रकारेण बलिदानयुतेन च ॥३४४॥
यथाशक्ति तथा स्तोत्रपाठदण्डप्रणामिना ।
एव निर्वर्त्य सकलां पूजां नैमित्तिकीं बुधः ॥३४५॥
सपंकारुढदमनं मृदमत्रं समुद्धरेत् ।

[कामदेवोत्थापनमन्त्रः]

उत्तिष्ठ मदनानङ्ग दमनाकृतिधारक ॥३४६॥
रतिप्रीतियुतस्वीयपरिवारसमन्वित ।
गृहीत्वा मत्कृतां पूजां तव प्राणदरूपिणीम् ॥३४७॥
देव्यै समर्पयिष्यामि त्वामहं रुद्रशासनात् ।
दग्धः संजीवितो यद्वत् त्वं रुद्रेण दयालुना ॥३४८॥
तथा संसारदग्धं मां त्वं जीवय कृपेक्षणैः ।
तव देहस्वरूपेण दमनेनामुना स्मर ॥३४९॥
वार्षिकार्चासमाप्त्यर्थं पूजयिष्यामि कालिकाम् ।
अतस्त्वां चालयाम्यद्य पर्वतादपि निश्चलम् ॥३५०॥
चलिते त्वयि कन्दर्प चलिष्यन्त्यखिलाः सुराः ।
त्वं चालयसि सर्वेषां धैर्याणि मकरध्वज ॥३५१॥

त्वां चालयाम्यहमपि सुरकार्यैकतत्परम् ।
यथा सुराणां कार्यार्थं चलितस्त्वं त्रिविष्टपात् ॥३५२॥
मत्कार्याय चल त्वं हि स्थानादस्मात् ततः स्मर ।
तव स्थितो वसन्तोऽग्रे शराः पञ्च च दक्षिणे ॥३५३॥
वामे चापः प्रीतिरती पार्श्वयोः पृष्ठगोऽनिलः ।
पठित्वा वैदिकान्मन्त्रानेतानष्टौ सुरार्चिते ॥३५४॥
तान्त्रिकं मन्त्रमुच्चार्य चालयेत्पङ्कभाजनम् ।

[कामदेवोत्थापनस्य तान्त्रिकमन्त्रः]

तारमैधत्रपाकामवधूप्रासादशक्तयः ॥३५५॥
ततश्च रावडाकिन्यौ बीजानि पुरतो नव ।
स्युः पराचिदसङ्गानि कूटानि तदनन्तरम् ॥३५६॥
एह्येह्युत्तिष्ठ मदन द्वितीयं सन्धिवर्जितम् ।
चल युग्मं चालयद्विः सर्वभूतवशंकर ॥३५७॥
आगच्छ द्वितयं चापि तथावतर युग्मकम् ।
देवीसन्निधिमाभाष्य व्रजयुग्मं ततः परम् ॥३५८॥
पुनः सकूटानि वदेद्बीनानि व्युत्क्रमान्नव ।
अन्ते हूं फट् नमः स्वाहा प्रोक्तोऽयं चालने मनुः ॥३५९॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य पद्यान्यष्टौ च तान्यपि ।
शनैर्मृत्पात्रमुत्तोल्य कराभ्यां शब्दवर्जितम् ॥३६०॥
समानयेत् पुरो देव्याः स्थापयेच्च समे स्थले ।
नवकृत्वस्तु सूत्रेण वेष्टयेत्परमेश्वरि ॥३६१॥
पीठं मृत्पात्रमुभयं हूं फट् फडिति कीर्तयन् ।
तयैवानङ्गगायत्र्या मदनं पुनरर्चयेत् ॥३६२॥

[कामदेवस्य पञ्चोपचारपूजा]

पाद्यादिभिर्विशेषेण पूजयेद्वस्तुपञ्चकैः ।
गायत्र्याख्येन तेनैव प्रचुरत्वेन कल्पितैः ॥३६३॥
पृथक्कर्पूरकस्तूरीगन्धकुङ्कुमकज्जलैः ।
एतेनैव प्रकारेण पुनरेव हि चण्डिकाम् ॥३६४॥

तैरेव पूजयेद् द्रव्यैः किन्तु नैवेद्यसंयुतैः ।
अस्मिन्नवसरे नैव मूलमन्त्रो ह्यपेक्षितः ॥३६५॥

[मदनगायत्री]

इष्टा मदनगायत्री तां ब्रवीम्यधुना तव ।
महामात्रे विद्महे च कालसङ्कर्षणीं ततः ॥३६६॥
ङेन्तामुक्त्वा धीमहीति तन्नो योगीश्वरी ततः ।
प्रचोदयादियं प्रोक्ता गायत्री मदनाभिधा ॥३६७॥
अनयैव प्रयच्छेत प्राचुर्यं पञ्चवस्तुनाम् ।

[अशोकारोपणविधिः]

अथाशोकं रोपयेत मध्ये कामवसन्तयोः ॥३६८॥
यद्यप्यस्य सिताष्टम्यां चैत्रे प्राशस्त्यमुच्यते ।
तथापि गौणकालत्वाद् यत्र कुत्रापि कल्पना ॥३६९॥
तदलाभेऽपि तत्पत्रं शुष्कं कुसुममेव वा ।
पंक आरोप्य संपूज्यं दमनारोपकर्मणि ॥३७०॥
अशोकतरुमूले तु सदा वसति मन्मथः ।
यस्मात्तमप्यर्चयेद्वै मध्ये कामवसन्तयोः ॥३७१॥
तारादशोकवृक्षाय नम इत्येष वै मनुः ।
सर्वोपचारानेतेन वञ्जुलायार्पयेत् प्रिये ॥३७२॥

[पञ्चबाणपूजाविधिः]

लाभे तत्पुष्पमाल्येन पञ्चबाणं प्रपूजयेत् ।
अलाभे शुष्ककुसुमपत्रेणापि सुरेश्वरि ॥३७३॥

[देव्यनुज्ञाग्रहणविधिः]

अनुज्ञामथ गृह्णीयाद्बद्धाञ्जलिपुटो बुधः ।
संस्पृश्य पीठमम्बाया मध्यमाभ्यां हि हस्तयोः ॥३७४॥
ऊं जय मातर्जगद्धात्रि जय शैलेन्द्रनन्दिनि ।
जय पापौघदलनि जय धूर्जटिवल्लभे ॥३७५॥
जय क्षेमंकरि शिवे जय सिद्धिप्रदायिनि ।
जय त्रैलोक्यरक्षित्रि जय शत्रुनिसूदनि ॥३७६॥

देव्ययं पूजितः कामो रतिप्रीतिसमन्वितः ।
सख्या वसन्तेन युतोऽशोकद्रुमतलस्थितः ॥३७७॥
पङ्कादेनं समुद्धृत्य मदनं दमनात्मकम् ।
त्वामहं परिदास्यामि यद्यनुज्ञा तवाम्बिके ॥३७८॥

[कामानुज्ञाप्रार्थनविधिः]

देव्यनुज्ञां गृहीत्वेत्थं कामानुज्ञां च प्रार्थयेत् ।
तयैव मुद्रया किन्तु भिन्नैर्मनुभिरेव च ॥३७९॥
पुष्पधन्वन्नमस्तेऽस्तु नमस्ते मीनकेतन ।
मुनीनां लोकपालानां धैर्यच्युतिकृते नमः ॥३८०॥
माधवात्मज कन्दर्प शम्बरारे रतिप्रिय ।
नमस्तुभ्यं जिताशेषभुवनाय मनोभुवे ॥३८१॥
आधयो मम नश्यन्तु व्याधयश्च शरीरजाः
संपद्यतामभीष्टं मे सम्पदः सन्तु मे स्थिराः ॥३८२॥
नमो माराय कामाय देवदेवस्य मूर्तये ।
ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां नमः क्षोभकराय ते ॥३८३॥
पूजितोऽसि मया भक्त्या त्वं देव्यै दातुमादरात् ।
अतस्त्वामुद्धरिष्यामि तत्रानुज्ञां प्रयच्छ मे ॥३८४॥
उत्पातजनितं दुःखं न कार्यं चेतसि त्वया ।
त्वच्छरीरेण दुर्गायाः करिष्याम्यर्चनं स्मर ॥३८५॥
आदिद्वितीययोः काम व्यत्ययाद्वर्णयोस्तव ।
मदनेत्यभिधा जाता दमनेति स्थितेऽक्षरे ॥३८६॥
जायतेऽतीव सन्तुष्टा तव देहेन कालिका ।
अतस्त्वामुद्धराम्यद्य कामागः क्षम्यतां मम ॥३८७॥

[पीठोपरि दमनोरःपणस्यतान्त्रिकमन्त्रः]

मन्त्रानष्टौ जपित्वैतानपरं तान्त्रिकं पठन् ।
मनुं समुद्धरेद्धीरो दमनं मदनात्मकम् ॥३८८॥

चैतन्यं पाशमाये च वधूर्मन्मथ एव च ।
चल द्वयं चालय द्विरुत्तिष्ठ द्वितयं तथा ॥३८९॥
सन्धिहीनं ब्रह्मपुत्र सर्वगर्वप्रभञ्जन ।
त्रिलोकीसुरवदप्रोच्य तथा दण्डादिपञ्चकम् ॥३९०॥
वार्षिकार्चां पूरय द्विरसिद्धात्साधनेत्यपि ।
सन्धानोनं सिद्धिमिति द्विः द्विर्देहि च दापय ॥३९१॥
कूर्चास्त्रशीर्षण्यन्ते च मन्त्र उद्धरणे मतः ।
नानाविधेषु वाद्येषु वादयत्सु ततः परम् ॥३९२॥
शङ्खतूर्यमृदङ्गेषु घण्टातोद्यधनेषु च ।
उत्थाय साधको दद्याद्दमनं कालिकोपरि ॥३९३॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण वारान् त्रीन् पठितेन च ।
जय जीवेति शब्दानां कोलाहलकुतूहलैः ॥३९४॥
आदौ तु त्रितयं दद्यान्मैथस्य प्रणवस्य च ।
रमात्रपास्मरवधूकालोपाशखगाधिपाः ॥३९५॥
शाकिनी डाकिनी चापि फेत्कारो प्रलयादिमा ।
ततश्च दुष्कृतं तन्द्रा मणिमाला तथैव च ॥३९६॥
सायुज्यान्तान्यथो शक्तिसर्वस्वादीनि पञ्च च ।
तेज आदित्यखादीनि नवात्मान्यनुपूर्वशः ॥३९७॥
कला शर्वो भयाढ्यानि नव कूटान्यनुक्रमात् ।
सद्योजातादिकाः कूटाः पञ्च श्रौत्रक्रमागताः ॥३९८॥
रसौ सरौ रह्रौ चापि हरावथ सह्रौ हसौ ।
उभौ च पूर्ववद्युक्तौ क्रमेणैव कलादिभिः ॥३९९॥
अष्टादशात्मान्यष्टादश भवन्ति वरानने ।
ऐकात्म्यादित्रयं शेषे षष्टिरेव भवन्ति हि ॥४००॥
पञ्चविंशतिबीजानि अधिकानि ततो दश ।
कूटानि भगवत्युक्त्वा वज्रकापालिनि स्मरेत् ॥४०१॥

सिद्धिशब्दात् पृथग्ब्रूयात् करालि विकरालि च ।
ततो वदेच्च मदनमनुगृह्णेति एककम् ॥४०२॥
दमनं गृह्णयुग्मं च शिवशक्तिपदादनु ।
सामरस्यं भजद्वन्द्वं ततः परसदाशिव ॥४०३॥
पर्यङ्कशायिनि प्रोच्य शिवमूर्ध्नि स्थितो वदेत् ।
नृत्य गाय हस क्रीड रम मोद द्वयं द्वयम् ॥४०४॥
ममानु वार्षिकार्चां वै समापय युगं ततः ।
मृत्युञ्जय सहेत्युक्त्वा धर्मचारिणि कीर्तयेत् ॥४०५॥
पुनः कौलव्रत प्रोच्य परिपालिन्यनूच्चरेत् ।
जय जीव कह त्राय स्फुर प्रस्फुर वर्द्धय ॥४०६॥
एतेषां युगलं ब्रूयादायादीन्यथ पञ्च च ।
नादान्तादिचतुष्कं च तावन्मारण्डकादि च ॥४०७॥
रञ्जनी च घटी चेति सिद्धिं मे देहि दापय ।
परमानन्दसन्दोहशालिनीति ततः परम् ॥४०८॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रवरुणमुण्डमालिनि चेत्यपि ।
सञ्चारिणि श्मशानाग्नीन् त्रिलोकीमारिणीत्यपि ॥४०९
गुह्यकालीति सकलकालिकामयशब्दतः ।
शरीरे जननीत्येवं तथा त्रिभुवनार्णतः ॥४१०॥
ततश्च परमार्थादिकूटत्रयमुदीर्यते ।
त्रिस्त्रिः कूर्चं तथास्त्रं च मनू हृच्छीर्षयोरपि ॥४११॥
मन्त्रेणानेन दमनं पीठस्योपरि विन्यसेत् ।
धूपदीपादिबाहुल्यवाद्यप्राचुर्यपूर्वकम् ॥४१२॥
मन्त्रेऽस्मिन् देवि विज्ञेया दशोना त्रिशताक्षरी ।
ततः स्तुतिं यथाशक्ति देव्याः कुर्वीत साधकः ॥४१३॥
उक्तैः पूर्वापरीभूतैर्विविधैः स्तोत्रपाठनैः ।
शक्तिपूजां ततः कृत्वा नैवेद्यान्युपयोजयेत् ॥४१४॥

महान्तमुत्सवं कुर्याद् गीतनृत्यादिवादनम् ।
एवं यः कुरुते पूजां दमनारोपणाभिधाम् ॥४१५॥
[दमनारोपणफलश्रुतिः]
भवन्ति नापदस्तस्य कदाचिदपि सुन्दरि ।
सिध्यन्ति तस्य मन्त्राश्च नारीणां वल्लभो भवेत् ॥४१६॥
सर्वसंपदयुतः श्रीमान् मोदते दिवि देववत् ।
मधुमासे तु संप्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥४१७॥
अथवा हरिनिद्रादि तदूर्ध्वमशुभावहा ।
प्रोक्ता दमनभञ्जीति महामायामहोत्सवः ॥४१८॥
पूजयिष्यन्ति ये मर्त्या दमनैस्तत्र कालिकाम् ।
ते यान्ति परमं स्थानं दमनस्य प्रभावतः ॥४१९॥
पुरा विवाहे संवृत्ते पार्वत्याः शङ्करस्य च ।
न बभूव तयोः केलिर्विना मदनजीनवम् ॥४२०॥
अत एव विधातव्या प्रतिवर्षमियं क्रिया ।
न कुर्वन्ति च ये तत्र दमनारोपणाभिधम् ॥४२१॥
तेषां पुण्यफलं नेष्टं जायते प्रतिवत्सरम् ।
दमनारोपणं कृत्वा तस्मिन्नहनि वापरे ॥४२२॥
आत्मानं भूषयेद्गन्धालङ्कारकुसुमाम्बरैः ।
जुगुप्सितोक्तिभिस्तत्र मादकद्रव्यभक्षणैः ॥४२३॥
भगलिंगोक्तिकथनैस्तदाकृतिविचेष्टितैः ।
प्रसूनताडनाक्षेपैः कर्दमक्रीडनैरपि ॥४२४॥
यथेष्टं विहरेत् स्त्रीभिः परिहासरसैः सह ।
तेन सन्तुष्यते कामो जगन्माता च कालिका ॥४२५॥
दमनारोपणं कृत्वा चण्डिकायै समर्प्य च ।
यत्फलं प्राप्यते सम्यङ् न तत्क्रतुशतैरपि ॥४२६॥
समुप्य दमनं चैत्रे तेन चाभ्यर्च्य कालिकाम् ।
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥४२७॥

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामधिवासनपूर्वकम् ।

[दुर्गापूजाविधानम्]

आरोप्य दमनं दुर्गां विधिनानेन पूजयेत् ॥४२८॥
मयोक्तेन वरारोहे तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ॥४२९॥
तत्फलं समवाप्यासौ देववद्दिवि मोदते ।
इति ते कथितं देवि दमनारोपणार्चनम् ॥४३०॥
सकलं विधिमन्त्राढ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

[पवित्रारोहणकर्मविधिः]

देव्युवाच
दमनारोपणं कर्म नाथ त्वत्तः श्रुतं मया ॥४३१॥
पवित्रारोहणं नाम श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ।
किं द्रव्यं कः प्रकारश्च इतिकर्तव्यता कथम् ॥४३२॥
किं फलं कश्च वा कालः सर्वं विस्तरतो वद ।
शृणु प्रिये सावधाना पवित्रारोहणं शुभम् ॥४३३॥
ब्रुवतो मे विशेषेण यथाविधिमतक्रमम् ।

[मेध्यवस्तुवर्णनम्]

वेदा देवाश्च यज्ञाश्च गाव आपः कुशा हविः ॥४३४॥
ज्ञानं व्रतानि धर्मश्च गोमयं पृथिवी द्विजाः ।
एतानि मेध्यादपि हि मेध्यानि मनुरब्रवीत् ॥४३५॥

[सूत्रमाहात्म्यम्]

एभ्योऽप्यतिपवित्रं हि सूत्रमित्यवदीद्विधिः ।
तच्च कार्पासजं ज्ञेयं शाणं वा पट्टजं तथा ॥४३६॥
सूचनात् [?] सूत्रमित्याहुः सर्ववैदिककर्मणाम् ।
सूत्रमाच्छादकं ज्ञेयमङ्गस्य हीविधायिनः ॥४३७॥
सूत्रेण बद्ध्यते सर्वं गुप्तं सूत्रेण वेष्टितम् ।
उन्मुक्तसूत्रः सर्वोऽपि लघुर्भवति भाविनि ॥४३८॥
गायत्री वेदमाता या ब्राह्मण्यं क्रतवोऽपि च ।
वेदा व्रतानि धर्मश्च क्रियाश्चाचारसम्भवाः ॥४३९॥

उपवीताभिधेनैव यज्ञसूत्रेण पार्वति ।
मन्त्रपूर्वकमाबद्धाः स्थिरतां यान्ति नान्यथा ।।४४०।।
लङ्घयन्तं स्वकं स्थानं गरुडेनातिवेगिना ।
पुरा विष्णुं महामाया बद्ध्वा सूत्रेण मन्त्रिणा ।।४४१।।
चिरं चिक्षेप पाताले बलैश्वर्यविलेपिनम् ।
अघोरकल्पे गार्ग्येण स्वावहेलनरोषिणा ।।४४२।।
हेमाङ्गदो महीपालस्त्रिषष्टचक्षौहिणीपतिः ।
शिलाकाष्ठोपमो युद्धे ससैन्यबलवाहनः ।।४४३।।
बद्धः सूत्रेण निश्चेष्टो महामन्त्राभिमन्त्रिणा ।
स्कन्धारूढं तथा सूत्रं द्विजातित्वावबोधकम् ।।४४४।।
तदभावस्तथा देवि सद्यः शूद्रत्वबोधकः ।
अभिमन्त्रितानि सूत्राणि वैदिकैर्मनुभिः प्रिये ।।४४५।।
उपवीतानि कथ्यन्ते धार्यन्तेंऽसे द्विजैस्तथा ।
तस्मात्सूत्रात्परं नास्ति कर्मसिद्धिविधायकम् ।।४४६।।

[उपवीतलक्षणम्]

कृतं नवगुणं सूत्रमुपवीतमुदीर्यते ।
त्रयाणां तद्धि वर्णानामंसे तिष्ठति सुन्दरि ।।४४७।।

[पवित्रपरिचयः]

तदेव सूत्रं देवानां कण्ठे बहुगुणीकृतम् ।
पवित्रमिति नाम्नैव कथ्यते निगमादिषु ।।४४८।।

[पवित्रारोहणपरिचयः]

सर्वे देवाश्च देवानां पूजोपकरणानि च
पवित्राणां समारोहान्निखिलान्येव निश्चितम् ।।४४९।।
पवित्राण्येव जायन्ते पवित्रं तेन चोच्यते ।
तस्यारोहणकर्मैव पवित्रारोहणं स्मृतम् ।।४५०।।

सूत्रं द्रव्यमशक्तौ स्याद्देवि कार्पाससंभवम् ।
शक्तौ तु कृमिकोषोत्थं पट्टसूत्रं प्रशस्यते ॥४५१॥
प्रकारस्तु विधानं स्यात्तत्ते वक्ष्याम्यनन्तरम् ।
कालो ग्रीष्मः शरद्वर्षा एषु मुख्यतमः प्रिये ॥४५२॥
केचिद्वसन्तमिच्छन्ति कालं माध्यमिकं बुधाः ।
नैव हेमन्तशिशिरौ प्रशस्येते कदाचन ॥४५३॥
यः कोऽपि कालो भवतु पवित्रारोहणे प्रिये ।
आवश्यकत्वेनोक्तोऽयं वर्षे वर्षे विशेषतः ॥४५४॥
उपवीतक्रियावद्धि देवानामिदमिष्यते ।
फलमेतस्य देवेशि मया वक्तुं न शक्यते ॥४५५॥

[पवित्रनिर्माणविधिकथनम्]

विधानं कथयिष्यामि तदाकर्णय यत्नतः ।
आम्नायभेदाद्भिद्यन्ते सूत्रवर्णाः सुरेश्वरि ॥४५६॥
पूर्वोर्द्ध्वयोः सितं सूत्रं रक्तं सूत्रं तथोत्तरे ।
पश्चिमेऽप्यथ पीतं हि अधोदक्षिणयोर्मतम् ॥४५७॥
न नील्याक्तं भवेत्सूत्रं षडाम्नायेषु कर्हिचित् ।
आम्नायेष्वथ सर्वेषु प्रशस्तं सितमेव वा ॥४५८॥
कुमारी कर्तितं सूत्रमतिप्राशस्त्यकारकम् ।
पतिवत्न्या कृतं मध्यमधमं विधवाकृतम् ॥४५९॥
विप्रक्षत्रार्यजातीनां पत्नीभीरचितं शुचि ।
आवर्जितं यच्छूद्राभिस्तदशुच्येव कथ्यते ॥४६०॥
विशेषतो ह्यमीषां हि विहितं पतिहीनया ।
वेश्यया कर्तितं सूत्रं मेध्यमित्यरे जगुः ॥४६१॥
रजक्या वाथ यान्त्रिक्या काषायपटयाऽथवा ।
गोप्या वाप्यथ मुण्डिन्या मालिन्या यद्विनिर्मितम् ॥४६२॥

तत्सूत्रजपवित्रेण सान्वयो नरकं व्रजेत् ।
तस्मात्सूत्रविनिर्माणे यत्नः कार्यो विशेषतः ॥४६३॥
मध्यमः स्त्रीग्रहीयस्तु पुम्वारः श्रेष्ठ उच्यते ।
षण्डाहोऽधमकल्पः स्यात् तिथी रिक्ता विवर्जिता ॥४६४॥
सापि भूततिथौ ग्राह्या चतुर्थी भौम एव च ।
रवौ तु सप्तमी वर्ज्या रिक्ता वर्ज्या गुरावपि ॥४६५॥
तिथिस्त्याज्या न कापीह भौमेन सहिता यदि ।
पुन्नक्षत्रस्य योगेन फलाधिक्यं हि जन्यते ॥४६६॥
तानीन्द्रजीवदिनकृद् विष्णवो निर्ऋतिस्तथा ।
केष्वप्येतेषु पूर्वेद्युः परेद्युरपि वा पुनः ॥४६७॥
सितं सूत्रं पवित्रं च अत्र यावदपेक्षितम् ।
तावदुक्तं तथाप्येनं कृत्वा निक्षिप्य चासने ॥४६८॥
कृताञ्जलिः पद्यमेनं मन्त्ररूपमुदीरयेत् ।
त्वं सूचनाद् वेदमखक्रियाणां
प्राप्तोऽसि कार्पासजसूत्रसंज्ञाम् ।
त्वया विनिर्माय बहूपवीतं
दास्येऽमरेभ्यो भव सूत्र पूतम् ॥४६९॥
गन्धाधिवासनं कर्म यदुक्तं दमनार्चने ।
तत्सर्वमत्र कर्तव्यं सोऽहं [?] व्यूहमथापि वा ॥४७०॥
तत्र द्रव्याणि तान्येव मन्त्ररीती तथैव ते ।
तथा कार्याणि पूर्वेद्युस्तद्दिने केचिदूचिरे ॥४७१॥
कापालिकानां सर्वेषां मौलेयानां तथैव च ।
पूर्वाह्णकृत्यमेतद्धि प्रिये नाह्नोऽपरस्य हि ॥४७२॥
अधिवासनिकं कृत्वा रक्षामप्यस्य यत्नतः ।
[देवानामुपवीतनिर्माणविधिः]
ग्रन्थिदानेन सर्वेषामुपवीतं प्रकल्पयेत् ॥४७३॥

भिन्नं भिन्नं हि तज्ज्ञेयं देवतानां शुचिस्मिते ।
आवृत्तिः कियती दीर्घा कियती वा कियत्यरुः ॥४७४॥
तन्निर्णयमिदानीं ते कथयामि मनोऽर्पय ।
यावत्यो देवताः सन्ति नित्ये नैमित्तिकेऽपि वा ॥४७५॥
याश्चावृतिपरीवाराः पञ्चायतनसंयुताः ।
अपेक्षितं हि सर्वेषां पवित्रमत्र कर्मणि ॥४७६॥
विशिष्य तदिदानीं ते कथयामि सुरार्चिते ।
पवित्रारोहणे व्यासं महान्तं केऽपि कुर्वते ॥४७७॥
आपेक्षिकमथैकेऽपि समासमितरे पुनः ।
तौ कापालिकमौलेयौ व्यासमार्गप्रवर्तिनौ ॥४७८॥
स्यातां माध्यमिकावेतौ भाण्डिकेरदिगम्बरौ ।
सामान्यकौलस्मार्तौ द्वावणीयोऽयनगामिनौ [?] ॥४७९॥
वक्ष्यामि व्यासमेवाहं पुरतो वरवर्णिनि ।
तयोस्तयोर्यद्यदूनं तद्वक्ष्ये तदनन्तरम् ॥४८०॥
कृत्येऽदसीये षण्णां हि मन्त्रकालक्रमाः समाः ।
अत्राधिकांस्तु चतुरो न्यासानाह पुरार्दनः ॥४८१॥
तान् पश्चानुद्धरिष्यामि येनोक्ताः पूजयोर्द्वयोः ।
अत्रांगुलं तु विज्ञेयमंगुष्ठस्यांगुलं स्वकम् ॥४८२॥
गुणानां वेष्टनं यत्तु सावृत्तिरिति कीर्तिता ।
यदन्तरान्तरा तस्य सूत्रेणावेष्टनं भवेत् ॥४८३॥
स ग्रन्थिरिति निर्दिष्टस्तदावृत्तिर्हि भंगिमा ।
यद्यद्धि तत्तद्देवानां तदिदानीं ब्रुवे तव ॥४८४॥
पूजागृहद्वार आदौ विज्ञेयं भामितांगुलम् ।
शतत्रयं तथावृत्तिः ग्रन्थयः पञ्च कीर्तिताः ॥४८५॥
भंगिमानस्तथा सप्त एवं सर्वत्र बुध्यताम् ।
द्वारपालस्यांगुलानि चतुर्विंशतिकानि हि ॥४८६॥

ग्रावृत्तिरत्र सूत्राणां द्विशताधिकसप्ततिः ।
ग्रन्थिर्नव समुद्दिष्टाः भंगयः पञ्च च प्रिये ॥४८७॥
ग्रंगुलानि द्वादश स्युरावृत्तिस्तु कला समा ।
ग्रन्थयोऽत्र त्रयो ज्ञेयास्तथा भंगी शरोन्मिता ॥४८८॥
एतस्य द्विगुणं ज्ञेयमर्घ्यस्य वरवर्णिनि ।
पूर्वोद्दिष्टं तु शंखस्य पीठं तत्त्रिगुणीकृतम् ॥४८९॥
ग्रङ्गुलानि जिनाङ्कानि तत्सार्द्धावृत्तिरिष्यते ।
ग्रन्थयोऽष्टौ च भंग्यः स्युः सप्तसंख्यानि पार्वति ॥४९०॥
यज्ञसूत्रमिदं प्रोक्तं महागणपतेर्मया ।
रवेरष्टादशांगुल्य ग्रावृत्तिस्तु शताधिका ॥४९१॥
चतुश्चत्वारिंशसंख्या ग्रन्थयो द्वादशैव तु ।
पञ्चैव भङ्गी चाप्यत्र विष्णोस्तु द्वादशांगुलम् ॥४९२॥
चतुर्विंशतिरावृत्तिर्ग्रन्थयोऽष्टौ समीरिताः ।
भंगी च सप्तसंख्याका महादेवस्य वै पुनः ॥४९३॥
एकादशांगुलानि स्युस्त्रयस्त्रिंशस्तथावृत्तिः ।
ग्रंथिर्भंगी पञ्च पञ्च गुरोस्तत्त्वांगुलं मतम् ॥४९४॥
सप्तविंशतिरावृत्तिर्ग्रन्थिर्भङ्गी च सप्त वै ।
विंशत्यंगुलसंख्याकं वटुकस्य विधीयते ॥४९५॥
सूत्रावृत्तिश्च षट्त्रिंशद्ग्रन्थिर्दश त्रिवक्रता ।
पञ्च विंशांगुलं क्षेत्रपालस्य त्रिदशावृत्तिः ॥४९६॥
ग्रन्थिरष्टौ पञ्च भंग्यस्त्रिंशद्वै भैरवांगुलम् ।
चत्वारिंशदथावृत्तिर्भंगी ग्रन्थिश्च षड्दश ॥४९७॥
युगस्य षोडशांगुल्योऽष्टादशावृत्तिरेव च ।
पर्वाणि चत्वारि तथा वक्रतायास्त्रयी तथा ॥४९८॥
वेदस्य च चतुःषष्टिरंगुलानां निगद्यते ।
आवृत्तिरेतद्द्विगुणा षोडशांशोऽस्य पर्व हि ॥४९९॥

भंगी च पर्वतुर्यांश आशापानां द्विसप्ततिः ।
आवृत्तिरर्द्धमेतस्य षोडश ग्रन्थयो मताः ॥५००॥
वक्रता पञ्च चोद्दिष्टा प्रेतानां षष्टिरंगुलम् ।
आवृत्तिस्त्रिशदत्र स्युः पर्वाष्टौ पञ्च वक्रता ॥५०१॥
यज्ञाख्यषोडशदलपद्मस्य त्रिंशदंगुलम् ।
आवृत्तिरत्र पंचाशत् परूंषि दश षोडश ॥५०२॥
अरालतात्रयी चापि तथाष्टाब्जस्य सुन्दरि ।
षोडशांगुलयः प्रोक्ता आवृत्तिर्द्व्यधिका दश ॥५०३॥

[मूलपात्रणां पवित्रविवरणम्]

ग्रन्थिर्नव च तत्र्यंशवक्रता परिकीर्तिता ।
षण्णां हि मूलपात्राणां पवित्रं विवृणोमि ते ॥५०४॥
षट्त्रिशदंगुलीकं तद्विंशत्यभ्यधिकं शतम् ।
आवृत्तिस्तत्र सूत्राणां षट्त्रिंशद् ग्रन्थयोऽपि च ॥५०५॥
अरालता च षट्संख्या श्रीपात्रस्येदृशी स्थितिः ।
अंगुल्यः षोडश मिताः कुलकुम्भस्य पार्वति ॥५०६॥
तथा द्वात्रिंशदावृत्तिर्ग्रन्थयो द्वादशेरिताः ।
वक्रता पञ्च तत्रैव सुधादेव्या निशामय ॥५०७॥
चतुर्विंशतिरंगुल्य एतस्य द्विगुणावृत्तिः ।
पर्वाण्यष्टौ कीर्तितानि भङ्ग्यः पंच चेरिताः ॥५०८॥
पवित्रं शक्तिपात्रस्य द्वादशांगुलसंमितम् ।
ग्रन्थयः पंचभंग्यश्च त्रिंशदावृत्तिरेव च ॥५०९॥
गुरोस्तु षोडशांगुल्य आवृत्तिः सप्तविंशतिः ।
पर्वाण्यष्टौ वक्रता च नवैव स्युः सुरेश्वरि ॥५१०॥
भोगस्य द्वादशांगुल्यः षोडशावृत्तिरेव च ।
परुंषि द्वादश तथा चतस्रो वक्रता अपि ॥५११॥
विंशाङ्गुलं वीरपात्रे द्वात्रिंशच्च गुणास्तथा ।
पर्वाणि पञ्च भङ्गी तु सप्त वा पञ्च वा भवेत् ॥५१२॥

चतुर्दशाङ्गुलं ज्ञेयं कुलपात्रपवित्रकम् ।
एकविंशतिरावृत्तिर्नवग्रन्थिस्त्रिवक्रता ॥५१३॥

[गुह्यकाल्याः नवमुखानां पवित्रविवरणम्]

अथ वक्ष्ये नवास्यानां प्रत्येकं ते पवित्रकम्
अष्टादशांगुलानि स्युर्द्वीपिवक्त्रपवित्रकम् ॥५१४॥
सूत्रावृत्तिस्तु षड्त्रिंशत्परुषां दशकं तथा ।
वक्रताश्चापि पञ्च स्युः सिंहास्यस्यैकविंशतिः ॥५१५॥
पञ्चचत्वारिंशगुणा ग्रन्थयो द्वादश स्मृताः ।
चतस्रो भंगयश्चात्र फेरुवक्त्रे जिनांगुलम् ॥५१६॥
द्विचत्वारिंशदावृत्तिः ग्रन्थयः षोडशेरिताः ।
वक्रता सप्त निर्दिष्टा कपिवक्त्रेऽङ्गुला दश ॥५१७॥
आवृत्तिस्त्रिगुणा ज्ञेया ग्रन्थिभंग्योस्त्रयं त्रयम् ।
ऋक्षास्ये त्रिंशदंगुल्यः पंचाशत्संख्यका गुणाः ॥५१८॥
ग्रन्थयः सप्त निर्णीताश्चतस्रस्तदरालताः ।
नरवक्त्रा गुह्यकाली येषु पंक्त्यन्तरस्थिताः ॥५१९॥
सा मुख्या तत्पवित्रं हि सर्वशेषे प्रवक्ष्यते ।
गरुडास्यस्य कर्तव्यं तिथ्यङ्गुलमितैः प्रिये ॥५२०॥
गुणाश्चाष्टाविंशतिः स्युस्तत्तूर्यांशमितं परुः ।
अरालता पञ्च तथा मकरास्यस्य विंशतिः ॥५२१॥
अंगुलानि गुणा दन्ता परुरश्वस्त्रिभङ्गता ।
अंगुल्यो गजवक्त्रस्य षष्टिसंख्याः प्रकीर्तिताः ॥५२२॥
अष्टोत्तरशतावृत्तिः सूत्राणामत्र सुन्दरि ।
तथा पर्वाणि षट्त्रिंशद्भङ्ग्यो द्वादशापि च ॥५२३॥
भाङ्गुलं वाजिवक्त्रस्य त्रिषष्टिस्तस्य चावृत्तिः ।
अर्कसंख्या ग्रन्थयश्च वक्रतर्तुसमा तथा ॥५२४
रविदन्तांगुलावृत्तिः ग्रहेषु पर्ववक्रते ।
पवित्रमुग्रचण्डाया अष्टावर्चनकर्मणि ॥५२५॥

षोडशांगुलयो द्वात्रिंशदावृत्तिः परुः स्वराः ।
त्रिभंगी च महालक्ष्म्या मातंग्या अंगुलं द्विषट् ॥५२६॥
आवृत्तिर्विंशतिरपि ग्रन्थिर्भङ्ग्यो दश त्रयः ।
अष्टादशांगुलं सूत्रं गुणाश्चाप्यष्टविंशतिः ॥५२७॥

[भुवनेश्वर्याः पवित्रविवरणम्]

पवित्रं भुवनेश्वर्याः पर्वभंग्यौ नव श्रमाः [?] ।
एकादशांगुलानि स्युरावृत्तिः पंचविंशतिः ॥५२८॥
परुर्वक्रत्वमश्वेषु हरसिद्धापवित्रके ।

[अन्नपूर्णायाः पवित्रविवरणम्]

पवित्रमन्नपूर्णाया अंगुल्यानि चतुर्दश ॥५२९॥
पंचविंशतिरावृत्तिः परुर्भंगी च षड्गुणाः ।

[सरस्वत्याः पवित्रविवरणम्]

शक्रांगुलं सरस्वत्याः सूत्रं षट्त्रिंशसंख्यकम् ॥५३०॥
परुंषि दश भंग्यश्च चतस्रः परिकीर्तिताः ।

[जयदुर्गायाः पवित्रविवरणम्]

पवित्रं जयदुर्गायास्त्रयोदशमितांगुलम् ॥५३१॥
अष्टचत्वारिंशगुणं ग्रन्थिभङ्ग्यौ समे शराः ।

[त्रिपुरसुन्दर्याः पवित्रविवरणम्]

सूत्रं त्रिपुरसुन्दर्याः षोडशाङ्गुलसम्मितम् ॥५३२॥
आवृत्तिरुदिताशीतिः षोडश ग्रन्थयोऽपि च ।

[सिद्धिलक्ष्म्याः पवित्रविवरणम्]

वक्रता पञ्च निर्दिष्टा सिद्धिलक्ष्म्यास्तथांगुलम् ॥५३३॥
गुणावृत्तिश्च षट्त्रिंशत्पर्वाणि द्वादशापि च ।

[कुब्जिकायाः पवित्रविवरणम्]

भंग्यस्त्रयः कुब्जिकाया विंशत्यंगुलसंमितम् ॥५३४॥
चतुःषष्टिस्तथावृत्तिरष्टौ पर्वेषु वक्रता ।

[उग्रतारायाः पवित्रविवरणम्]

अंगुल्यान्युग्रतारायाश्चतुर्दशमितानि हि ॥५३५॥

आवृत्तिरेतद् द्विगुणा ग्रन्थिर्दश त्रिजिह्मता ।

[छिन्नमस्तायाः पवित्रविवरणम्]

नवांगुलं तिथिगुणं षट्पर्वाणि त्रिभंगता ॥५३६॥

[चामुण्डायाः पवित्रविवरणम्]

पवित्रं छिन्नमस्तायाश्चामुण्डाया जिनांगुलम् ।
पंचाशद्गुणितं सूत्रं ग्रन्थिरष्टादशापि च ॥५३७॥

[शिवदूत्याः पवित्रविवरणम्]

भंगी षडुदिता तत्र शिवदूत्या घनांगुलम् ।
एकपंचाशदावृत्तिः पर्वाण्यष्टौ त्रिवक्रता ॥५३८॥

[कालसंकर्षिण्याः पवित्रविवरणम्]

कालसंकर्षिणीसूत्रं चतुर्विंशांगुलं मतम् ।
षण्णवत्यावृता युक्तं पर्वं षोडशकान्वितम् ॥५३९॥

[चण्डेश्वर्याः पवित्रविवरणम्]

सप्तभंगी वृतं चापि चण्डेश्वर्या जिनाङ्गुलम् ।
आवृत्तिः षष्टिरुदिता द्वात्रिंशद्ग्रन्थयोऽपि च ॥५४०॥

[मातृगणस्य पवित्रविवरणम्]

वक्रताः पञ्च निर्दिष्टास्तिथिर्मातृगणांगुलाः ।
द्विचत्वारिंशदावृत्तिर्वसुग्रन्थिस्त्रिवक्रता ॥५४१॥

[नवग्रहाणां पवित्रविवरणम्]

नवग्रहाणां भाङ्गुल्य एकाशीत्यावृत्तिस्तथा ।
तथा पर्वाणि षट्त्रिंशद्भंगयस्तिस्र एव च ॥५४२॥

[पंचानां मुख्यकालीनां पवित्रविवरणम्]

मुख्यानामथ पञ्चानां सृष्टयादीनां वरानने ।
कालीनामधुना वच्मि पवित्राणि क्रमेण हि ॥५४३॥
पंचविंशत्यंगुलानि अष्टोत्तरशतावृत्तिः ।
चतुर्विंशतिपर्वाणि तिस्र एव हि वक्रताः ॥५४४॥

सप्तविंशत्यंगुलानि आवृत्तिः षष्टियुक् शतम् ।
द्वात्रिंशदत्र पर्वाणि जिह्मतापि च पूर्ववत् ॥५४५॥
जिनसंख्यांगुलावृत्ती परूंषि किल विंशतिः ।
भंगयोऽत्रापि तावत्यः सप्तविंशतिरंगुलाः ॥५४६॥
शताधिकाशीतिगुणा ग्रन्थयस्त्वेकविंशतिः ।
त्रिवक्रता जिनांगुल्यश्चत्वारिंशच्छतद्वयम् ॥५४७॥
गुणाः विंशतिपर्वाणि जिह्मतात्रितयं तथा ।
एकैकस्या अथैतस्याश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥५४८॥
परीवाराः स्मृताः काल्यास्तत्तासामेकमेव हि ।
क्रमेण वक्ष्यते देवि पञ्चानामपि तत्त्वतः ॥५४९॥
षड्विंशत्यंगुलं सूत्रमाद्याया आवृत्तिः पुनः ।
अशीतिश्च चतस्रश्च पर्वविंशतिरष्ट च ॥५५०॥
चतस्रो भंगयश्चापि द्वितीयाया मनुद्वयम् ।
विंशत्युत्तरमावृत्तिः शतं पर्व नखोन्मितम् ॥५५१॥
वेदसंख्या भंगयश्च द्वाविंशत्यंगुलं ततः ।
आवृत्तिः षण्णवतियुक् कलासंख्यं परुस्तथा ॥५५२॥
तिस्रश्चारालतास्तत्र तुर्यायाः सप्तविंशतिः ।
शतद्वयं गुणनिका ग्रन्थयो द्वादशैव तु ॥५५३॥
भंगयः पञ्च निर्दिष्टाः पञ्चम्या अवधारय ।
अष्टादशांगुलमितं गुणाश्चात्र शतद्वयम् ॥५५४॥
सप्तत्यधिकमीशानि ग्रन्थयः षोडश स्मृताः ।

[मुख्यगुह्यकाल्याः पवित्रविवरणम्]

त्रितयं वक्रतायाश्च मुख्यायाः शृण्वतः परम् ॥५५५॥
चतुर्विंशतिसंख्याकमंगुलं परिकीर्तितम् ।
सूत्राणां गणनं चात्र षडुत्तरशतत्रयम् ॥५५६॥

कलासंख्यानि चाप्यत्र पर्वाणि जगदीश्वरि ।
वक्रताश्चेषुसंख्याका इत्येतस्य विनिर्णयः ॥५५७॥
नरवक्त्रा तु या मुख्या गुह्यकाली प्रकीर्तिता ।
पवित्रमीदृशं तस्या येन कर्म समाप्यते ॥५५८॥
इति ते क्रमशो देवि देवतानां पवित्रकम् ।
सर्वासामुक्तमुद्धृत्य स्वस्वलक्षणशालि हि ॥५५९॥
समर्पणे य एतासामेतासां विहितो मनुः ।
तत्ते निर्वर्णयिष्यामि तत्तत्समय एव हि ॥५६०॥
[पवित्रारोहणकालिकपूजाविधिविवरणम्]
अथ नैमित्तिकसममारभेतार्चनं बुधः ।
पीठसंमार्जनं कुर्याद्यत्नेनैवात्र सुन्दरि ॥५६१॥
छागाश्चावश्यकत्वेन दातव्या बलिकर्मणि ।
पात्राण्यत्र षडेव स्युर्यान्युक्तानीह नैत्यके ॥५६२॥
नैवेद्यधूपदीपानां कर्तव्या भूयसी स्थितिः ।
आकारणीया यत्नेन स्वस्ववर्ग्यास्तु देशिकैः ॥५६३॥
कुसुमैस्तोरणं कार्यं बहिरन्तर्गृहस्य च ।
पवित्रारोहणे कार्ये न्यासा ये पूर्वमीरिताः ॥५६४॥
कर्तव्यत्वेन देवेशि तान् कुर्यात्प्रथमं शनैः ।
विराण्न्यासं ततः कुर्याद्योगरत्नाह्वयं तथा ॥५६५॥
सामान्यं च विशेषं च स्थापयेदर्घयोर्द्वयम् ।
सर्वोपकरणैर्युक्तं शङ्खमत्र प्रकल्पयेत् ॥५६६॥
शोधनं सर्ववित्तानां यत्नेनैव समाचरेत् ।
विशेषतः प्रकुर्वीत प्रसन्नामांसयोः प्रिये ॥५६७॥
कुलकुम्भस्य संस्कार आवश्यकतया मतः ।
कृताकृतावेक्षणार्थं गुरुः स्थाप्योऽग्रतस्तथा ॥५६८॥

क्रियायां सावधानैश्च भवितव्यं हि साधकैः ।
आदरेण व्यवस्थाप्या देव्यग्रे शक्तयोऽपि च ॥५६९॥
निद्रां निन्दां तथा हास्यमालस्यं च प्रमादिताम् ।
शोकं क्रोधं च कामं च भयं लोभं मदं त्वराम् ॥५७०॥
चापल्यमङ्गविकृतिं वृथावल्गनमेव च ।
जाड्यं च षोडशेमानि प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥५७१॥
इत्थं सर्वत्र विहितावधानः प्रयतः शुचिः ।
पवित्रारोहणीयांश्च न्यासांश्चतुर आरभेत् ॥५७२॥
निर्वाणं सामरस्यं च विश्वरूपं तथैव च ।
नाडीचक्राह्वयं तुर्यं क्रमेणैतान् समाचरेत् ॥५७३॥

[निर्वाणन्यासोद्धारः]

निर्वाणस्योद्धृतिं वक्ष्ये द्विविधां शृणु सादरा ।
अस्य निर्वाणन्यासस्य ऋषिः कपिल उच्यते ॥५७४॥
बृहती छन्द आख्यातं गुह्यकाली च देवता ।
तारमैधे बीजशक्ती प्रासादः कालिकं मतम् ॥५७५॥
कैवल्यमोक्षोपपदात्साधने विनियोगता ।
उद्धारमथ सामान्यं वदामि पुरतस्तव ॥५७६॥
पञ्च बीजानि सर्वत्र स्थिराणि प्रथमं किल ।
ततो भिन्नानि नामानि विभक्तेरादितास्पृशः ॥५७७॥
एकत्वे वा बहुत्वे वा वचने संस्थितानि हि ।
उल्लेखेनैव तद्बोध्यं तत एकं पदं पुनः ॥५७८॥
भिन्नं भिन्नं तच्च ङेन्तं बहुत्वैकत्वमादिवत् ।
ततः क्रियापदं चैकं स्थिरत्वेन व्यवस्थितम् ॥५७९॥
पुनः कपर्दकं चैकं चतुरक्षरबृंहितम् ।
एतस्याप्यनवस्थाण्णु चतुर्वर्णं क्रियापदम् ॥५८०॥

सर्वत्रैव च सन्धानं विधेयं वरवर्णिनि ।
ततो नु पञ्च बीजानि स्थिराणि प्रतिमन्त्वपि ॥५८१॥
प्रथमासप्तमीगे द्वे ये पदे पुर ईरिते ।
ते तृतीयाद्वितीयान्ते पुनः कार्यं क्रमेण हि ॥५८२॥
क्रियापदं पुनश्चैकं चतुर्वर्णं स्थिरं मतम् ।
वाक्यत्रयं ततः स्थेय एकैकं चतुरक्षरम् ॥५८३॥
वारत्रयं ततश्चैकं बीजं स्थाष्णु समीरयेत् ।
ततः पदे द्वे कूटस्थे वाच्ये कर्तृक्रियापदे ॥५८४॥
विहिते चाष्टभिर्वर्णैर्बीजं चैकं ततः स्थिरम् ।
सर्वशेषे चतुर्वर्णी सामान्योद्धृतिरीदृशी ॥५८५॥
अतो विशेषोद्धारं ते प्रवदाम्यवधारय ।
वेदादिरथ चैतन्यं प्रासादश्च परा तथा ॥५८६॥
भैरवी चेति बीजानि पञ्चादौ कीर्तितानि हि ।
भिन्नभिन्नपदं वक्ष्ये विभक्त्योरथ सुन्दरि ॥५८७॥
वाक् सत्ता भावना माया शान्तिः कान्तिस्तथैव च ।
निवृत्तिश्च प्रवृत्तिश्च तितिक्षा तदनन्तरम् ॥५८८॥
अथो मुमुक्षेन्द्रियाणि प्रकृतिस्तदनूद्यते ।
त्रयोदशी भवेत् पञ्च तन्मात्राणि सुरेश्वरि ॥५८९॥
चित्तवृत्तिश्च विकृतिश्चेष्टा बुद्धिरितः परम् ।
उत्पत्तिश्च तथा विद्या वासना संविदेव च ॥५९०॥
जीवात्मा च तुरीया च शक्तिर्गम्या ततः परम् ।
प्रसन्ना सर्वशेषे तु पंचविंशतिरित्यमूः ॥५९१॥
अथापरे पुनः शब्दा एतेषामनु ये स्थिताः ।
प्राणाश्च परमार्थश्च चैतन्यं च तृतीयकम् ॥५९२॥
ततो लिंगशरीरं च वैराग्यं च विवेकवत् ।
ततो ज्ञानं च संसारः विषयो योग एव च ॥५९३॥

मनश्च पुरुषश्चैव ततोऽहंकार एव च ।
प्रपञ्चश्च तथोपाधिः शरीरं धर्म एव च ।।५९४।।
प्रलयश्च प्रबोधश्च भोग आनन्द एव च ।
परमात्मा च निर्वाणं शिवोऽप्यमृतमेव च ।।५९५।।
पञ्चविंशतिसंख्याकान्येतान्यपि पदानि हि ।
आद्यं क्रियापदं यत्तल्लीयतामिति बुध्यताम् ।।५९६।।
लीयन्तां वै कर्तृपदबहुत्वे परिकीर्तयेत् ।
एकीभावपदं पश्चात् तत्पश्चाद्यत्क्रियापदम् ।।५९७।।
आपद्यतां तद्भवति बहुत्वे तु बहुत्वयुक् ।
भौवनेशी योगिनी च कूर्चः स्त्री शाकिनी तथा ।।५९८।।
तृतीयाया द्वितीयाया विभक्तेः साधयामि हि ।
विज्ञेयं तत्सदस्येकं द्वितीयं तच्चिदस्यपि ।।५९९।।
तद्ब्रह्मासि तृतीयं च वाक्यत्रयमिदं स्मृतम् ।
त्रिरावृत्तिकरूपस्तु प्रणवः परिकीर्तितः ।।६००।।
अष्टाक्षरी तु या सा हि निर्वाणं मे समृद्ध्यताम् ।
ह्यः सोऽहं च शिरः शेषे विशेषोद्धृतिरीदृशी ।।६०१।।
स्थानानि कलयेदानीं न्यासस्य त्रिदशेश्वरि ।
दक्षांसश्चैव वामांसो दक्षोरोः सन्धिरेव च ।।६०२।।
वामोरुसन्धिः कण्ठश्च वामपार्श्वञ्च नाभियुक् ।
दक्षपार्श्वं च हृदयं पृष्ठं स्याद्वामबाहुयुक् ।।६०३।।
दक्षबाहुर्वामपादं दक्षपादश्च कन्धरा ।
मुखं च वामकर्णश्च दक्षकर्णस्ततः परम् ।।६०४।।
कपोलौ वामदक्षौ द्वौ वामदक्षाभिधे दृशौ ।
ललाटं ब्रह्मरन्ध्रं च व्यापकं सर्ववार्ष्मणम् ।।६०५।।
न्यसनीयान्यवयवान्येतानि कथितानि ते ।
निर्वाणनामा न्यासोऽयं कार्यः परमशोभनः ।।६०६।।

पवित्रारोहणे कार्ये प्रसन्नाविधिकर्मणि ।
आवश्यकत्वमेतस्य काम्यत्वमपरत्र च ॥६०७॥
मुमुक्षुभिर्विशेषेण कार्यः संसारभीरुभिः ।

[सामरस्यन्यासविधिः]

सामरस्याख्यमपरं न्यासं समवधारय ॥६०८॥
एतस्यापि हि नित्यत्वं तत्राप्यत्रापि पार्वति ।
न्यासस्य सामरस्यस्य हारीत ऋषिरीरितः ॥६०९॥
जगती छन्द आख्यातं गुह्यकाली च देवता ।
डाकिनी बीजमुदितं कामिनी शक्तिरेव च ॥६१०॥
मदनः कीलकं चात्र सामरस्यकृतावपि ।
विनियोगः समुद्दिष्टो द्वयोस्तत्तत्पदार्थयोः ॥६११॥
गौणीमुद्धृतिमाख्यास्ये तवाथास्य सुरेश्वरि ।
पश्चान्मुख्यामपि व्यक्त्या येनासौ विशदो भवेत् ॥६१२॥
आदावेकं स्थिरं बीजं बीजे द्वे तदनन्तरम् ।
भिन्नभिन्ने प्रति मनु स्यातां द्वे च पदे ततः ॥६१३॥
पृथग्रूपे समसिते षष्ठचा द्वित्वे स्थिते अपि ।
ततो विंशतिवर्णास्तु कालव्यापितयोदिताः ॥६१४॥
ततो नु बीजमेकैकं सर्वत्र पृथगेव हि ।
सप्तम्येकत्वगश्चैव शब्दस्तस्यानु भेदभाक् ॥६१५॥
क्रियापदं ततोऽप्येकं कूटस्थं परमेश्वरि ।
द्विवर्णं सर्वशेषे स्यात्पदं चोभयथाऽव्ययम् ॥६१६॥
इत्युद्धारो हि सामान्यो विशेषमवधारय ।
आदावागममूर्द्धाख्यस्ततश्चापि धरा जलम् ॥६१७॥
तजो वायुरथाकाशः पुरुषो मन एव च ।
भूतं च परमात्मा च रावः प्रासाद एव च ॥६१८॥

अमृतं सर्वशेषे च बीजानि द्वादशैव तु ।
पुनरन्यानि बीजानि तत्पराणि निशामय ॥६१६॥
गन्धो रसश्च रूपं च स्पर्शः शब्दस्तथैव च ।
प्रकृतिश्च विकारश्च शरीरं तदनन्तरम् ॥६२०॥
जीवात्मा योगिनी चापि कामिनी मैथमेव च ।
पदद्वयं यदुक्तं हि तस्याद्यं कलयाधुना ॥६२१॥
पृथिवी च जलं तेजो वायुराकाशमेव च ।
पुरुषश्च मनः पञ्च महाभूतं ततः परम् ॥६२२॥
परमात्मा च मन्त्रश्च शिवोऽमृतमतः परम् ।
पदं द्वितीयं गन्धः प्राग्रसो रूपं तथैव च ॥६२३॥
स्पर्शः शब्दश्च प्रकृतिर्विकारश्च शरीरयुक् ।
जीवात्मा देवता शक्तिः प्रसन्ना सर्वशेषगा ॥६२४॥
कूटस्था विंशतिर्वर्णाः श्रोतव्या अधुना त्वया ।
एकीभावेनेति पदमाद्यं भवति तत्र हि ॥६२५॥
अभेदमिति चान्यत् स्यात् साधयामीति चापरम् ।
सामरस्यपदं तुर्यमस्मादापादयामि च ॥६२६॥
स्युः सन्धिताः सर्वं एव पदयोः पूर्वयोरपि ।
यानि बीजानि भिन्नानि पुर एषां भवन्ति हि ॥६२७॥
तानीदानीं प्रवक्ष्यामि न्याससिद्ध्यर्थमीश्वरि ।
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् श्रोत्रमथ पञ्चमम् ॥६२८॥
महत्तत्त्वं च जीवश्च तन्मात्रं ब्रह्मकूटकम् ।
अपा कूर्चौ ब्रह्मबीजं सर्वशेषे उदाहृतम् ॥६२६॥
सप्तम्येकत्वगांछब्दानधुना कलय प्रिये ।
शब्दोऽतः केवलं ग्राह्यो न तु बीजं पदोद्धृतम् ॥६३०॥
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् ततः श्रोत्रमेव च ।
महत्तत्वं च जीवश्च तन्मात्रं ब्रह्म चेत्यपि ॥६३१॥

चित्तं च भावनाः ब्रह्म द्वादशैवं भवन्ति हि ।
क्रियापदं जुहोमीति सप्तम्यन्तात् पदादनु ॥६३२॥
द्विधाऽव्ययं पदं यत्तत्स्वाहेति परिनिष्ठितम् ।
न्यसनीयस्थानमेषां स्युर्मनावेष यद्यपि ॥६३३॥
अग्रे भिन्नप्रकारत्वात् पृथगेव ब्रवीमि ते ।
नासिका च तथा जिह्वा नेत्रं सर्वांगमेव च ॥६३४॥
कर्णौ ललाटं भ्रूमध्यं स्कन्धौ हृदयमेव च ।
जठरं ब्रह्मरन्ध्रं च व्यापकं सर्वशेषगम् ॥६३५॥
ईदृशी सामरस्यस्य विशेषोद्धृतिरुच्यते ।
कैवल्यपदमिच्छूनां प्रसन्नाविधिकारिणाम् । ॥६३६॥
पवित्रारोहणकृतां नित्यत्वेन व्यवस्थितः ।
इमं तुरीयानिर्वाणशाम्भवोपासकास्त्रयः ॥६३७॥
न्यासं विदेहकैवल्यप्राप्त्यर्थं कुर्वतेऽन्वहम् ।
एतस्य महिमानं सा जानाति जगदम्बिका ॥६३८॥
उतोऽहं वेद्मि हारीतो वेत्ति नैवेतरो जनः ।
एतस्य सतताभ्यासाद् योगसिद्धिः प्रजायते ॥६३९॥
त्रिवर्षं कुर्वतो ह्यात्मसाक्षात्कारश्च पार्वति ।
अयं न विस्तरो न्यासो वर्णवाक्यपदक्रमैः ॥६४०॥
महिम्नो योऽस्य विस्तारो वक्तुं शक्नोमि तं न हि ।

[विश्वरूपन्यासविधिः]

विश्वरूपमथ न्यासं कथयामि महाफलम् ॥६४१॥
चिकीर्षयापि यस्य स्युर्भुक्तयो मुक्तयोऽपि च ।
यदा सुराणां सर्वेषां तेजोभिर्गुह्यकालिका ॥६४२॥
समुत्पन्ना रम्भकल्पे त्रिपुरघ्न इमं तदा ।
उपायनीचकारास्यैरुर्वंदेवसमाजगः ॥६४३॥

त्रयस्त्रिंशत्कोटिमिता देवानां जातयो हि याः ।
निर्मितावयवा ताभिराविरासीत्करालिनी ॥६४४॥
सर्वत्रिदशतेजोभिः कल्पितांगतया हि सा ।
विश्वरूपेति विख्याता विश्वेषां रूपधारणात् ॥६४५॥
तत्कालीनतयाप्येष विश्वरूपाख्यया स्मृतः ।
महिमा ज्ञायतेऽमुष्य यावान्न्यासस्य वै मया ॥६४६॥
एतत्करणजन्यं यत्फलं न ज्ञायते पुनः ।
एतस्य सतताभ्यासादनुभावी भवेज्जनः ॥६४७॥
कर्मण्यमुष्मिन्नस्योक्तं [?] प्राधान्यमिति सांप्रतम् ।
ब्रवीमि विश्वरूपाख्यं न्यासमुद्धृतिपूर्वकम् ॥६४८॥
न्यासस्य विश्वरूपस्य ऋषिरस्य कपिष्ठलः ।
छन्दश्च बृहती प्रोक्ता देवता गुह्यकाल्यपि ॥६४९॥
पराकूटं बीजमुक्तं चित्कूटं शक्तिरेव च ।
ज्येष्ठकूटं कीलकं च विनियोगश्च मुक्तये ॥६५०॥
द्विविधामुद्धृतिं चास्येदानीं कलय चेतसा ।
अष्टौ बीजानि पुरतः स्थिरत्वेन स्थितानि हि ॥६५१॥
अस्यानु कूटमेकं हि तदपि स्थिरताश्रितम् ।
ततः परं भिन्नभिन्नाः शब्दाः कमललोचने ॥६५२॥
स्थिताः षष्ठ्या बहुत्वेऽमी सर्वं एवाप्यविग्रहाः ।
युक्ताश्चतुरशीत्या च संख्यया नियतार्णिनः ॥६५३॥
तत एकं पदं स्थाणु प्रथमाद्यवचः स्थितम् ।
तत्परं चापरं चेदृक् तद्द्व्यर्णं चार्द्धयुक् परम् ॥६५४॥
ततोऽनु शब्दास्तरलास्तावता संख्ययान्विताः ।
स्थिता विभक्त्या वाद्यायामेषां वचननिर्णयः ॥६५५॥
विशेषोद्धारमध्ये तु बोध्य उल्लेखरीतितः ।
ततः पदं पुनश्चैकं स्थिरत्वेन व्यवस्थितम् ॥६५६॥

आद्यां विभक्तिं विष्टभ्य स्थितमेकाक्षरं च तत् ।
अमुष्य वचनस्यापि व्यवस्था पूर्ववन्मता ॥६५७॥
एतस्यानन्तरमपि शब्द एकः स्थिरत्वभाक् ।
षष्ठ्येकत्वे स्थितश्चापि वर्णैकघटितोऽपि च ॥६५८॥
पुनः शब्दाश्च तावन्तः पृथगाकारधारिणः ।
एषामपि पुरो खेत्या वचनस्य वरास्थितिः ॥६५९॥
ततोऽनु बीजमेकैकं भिन्नं भिन्नं व्यवस्थितम् ।
ततो ङेन्तत्रयं स्थाण्णु पदरूपं वरानने ॥६६०॥
पुनरप्येककं बीजं सर्वत्र पृथगेव हि ।
अलिंगवचने द्वे तु पदे स्यातां ततः परे ॥६६१॥
वर्णैश्चतुर्भिर्घटिते कालव्यापितया स्थिते ।
सामान्यामुद्धृतिं प्रोच्य विशेषमधुना ब्रुवे ॥६६२॥
प्रणवो भौवनेशी च योगिनी कूर्च एव च ।
कामिनी शाकिनी चैव डाकिनी तदनन्तरम् ॥६६३॥
फेत्कारी चेति बीजानि स्युरष्ट कथितानि ते ।
कूटं च पौष्करं ज्ञेयमतः शब्दान् शृणूत्तरान् ॥६६४॥
आच्छादका अन्तकाश्च लोकाश्चैव तृतीयकाः ।
ज्योतिश्चक्राणि तदनु होमकालश्च खेचराः ॥६६५॥
मानसा अथ यक्षाश्च ज्वलन्तस्तदनन्तरम् ।
मदयन्तश्च तदनु तथा कालविभाजकाः ॥६६६॥
गणाधिपाश्च सेनान्यस्तपन्तः स्युरितः परम् ।
ततः स्विष्टकृतश्चापि तेजस्विन इतोऽप्यनु ॥६६७॥
परं त आगमाश्चापि तत आदेशकाः स्मृताः ।
देवमातर इत्येवं योगिनः स्युरितोऽप्यनु ॥६६८॥
ततो रात्रिंचराः सर्पाः कव्यवाहा इतोऽप्यनु ।
तथा विश्वसृजश्चापि देवशिल्पिन एव च ॥६६९॥

कलयन्तश्च तत्पश्चात्तथा संहारका अपि ।
अवकाशास्तथोत्पादका गायन्तस्ततः परम् ॥६७०॥
देवा अप्यथ क्रव्यादा दिगीशाश्च कपर्दिनः ।
षड्त्रिंशत्तमता गण्या भिषजो वित्तराशयः ॥६७१॥
दैत्यमातर इत्थं च शून्यानि तदनन्तरम् ।
आदितेयाः काश्यपयस्तिमिरघ्ना इतोऽप्यनु ॥६७२॥
तथा पारिषदा ज्ञेया वर्षन्तः स्युः परेण च ।
चतुर्दशपदाद्विद्या ऋद्धयो विषयिणस्तथा ॥६७३॥
यतयश्च तथा रूपाजीवाः स्युस्तदनन्तरम् ।
निःसीमाः पक्षिणश्चापि अस्थिराणि तथैव च ॥६७४॥
यादःपतय एवं स्युर्भोगवन्तस्तथैव च ।
षट्षष्टितमता व्याप्ता वित्तेशाः स्वर्गसाधनाः ॥६७५॥
स्यन्दन्त्यो वत्सराश्चापि परमेष्ठिन एव च ।
भास्वन्तो रसवहाश्चापि तथा रोगहरा गिरः ॥६७६॥
आम्नाया आवर्तिनश्च देवयानानि चेत्यपि ।
अग्निहोत्राणि गह्वराणि सुभगाः स्युस्ततः परम् ॥६७७॥
भूमिपाला अथ पुनर्भुवनानि तथैव च ।
विनाशकालाश्च तथा सर्वशेषे तु सुन्दरि ॥६७८॥
अदृष्टोद्गमशब्दस्तु बहुत्ववचने स्थितः ।
एवं चतुरशीतिस्ते शब्दा उक्ता मया तव ॥६७९॥
उद्देशरीतितो बोध्या अमीषां लिंगनिर्णयाः ।
प्रथमाया विभक्तेर्यत् प्रथमे वचने स्थितम् ॥६८०॥
द्वयक्षरं तत्पदं मुख्यमेकार्णं तद्वदित्यपि ।
उभयोरधुना वच्मि पदयोर्लिंगनिर्णयम् ॥६८१॥
अतः परं प्रवक्ष्यन्ते ये शब्दा भिन्नताजुषः ।
अग्रिमा देवरूपाश्च तल्लिंगवचने इमे ॥६८२॥

पदे-द्वे अपि बोद्धव्ये सन्धानं च गते तथा ।
अथैतयोः परगताच्छब्दानाकलय प्रिये ॥६८३॥
सर्वादिमं स्याद्ब्रह्माण्डोद्र्ध्वं संपुटमिति श्रुतम् ।
यमश्च सत्यलोकश्च ध्रुवसन्ध्ये ग्रहा अपि ॥६८४॥
सप्तर्षयः कुबेरश्च पावकः काम एव च ।
अहोरात्रे च हेरम्बः स्कन्दः पूषार्यमा भगः ॥६८५॥
पवनश्च तथा वेदा धर्मोऽप्यदितिरेव च ।
साध्याश्च राक्षसाश्चापि त्रयोविंशश्च वासुकिः ॥६८६॥
विश्वेदेवास्ततः प्रोक्ताः प्रजापतिरितोऽप्यनु ।
विश्वकर्मा च कालश्च मृत्युस्तदनु वै दिशः ॥६८७॥
धाता तथा किन्नरः स्यान्महादेवश्च नैर्ऋतः ।
ईशानश्च तथा रुद्रा अश्विनो च निधिर्दितिः ६८८॥
रोदसीत्यव्ययपदमिन्द्रो विष्णुस्तथाऽरुणः ।
प्रमथाश्चापि पर्जन्यस्त्रयी लक्ष्मीस्तथैव च ॥६८९॥
वसवो देवर्षयश्च तथैवाप्सरसोऽपि च ।
चन्द्रो मित्रो मातृगणो भवेयुः सागरास्ततः ॥६९०॥
नागाः पातालानि तथा शची ऋतव एव च ।
गायत्री पृथिवी चापि दिग्गजास्तदनन्तरम् ॥६९१॥
आकाशो गरुडो विद्युद्गरुडोऽस्यानु कथ्यते ।
गन्धर्वाश्च तथा यक्षा यज्ञा नद्यो युगा अपि ॥६९२॥
ब्रह्मादित्यश्च मेघाश्च तत औषधयो मताः ।
सरस्वती च सावित्री वत्सरा अयने ततः ॥६९३॥
मासास्तथा चान्तरीक्षं देवकन्या इतः परम् ।
मनवश्च तथा द्वीपा महाकल्पा इतः परम् ॥६९४॥
सर्वाद्यसर्गः शेषे स्यादेतावन्ति पदानि हि ।
एते यल्लिंगवचनास्तल्लिंगवचनावुभौ ॥६९५॥

यौ पूर्वमीरितौ शब्दौ द्व्यक्षरैकाक्षरावपि ।
एतेषां लिंगवचननिर्णयो जगदीश्वरि ॥६९६॥
उद्धारस्य क्रमेणैव यथोच्चारणतोऽपि च ।
एषां चतुरशीतिश्च संख्या नोना न चाधिका ॥६९७॥
तच्छब्दस्य ततो रूपं स्थितमादिविभागगम् ।
एषामेवानुसारेण वचनस्य व्यवस्थितिः ॥६९८॥
निर्णयोऽपि च लिंगानां षष्ठचर्थे ते ततः परम् ।
पदानि पुनरन्यानि कलयैतत्पराणि हि ॥५९९॥
शिरश्च केशपाशश्च सीमन्तश्च ललाटवान् ।
भ्रुवौ शंखौ च कूर्चश्च नासिका तदनन्तरम् ॥७००॥
नेत्राणि तत्परेणापि कनीनक इतोप्यनु ।
निमिषोन्मेषावपि च सिडू [?] अस्यानु कथ्यते ॥७०१॥
अपांगौ च किले चापि पक्ष्माणि मिलिते तथा ।
कर्णौ च कुंचिके चापि विहल्ये तदनन्तरम् ॥७०२॥
कर्णौ कपोलौ हनू च विहण्डं तदनन्तरम् ।
ओष्ठाधरौ च दन्ताश्च सृक्कणी तालु चेत्यपि ॥७०३॥
जिह्वा च घण्टिका चापि चुलिका चिबुकं तथा ।
वदनं च तथा कण्ठो ग्रीवा घाटा तथैव च ॥७०४॥
अंसौ च जत्रुणी कक्षौ पार्श्वे मध्यं च बाहवः ।
कफोणी च प्रगण्डौ च प्रकोष्ठौ तदनन्तरम् ॥७०५॥
मणिबन्धौ कराश्चापि करांगुल्यो नखा अपि ।
वक्षः स्तनौ चूचुके च क्रोडो जठरमेव च ॥७०६॥
अन्त्राणि नाभिर्वस्तिश्च जघनोपस्थमेव च ।
नितम्बश्च कटी पृष्ठं त्रिकं वंक्षणमेव च ॥७०७॥
ऊरू च जानुनी जंघे पार्ष्णी गुल्फौ तथैव च ।
प्रपदे च पदे चापि पादांगुल्यस्तथैव च ॥७०८॥

नाडयो लोमानि वाणी च जृम्भा च क्षुतमेव च ।
ग्रासो हिक्का च हासश्च सखीशयनमेव च ॥७०९॥
शय्या क्रोध अबोधश्च शव्दा एते क्रमेण हि ।
एषां हि लिंगवचने यथोक्तवदुदीरयेत् ॥७१०॥
भिन्नभिन्नानि बीजानि ब्रवीम्यहमतः परम् ।
तारः पाशश्च माया च वाग्भवः कमला स्मरः ॥७११॥
कालीकलांकुशक्रोधरावप्रासादगारुडाः ।
भूतामृतक्षेत्रपालरतिविश्वाभ्र विद्युतः ॥७१२॥
प्रेतः परा च कापालं भारुण्डा काकिनी विराट् ।
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारीहारकर्णिकाः ॥७१३॥
दक्षिणा शृंखला वेदो कृत्या त्रेता तथैव च ।
गौंऽशुशुक्लाः साद्यदण्डाजंभः पंक्तिशिखे तथा ॥७१४॥
स्वस्तिर्भोगो बलिश्चापि तुंगवेतालसेतवः ।
कल्पादिमा दीपशेषा एकैकं क्रमतोऽखिलाः ॥७१५॥
संविद्वज्रं च नागश्च यक्षः कंकालमानसौ ।
योगिनीकालचामुण्डाकिन्नराः कुम्भ एव च ॥७१६॥
सोममेघौ च धनदा तथा नाराचशूलकौ ।
नालीकश्च भुशुण्डी च गदा च प्रास एव च ॥७१७॥
एवं चतुरशीतिर्हि बीजानां परिकीर्तिता ।
एकैकमंगस्यान्ते वै दातव्यं वरवर्णिनि ॥७१८॥
पदत्रयं तु ङेन्तं यत्तदिदानीं निशामय ।
तच्छब्दः प्रथमो ज्ञेयो युष्मच्छब्दस्ततः परम् ॥७१९॥
विश्वरूपा पदं चापि पठेदेषां त्रयं क्रमात् ।
टाबन्त अन्तिमो ज्ञेयो मध्याद्यौ सार्वनामिकौ ॥७२०॥
सर्वे स्त्रीलिंगताभाजो वचनस्यैकताजुषः ।
शब्दाः सर्वे पुनर्बीजान्यन्यानि कलयाधुना ॥७२१॥

कुलिको विधिहाकिन्यौ नेमिः परिघ एव च ।
अर्धचन्द्रः क्षुरप्रश्च भूतिनी संहिताऽपि च ॥७२२॥
ताटंकनीलाककुदः शैशुकश्च प्रचण्डया ।
केकराक्षी कालरात्रिर्मन्दः संमोह एव च ॥७२३॥
तथा पतनसंहारौ सन्धानं शिञ्जिनी तथा ।
औपह्वरं नान्दिकं च दुःकृतं पद्ममेव च ॥७२४॥
कुशिकश्च व्ययश्चापि सुरसः समरोऽपि च ।
रागश्च सारसो धेनुर्मारिषः सुकृतं तथा ॥७२५॥
चर्पटो मणिमाला च हारिण्युत्कोचिनी तथा ।
ततश्च नन्दिका तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ॥७२६॥
विजया चापि संभूतिश्चतुरस्रमनन्तरम् ।
त्र्यस्रश्च विरतिश्चापि संहारी तत्परेण च ॥७२७॥
नादान्तकश्चामरश्च विधृतिर्व्यंजनादिमा ।
औपदेयश्च मारण्डो विनादोऽस्यानु कथ्यते ॥७२८॥
विमर्दशेखरौ चापि मौलिजोऽपि विरूपवान् ।
अपरान्तश्च प्रकरी बिन्दुको विरसोऽपि च ॥७२९॥
दाक्षिकः सौमतः पश्चात्प्रतानं विदिगेव च ।
ततो वैटपकौलुंचौ तुरीया तदनन्तरम् ॥७३०॥
शक्तिविद्या च षट्चक्रं कौलः सर्वागमादिमः ।
आम्नायातीतमस्यानु विद्यातत्त्वमतः परम् ॥७३१॥
तत्त्वार्णवोऽपि कथितः शक्तिसर्वस्वमित्यपि ।
परापरः शोभनश्च चिच्छक्तिः स्यादितः परम् ॥७३२॥
शेषे संहारकूटं स्यादेवं चतुरशीतिता ।
यदव्ययं पदद्वन्द्वमन्तिमे परिनिष्ठितम् ॥७३३॥
तच्चाख्यातं नमः स्वाहा न्यास एवंविधः स्थितः ।
न्यासस्थानानि सर्वाणि तिष्ठन्ति न्यास एव हि ॥७३४॥

संस्पृशेन्मन्त्रमुच्चार्यं तत्तत्स्थानं वरानने ।
एकादशानामन्येषां वाण्यादीनां स्थलं कुरु ॥७३५॥
एतस्मिन्संशये देवि सिद्धान्तं त्वं निशामय ।
कार्योऽभिनय एतेषामनुकारोऽथवा पुनः ॥७३६॥
तेनैव निखिलानां स्युर्न्यासस्थानानि तानि हि ।
व्याख्यातो विश्वरूपाख्यो न्यासो द्वैविध्यरूपतः ॥७३७॥
न शक्नोमि पुनर्वक्तुमेतत्करणजं फलम् ।
पूर्वोदितानि वाप्येष नित्यो निर्वाणमिच्छताम् ॥७३८॥
इतरेषां तु काम्यः स्यान्मुख्यो नित्योऽत्र कर्मणि ।

[नाडीचक्रन्याससमुद्धारविधिः]

नाडीचक्रसमुद्धारमथो कलय तत्त्वतः ॥७३९॥
एषोऽपि विश्वरूपेण समः फलविधानतः ।
आवश्यकोऽप्यत्र कृत्ये मुक्तये चाप्यरागिणाम् ॥७४०॥
न्यासस्य नाडीचक्रस्य सनारूऋषिरीरितः ।
गायत्रीनामकं छन्दो गुह्यकाली च देवता ॥७४१॥
तारो बीजं ब्रह्मशक्तिः सायुज्यं कीलकं मतम् ।
साक्षाद्विदेहकैवल्यप्राप्तये विनियोगता ॥७४२॥
अष्टादाविह बीजानि स्थैर्यशालीनि सुन्दरि ।
ततः शम्भोस्तु नामानि गुह्यकाल्यास्तथैव च ॥७४३॥
भिन्नानि भिन्नतया प्रोच्य विगृह्य कथितानि हि ।
तान्याद्याया विभक्तेस्तु द्वित्वे तिष्ठति सर्वशः ॥७४४॥
एतत्तुल्ये चापरे द्वे द्वे बीजे तदनन्तरम् ।
ते कालव्यापिनी चापि नाड्येका तु पृथक्पृथक् ॥७४५॥
नामरूपा ततस्तासामेवाख्या भिन्नरूपिणी ।
द्व्यर्णस्यैकस्य शब्दस्य ताभिर्विग्रह इष्यते ॥७४६॥

विगृह्य तदमन्तं च कर्तव्यं जगदीश्वरि ।
ततः क्रियापदं चैकं स्थिरं द्विवचने स्थितम् ॥७४७॥
तत एकार्णघटितं प्रथमा द्वित्वगामि च ।
पदं स्थावररूपं स्याच्छब्दस्यास्यैव तत्परम् ॥७४८॥
तार्तीयाया विभक्तेस्तु द्व्यर्णमाद्यवचः पदम् ।
अमन्तं पुनरेकं च पदं स्त्र्यंकं द्विवर्णवत् ॥७४९॥
पुनः क्रियापदं चैकं चतुरक्षरसंयुतम् ।
पुनरेकार्णघटितं षष्ट्येकवचनं पदम् ॥७५०॥
पदान्येतानि सप्तापि स्थिररूपाणि सर्वशः ।
ततो नु भिन्नभिन्नानि पदानि पुनरेव हि ॥७५१॥
एकेनान्येन शब्देन विगृहीतं स्थिरेण हि ।
तच्चाप्याद्यविभक्त्याद्यवचनं कर्तृरूपि च ॥७५२॥
पूर्वोक्तं यत्कर्मपदं द्विशब्दघटितं तथा ।
ङ्यन्तं तदुच्चरेद्भूयः क्रियापदमतः परम् ॥७५३॥
पुनः पदयुगं स्थाष्णु तत्राद्यं द्व्यक्षरात्मकम् ।
आद्ये विभक्तेराद्याया वचने परितिष्ठति ॥७५४॥
द्वितीयं द्विपदं प्रोतं बहुव्रीहिगविग्रहि ।
विभक्तिवचने चास्य ज्ञेये पूर्वोक्तशब्दवत् ॥७५५॥
पञ्चवर्णात्मकश्चापि सान्तोऽपि परिकीर्तितः ।
तृतीयं त्र्यक्षरमपि ल्यबन्तपदमीरितम् ॥७५६॥
कार्यं सर्वत्र सन्धानं पूर्वत्र च परत्र च ।
ततः परं विभिन्नानि पदानि परमेश्वरि ॥७५७॥
तच्च ङेन्तं समुद्दिष्टं क्रियापदमितोऽप्यनु ।
बीजद्वयं चाव्ययं स्यादेतस्मात्परमोश्वरि ॥७५८॥
पदान्यष्ट तथैतानि स्थिराणि परिचक्षते ।
एष साधारणोद्धारो विशेषस्त्वधुनोच्यते ॥७५९॥

चैतन्यमन्मथपरापाशमायांकुशश्रियः ।
प्रासादश्चेत्यष्ट बीजश्रेणी पुरत ईरिता ॥७६०॥
पृथक्पृथगतः शब्दान् देवदेवाभिधान्वितान् ।
सर्वानिवावधेहि त्वं प्रोच्यमानान् क्रमेण हि ॥७६१॥
सदाशिवो महाकालो नीललोहित एव च ।
महेश्वरः कृत्तिवासास्त्रिपुरान्तक एव च ॥७६२॥
मृत्युञ्जयो महारुद्रो विश्वरूपो वृषध्वजः ।
उग्रः शर्वो भवो भीमो नीलकण्ठश्च धूर्जटिः ॥७६३॥
गङ्गाधरश्च सर्वज्ञो मृडः शम्भुर्हरोऽपि च ।
विश्वेश्वरो वामदेव ईशानः शङ्करोऽपि च ॥७६४॥
विरूपाक्षो भूतनाथो नन्दीश्वर इतः परम् ।
व्योमकेशो महादेवः कपाली चन्द्रशेखरः ॥७६५॥
हरिकेशः सोमनाथः शितिकण्ठस्त्रिलोचनः ।
भर्गो हिरण्यबाहुश्च प्रमथाधिपतिस्ततः ॥७६६॥
स्थाणुः पिनाकपाणिश्च दक्षयज्ञविनाशनः ।
उर्ध्वरेताः पशुपतिः कपर्दी मदनान्तकः ॥७६७॥
महाज्वालो महेशश्च गिरिशस्त्र्यम्बकोऽपि च ।
मीढुस्तमस्तत्पुरुषो दिगम्बर इतोऽप्यनु ॥७६८॥
शूलपाणिः शङ्ककर्णो विश्वसंहारकोऽन्तिमे ।
षट्पञ्चाशन्मितान्येवं नामानि स्युर्महेशितुः ॥७६९॥
शृणु त्वं नामधेयानि भगवत्या इतः परम् ।
चण्डयोगेश्वरी त्वाद्या महामाया ततोऽनु च ॥७७०॥
निरञ्जना कलातीता संमोहिन्यद्वयापि च ।
नित्या च परमानन्दा तथा निगमबोधिनी ॥७७१॥
अखण्डा चेतना चापि महायोगिन्यनन्तरम् ।
परापरा चाद्वितीया ततः स्याद्बोधसाक्षिणी ॥७७२॥

अानन्ददा महासंविच्छान्ता मानस्यनन्तरम् ।
अनक्षगोचरा चापि निःक्रिया च निरिन्धना ।।७७३।।
ओजस्विनी ध्यानबला तत्परं सर्वतोमुखी ।
संज्ञाकरी ज्ञानमयी प्रमोदिन्यप्यनन्तरा[1] ।।७७४।।
ततोऽविद्यापहा चापि ततो वै जातवेदसी ।
भद्रवत्यप्रपञ्चा च मेधाकर्यवलम्बिनी ।।७७५।।
सनातनी प्राणदा च प्रस्फुलिङ्गिन्यसङ्गमा ।
तेजोवहा विश्वरुची निर्मलाम्नायबोधिता ।।७७६।।
क्लेशापहा तथा तेजोमयी नाडिन्धमापि च ।
एतत्पश्चात्कलविकरिणी भवति कीर्तिता ।।७७७।।
तत उक्ता वलविकरिणी च प्राणवल्लभे ।
बलप्रमथिनी चापि मनोन्मन्यप्यनन्तरम् ।।७७८।।
विश्वेश्वरी परिज्ञेया सर्वभूतदमन्यपि ।
ततः सिद्धिकराली च सिद्धितो विकराल्यपि ।।७७९।।
वज्रकापालिनी चापि गुह्यकाल्यखिलान्तिमा ।
पूर्वा संख्या यावती वै तावत्येषापि बुद्ध्यताम् ।।७८०।।
शिवश्च शक्तिरिति च द्वे पदे तदनन्तरम् ।
विभक्तिवचनाभ्यां तु कार्यमेतद्वदीश्वरि ।।७८१।।
बीजे शाम्भवचिच्छक्ती एतयोरनुकीर्तिते ।
अथ वै वक्ष्यमाणानां नाडीनां तत्तदाख्यया ।।७८२।।
यद्यत्कूटं पुरा प्रोक्तं तत्तत्प्राक् समुदीर्यं हि ।
पश्चात्तु तत्तन्नाडीनां नामानि समुदीरयेत् ।।७८३।।
अथासामभिधां वक्ष्ये क्रमेण त्रिदशेश्वरि ।
नाडी सर्वादिमा सर्गा बन्धनी तदनन्तरम् ।।७८४।।

१—०प्यगोचरा ङ ।

आवेशिनी गालिनी च ततो रसवहापि च ।
भासुरा च प्रबुद्धा च दृप्ता चापि प्रकाशिनी ॥७८५॥
पूर्णा सरस्वती पश्चात्कुहूर्वारणया सह ।
पूषा पयस्विनी चापि शङ्खिनी च यशस्विनी ॥७८६॥
गान्धारी हस्तिजिह्वा च एतत्पश्चादलम्बुषा ।
तेजस्विनी च सुमुखी सती विश्वोदरोत्तरा ॥७८७॥
आप्यायनी रेवती च विश्वदूता तथैव च ।
हेमा मैत्री च नन्दा च विशाला धारिणी तथा ॥७८८॥
अग्निज्वाला धारिणी च ततोऽनु कथिताऽबला ।
तपिनी तापिनी चापि मरीचिर्ज्वालिनी तथा ॥७८९॥
संमोहा लम्बिका चापि घण्टिका कोटरापि च ।
कपर्द्दिनी माण्डवी च प्रशान्ता वेगवत्यपि ॥७९०॥
तन्द्रावती च विभ्रान्तिः कैवल्याथाप्यविग्रहा ।
तुरीया योगनिःश्रेणी निर्वाणा चापुनर्भवा ॥७९१॥
षट्पञ्चाशन्मिता एता नाड्यो मुक्तिप्रकाशिकाः ।
वायुं योगिन एतासु धारयन्तो मनस्तथा ॥७९२॥
प्रापुर्विदेहकैवल्यं योगसिद्धिं तथैव च ।
आभिर्हि चक्रशब्दस्य विग्रहः कर्म्मतां गतः ॥७९३॥
[1]क्रियापदं यदाख्यातमध्यासात इतीह तत् ।
[2]तावित्येकं पदं पश्चाद्द्वितीयं तेन चेत्यपि ॥७९४॥
मुक्तिमित्यपरः शब्दस्तृतीय इह कथ्यते ।
एतस्यानुपदं यत्तत्क्रियापदमुदाहृतम् ॥७९५॥
चतुरक्षरनिर्माणं तच्च कल्पयतामिति ।
सम्बन्धकारकस्थायि यदेकाक्षरनिर्मितम् ॥७९६॥

१—क पुस्तके चतुर्दश पटलस्यात्रैव समाप्तिरस्ति ।
२—ङ पुस्तकात् संगृहीतोऽस्ति ।

पदं तत्र इति प्रोक्तं पृथक् शब्दानतः शृणु ।
मनोज्योतिरथात्मा च जीवात्मा तदनन्तरम् ॥७९७॥
परमात्मा ज्ञानमिच्छा कृतिः कर्म ततः परम् ।
अहङ्कारश्च बुद्धिश्च माया समय एव च ॥७९८॥
तृष्णा लोभश्च मानश्च योगो रागश्च वासना ।
संकल्पश्च विकल्पश्च भावना शान्तिरेव च ॥७९९॥
क्षान्ती रूपं रसो गन्धः स्पर्शः शब्दस्तथैन्द्रियम् ।
वैराग्यं वाक् तथा००० संज्ञा धर्म एव च ॥८००॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च कामश्च ममतापि च ।
प्रकृतिर्विकृतिर्मोहंर्बन्धमोक्षास्ततः परम् ॥८०१॥
विवेकश्च तितिक्षा च समाधिः ध्यानमेव च ।
निर्वेदश्च धृतिश्चापि प्रीतिः सुखमनन्तरम् ॥८०२॥
दुःखं जन्म च मृत्युश्च कालः सर्वावसानिकः ।
षट्पञ्चाशदिमे शब्दाः क्रमेण परिकीर्तिताः ॥८०३॥
पदमेभिर्विग्रहि यत्तत्त्वमिति कथ्यते ।
पूर्वोक्तं यत् कर्मपदं पदद्वयविनिर्मितम् ॥८०४॥
तत्सुषुम्णादि चक्रे स्यादस्यान्ते यत्क्रियापदम् ।
तल्लोयतामिति भवेद् द्व्यर्णं पदमहन्त्विवति ॥८०५॥
यद्ब्रहुव्रीहिणा स्यूतं पदाभ्यामेककं पदम् ।
पञ्चवर्णात्मको देवि स हि स्याद्विरजस्तमाः ॥८०६॥
त्र्यर्णं ल्यबन्तं नात्त्रीयं सम्भूयेति प्रकीर्तितम् ।
एतस्मात्परतो ये स्युः शब्दा भिन्नशरीरिणः ॥८०७॥
तानिदानीं प्रवक्ष्यामि सावधाना निशामय ।
कैवल्यमथ निर्वाणं मोक्षोऽप्यमृतमेव च ॥८०८॥
अपवर्गश्च विज्ञानमानन्दस्तदनन्तरम् ।
निस्त्रैगुण्यं तुरीयश्च ततो निर्विषयोऽपि च ॥८०९॥

अथ पारमहंसः स्यात[द]द्वैतश्चास्य पश्चिमे ।
ऐकात्म्यमथ चिन्मात्रं सत्ता संवेद्यमेव च ॥८१०॥
निराभासो निर्विकल्पो द्वन्द्वातीत इतोऽप्यनु ।
ततोऽप्यपुनरावृत्तिरविद्या नाश एव च ॥८११॥
मुक्तिश्च बन्धनाशश्च परमार्थस्ततः परम् ।
क्षेत्रज्ञोपशमौ चापि ततश्चाप्राकृतो मतः ॥८१२॥
संविन्मयो ब्रह्मभूयो निःश्रेयसमितोऽप्यनु ।
नैरवस्थ्यं चिन्मयश्च चैतन्यं तदनु स्मृतम् ॥८१३॥
निराकारः शुद्धबोधः प्रकाशमय एव च ।
षट्त्रिंशो निष्कलो ज्ञेयो ह्यसंवेदनमेव च ॥८१४॥
नैरन्तर्यं च प्राधान्यं नित्यभावश्च निर्वृतिः ।
अतीन्द्रियं शून्यरूपं साक्षीभावो मनोलयः ॥८१५॥
संप्रत्ययस्ततो ज्ञेयो निरालम्बनमेव च ।
अनीडलं च वैदेह्यमजन्म मृत्युरेव च ॥८१६॥
असंसर्गो पुनर्भावो महाश्रेयस्तथैव च ।
अगर्भवासश्च तथा चतुःपञ्चाशसंख्यकः ॥८१७॥
ततो द्वितीयभावश्च पञ्च पञ्चाशसंख्यकः ।
अव्यक्तिकपदाद् दुःखध्वंसोऽन्तिमपदं स्मृतम् ॥८१८॥
प्रतिष्ठा इति च ज्ञेयं क्रियापदमतोऽप्यनु ।
पदेषु सर्वेषु तथा सन्धियोग्यस्थलेष्वपि ॥८१९॥
सन्धिर्विधेयो देवेशि न्यासेऽस्मिन्मन्त्रकर्मणि ।
अयं विशेषः सामान्ये विशेषे च प्रकीर्तितः ॥८२०॥
ततस्तारश्च सायुज्यं बीजद्वयमुदाहृतम् ।
चरमेऽनलकान्ता च मन्त्रा एतादृशाः स्फुटाः ॥८२१॥
इदं बीजद्वयं देवि त्रिवारं केचिदूचिरे ।
भाण्डिकेराश्च का[पा]ला न तु मौलदिगम्बरौ ॥८२२॥

उपदेशो ममापीदृक् सकृदुच्चारणं हि यत् ।
नाडीचक्राह्वयो न्यास ईदृशो भवति प्रिये ॥८२३॥
दुरूहो स्वल्पबुद्धीनां सुगमः सुधियां तथा ।
अतः परं निबोध त्वं सावधानेन चेतसा ॥८२४॥
स्थानान्यमुष्य न्यासस्य क्रमेण ब्रुवतो मम ।
ब्रह्मरन्ध्रं ललाटं च कूटं भ्रूयुगमेव च ॥८२५॥
दृशौ शंखौ च कर्णौ च युग्मं गण्डकपोलयोः ।
हनू ओष्ठाधरौ दन्तपंक्ती तालु तथैव च ॥८२६॥
जिह्वा सृक्कद्वयं चापि चिबुकं सकलं मुखम् ।
पृष्ठमंसो जत्रुणी च ग्रीवाघ्राणे तथैव च ॥८२७॥
कुक्षौ पार्श्वे कफोणिश्च प्रगण्डस्तदनन्तरम् ।
मणिबन्धावङ्गुलयः करौ बाहू पितं [?] तथा ॥८२८॥
वक्षः क्रोडस्तनौ चापि जठरं नाभिरेव च ।
वस्तिः कटिकटौ चापि वंक्षणोऽसास्थिनी अपि ॥८२९॥
मेढ्रापाने जानुनी च जंघे पादौ च गुल्फकौ ।
प्रपदं च पदांगुल्यस्तदंगुल्यस्तदग्रमेव च ॥८३०॥
वामपार्श्वाद्वामभागो दक्षपार्श्वोच्च दक्षिणः ।
दक्षवंक्षणतो दक्षपादः सकलमेव च ॥८३१॥
वामवंक्षणतो वामपादः सकल एव च ।
व्यापकं सर्वशारीरं षट्श्चाशत्तमो मतम् ॥८३२॥
स्थानानीमानि सर्वाणि न्यासस्य क्रमतः प्रिये ।
तेषु तेषु स्थानेष्वेव नाडीचक्रं प्रविन्यसेत् ॥८३३॥
प्रोक्ता तूभयथा नाडीचक्रन्यासोद्धतिर्मया ।
एतत्तुल्यान् पुरा प्रोक्तान् पश्यन्न न्याससंचयान् ॥८३४॥
एतत्समस्त्वेष एव नान्योऽस्य सदृशो भुवि ।
ऐहिकार्थप्रदा अन्ये न्यासा ये त्रिंशदीरिताः ॥८३५॥

अयं विदेहकैवल्यदाता नित्यप्रयोगतः ।
एतस्य सतताभ्यासाज्जीवन्मुक्तोऽभिजायते ॥८३६॥
सर्वे योगाः प्रसिद्धयन्ति सुखसाध्या हठास्तथा ।
वारमात्रं कृतो न्यासो नाडीचक्राह्वयो हि यैः ॥८३७॥
किं किं न तैः कृतं देवि सुकृतं पारलौकिकम् ।
कृतः समस्ततीर्थानामभिषेकः समाहितैः ॥८३८॥
सर्वे वेदा अधीताः स्यु सर्वे देवा उपासिताः ।
व्रतानि चीर्णानि तथा सर्वचेष्टामयास्तथा ॥८३९॥
दत्तानि सर्वदानानि सर्वे धर्मा अनुष्ठिताः ।
प्रणवस्य च गायत्र्या मन्त्राणामपि भूरिशः ॥८४०॥
जप्ता भवति तेनेह कोटिरेका विधानतः ।
किं किं तैर्न कृतं कर्म किं किं तैर्न कृतं तपः ॥८४१॥
किं किं व्रतं नहि कृतं यैर्न्यासोऽयं कृतो भवेत् ।
स धन्यः कृतकृत्यश्च सोऽशोच्योऽस्मिन्भवार्णवे ॥८४२॥
महिमानं विदित्वास्य ज्ञात्वा भगवतीं तथा ।
पौराणा ऋषयः सर्वे चक्रुर्यस्मिन्परिग्रहम् ॥८४३॥
कण्वो मेधातिथी रैभ्यो यवक्रीडऋतस्रवाः ।
मैधश्रवो वैजरायो नु जाबालः शाकटायनः ॥८४४॥
हारीतो नाचिकेताश्च अर्वावसु परावसु ।
उपमन्युर्भरद्वाजो गोतमः पिप्पलायनः ॥८४५॥
अक्षपादो गालवश्च शाकटायनवत्सलौ ।
वामदेवो नारदश्च मार्कण्डेयः पराशरः ॥८४६॥
अङ्गिराश्च्यवनोऽत्रिश्च शाण्डिल्यो देवलोऽसितः ।
व्यासः कात्यायनः पैङ्ग श्वेताश्वतर एव च ॥८४७॥
विश्वामित्रो वशिष्ठश्च कपिलो भृगुरेव च ।
आलम्बयनमाण्डव्यदुर्वासोगर्गबाभ्रवाः ॥८४८॥

जैगीषव्यश्च सम्वर्तजमदग्निमतङ्गजाः ।
दधीच्युत्तंकऋतवो वामकक्षायना अपि ।।८४९।।
अथर्वा शौनकश्चापि उतथ्यश्चौडुलोमयः ।
ब्रह्मविद्यारता येऽन्ये मुनयः संशितव्रताः ।।८५०।।
सोमसूर्यान्वयोद्भूता राजानो ननु विश्रुताः ।
सुराष्ट्रेशास्त्रिगर्तजा जाताजनकहैहयाः ।।८५१।।
न्यासराजममुं प्राप्य ब्रह्मविद्यासु दीक्षिताः ।
आद्ये अयं योगसिद्धसिद्धे ब्रह्मत्रयीजुषः ।।८५२।।
योगिनोऽनेन सिद्ध्यन्ति प्राप्नुवन्ति परं पदम् ।
अत्र सिद्धिंगताः पश्चात्सिद्ध्यन्त्यत्र वै क्रमात् ।।८५३।।
वचो जालैः किमधिकैरर्थवादवदोरितैः ।
भवबन्धं जिहासूनां प्रेप्सूनां मोक्षमव्ययम् ।।८५४।।
जन्ममृत्युं तितीर्षूणामसौ परमभेषजम् ।
क्रियतो बालक्रियतामत्पदान्यास एषवै [?] ।।८५५।।
पवित्रारोहणे कार्यं आवश्यकतया स्थितः ।
न केवलमयं देवि ते त्रयो यस्य पूर्वगाः ।।८५६।।
एवं विधाय चतुर एता न्यासा वरानने ।
कुर्यान्नैमित्तिकीपूजावदर्चां तदनन्तराम् ।।८५७।।
नैमित्तिकेया कथिता रीतिः सैवेह चर्यते ।
मन्त्राः सर्वे त एवात्र ये नैमित्तिकपूजने ।।८५८।।
पवित्रार्पणिकास्तत्तद्देवानां मनवः पृथक् ।
तान्सर्वान् [आ] हरिष्यामि समुद्धरणपूर्वकम् ।।८५९।।
सर्वेषामुपचाराणां शोधनं पूर्ववच्चरेत् ।
दमनारोपणन्यासानत्रापि विदधीत वै ।।८६०।।
द्विविधोऽयं स्थापनं च पीठं मूर्तिपरिक्रियाम् ।
षड्वा दशाष्टौ दश वा चतुर्विंशतिमेव च ।।८६१।।

षड्त्रिंशदथवा कुर्यात् पात्राणां स्थापनं प्रिये ।
तत्तन्मतानुसारेण तत्तत्कर्म विधीयते ।।८६२।।
क्रममन्त्रार्चनान्येषां रीत्या पूर्वोक्तया चरेत् ।
सर्वं नैमित्तिकसमं ज्ञेयमत्रापि सुन्दरि ।।८६३।।
पवित्रस्यार्पणे मन्त्राः किन्तु सर्वे पृथक् पृथक् ।
यस्य यस्य तु देवस्य यो योऽर्चावसरो भवेत् ।।८६४।।
तस्य तस्य तु देवस्य तस्मिन् तस्मिन् वरानने ।
पवित्रं तस्य दातव्यं तन्मन्त्रोच्चारपूर्वकम ।।८६५।।
तत्रापि खलु सर्वादौ पूजागारप्रवेशने ।
गृहद्वारस्य दातव्यं यदध्यास्ते पुरेश्वरी ।।८६६।।
तन्मन्त्रस्तारमैधह्रो प्रासादकमलास्त्रियः ।
शाकिनी डाकिनी चेति बीजाष्टकमिदं पुनः ।।८६७।।
पवित्रमिदमुच्चार्यं देवी प्रासाद उच्चरन् ।
द्वाराय तदनु प्रोच्य सर्वशोभाकराय च ।।८६८।।
फेत्कारीपाशदमनबीजानि तदनूद्धरेत् ।
समर्पयामि हृच्छीर्षे सर्वाद्यो मनुरीरितः ।।८६९।।
प्रविविक्षुर्यदा पूजागृहं साध्येकसत्तमः [?] ।
पूजागृहं तदैकेन मन्त्रेणार्य शिवागृहम् [?] ।।८७०।।
पवित्रं च समर्प्यास्मै ततः पूजां समारभेत् ।
तच्च उच्यां [?] गवाक्षैराकपाटे द्वार एव वा ।।८७१।।
वध्नीयादम्बिकागार शोभाकरमनुत्तमम् ।
द्वारपालपवित्रस्य यः समर्प्पणकृन्मनुः ।।८७२।।
स द्वारपालपूजायां कथनीयो मया तव ।
पुरोदितविधानेन शङ्खं संस्थाप्य यत्नतः ।।८७३।।
पुष्पगन्धाक्षतैराद्य प्रत्येकं कलया तथा ।
शेषे तदीयमादाय पवित्रं पूर्ववर्णितम् ।।८७४।।

धृत्वा कराभ्यां मनुना वक्ष्यमाणेन रोपयेत् ।

[पवित्रारोपणमन्त्रः]

चैतन्यपाशप्रासादशाकिनीवनितास्मराः ॥८७५॥
शंखामृते क्रमादष्टबीजानि तदनन्तरम् ।
पराचिज्ज्येष्ठकूटानि ततः क्षा[क्षी]रोदसागरः ॥८७६॥
पुनः प्रभवसंख्येति पवित्रमिदमित्यपि ।
ततस्तवारोपयामि गृह्लयुग्ममतः परम् ॥८७७॥
कूर्चद्वयास्त्रयुगले चरमे शिर इत्यपि ।
शंखोऽर्चावसरेऽनेन तस्मिन्सूत्रं समर्पयेत् ॥८७८॥
ब्रवीम्यतः परं कान्ते विशेषार्घस्य यो मनुः ।
वेदादिमायाशाकिन्यः कालीप्रासादविद्युतः ॥८७९॥
पाशः प्रेतो भैरवी च ज्ञानेच्छासंविदोऽपि च ।
एवं द्वादशबीजानि कूटं चत्वारि च त्रयम् ॥८८०॥
इदं ततो यज्ञसूत्रं विशेषार्धाय चेत्यपि ।
समर्पयाभि चाभाष्य तदामुञ्च ततः परम् ॥८८१॥
देवीरूपोऽसि चाभाष्य तुभ्यं हृच्छिरसी तथा ।
विशेषार्घपवित्रस्य दाने मनुरयं मतः ॥८८२॥
प्रत्येकं कुर्वते ये हि पाद्याद्यर्घस्य कल्पनम् ।
तेऽप्यनेनैव मन्त्रेण प्रदद्युरुपवीतकम् ॥८८३॥
अथ सर्वैक्यरूपस्य पीठस्य विनिगद्यते ।
पुनः प्रत्येकरूपेण सर्वेषां कथयिष्यते ॥८८४॥
सारस्वतः पाशकामौ गारुडः कूर्च एव च ।
क्षेत्रपालश्च विश्वश्च पञ्च कल्पाद्यतः परम् ॥८८५॥
अनाहतश्च भोगश्च सृष्टिस्त्रेता तथैव च ।
कूर्चमष्टादश मतं पुष्करं परिकीर्तितम् ॥८८६॥

सर्वामरमयप्रोच्य सर्वयज्ञमयेति च ।
सर्वशक्तिमय प्रोच्य सर्ववेदमयापि च ॥८८७॥
सर्वयोगैश्वर्यमय महासिंहासनेति च ।
इदं तुल्यमुपवीतमुपपादयमी ततः [?] ॥८८८॥
इदमामुञ्च संलिख्य देवीमिहयुगं ततः ।
दण्डादीनि तु बीजानि पञ्च प्रोच्य ततः परम् ॥८८९॥
अस्त्रत्रयं शिवोऽन्ते च मनुः पीठस्य कीर्तितः ।
गणपत्यादिकानां हि चतुर्णामथ कथ्यते ॥८९०॥
देवानां यज्ञसूत्रस्य दाने यो हि मनुः स्मृतः ।
यदि पंचायतनवान् यदि तस्याप्यभाववान् ॥८९१॥
पवित्रारोहणे कार्ये तान्सर्वांश्चतुरो यजेत् ।
आदौ गणपतेर्वच्मि पवित्रार्पणकं मनुम् ॥८९२॥

[पवित्रार्पणकालनिर्णयः]

पवित्रार्पणकालस्तु यस्य कस्यापि पार्वति ।
ज्ञातव्यः सर्वपूजान्तो तदन्ते नापरार्हणम् ॥८९३॥

[गणपतेः पवित्रार्पणमन्त्रः]

वेदादिरथ चैतन्यं कामो बलि तपा (?) सह ।
काकिनीसोंमभारुण्डास्तथा चायादिपञ्चकम् ॥८९४॥
सर्वविघ्नोपशमनश्चतुर्थ्येकवचान्विता ।
युष्मन्म [?] गणपतिस्तादृगेव सुरेश्वरि ॥८९५॥
यज्ञसूत्रमिदं प्रोच्य सन्धियुक्तयामि च [?]
विघ्नं मे नाशययुगं कूर्चास्त्रे हृदयं शिरः ॥८९६॥

[सूर्यस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथ सूर्यस्य पूजान्ते तस्मै सूत्रं समर्पयेत् ।
पाशः कला च हालश्च त्रितयं पुरतो वदेत् ॥८९७॥

दण्डलज्जे समाभाष्य देव्यर्णं सविसर्गकम् ।
त्रिवारमेव त्रितयं कथनीयं वरानने ॥८९८॥
सर्वतेजोधिपतियुक् महाभास्वररूपवान् ।
ततः संभववांश्चापि श्रीसूर्यः सुरवन्दिते ॥८९९॥
पदानीमानि चत्वारि चतुर्थ्यन्तानि कारयेत् ।
एकत्वे चापि तदनु पवित्रमिदमित्यपि ॥९००॥
सम्बन्ध्यावेदयामीति.................................।
इदमामुष्व तदनु विसन्धि परिकीर्तितम् ॥९०१॥
पवित्रारोपणं मे च पाहियुग्ममनन्तरम् ।

[विष्णोः पवित्रार्पणमन्त्रः]

नमः स्वाहा च चरमे विष्णोरथ निशामय ॥९०२॥
योऽसावष्टाक्षरो मन्त्रो यश्चासौ द्वादशाक्षरः ।
एकैकं तु त्रिरुच्चार्य पवित्रं गृह्ण च द्वयम् ॥९०३॥
शेषभोगपर्यङ्केति शायिने तदनन्तरम् ।
ततस्तुभ्यमनन्ताय नमः स्वाहा च पश्चिमे ॥९०४॥

[महारुद्रस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

महारुद्रस्याथ शिवे मत्तः कथयतः शृणु ।
प्रासादबीजं तारादि शाम्भवाद्यत्रपंचकम् ॥९०५॥
महाकालाग्निरुद्रश्च महाबलपराक्रमः ।
ततो महानीलकण्ठो महासंहारकारकः ॥९०६॥
सर्वेश्वरश्च [त्रितयं चतुर्थ्यन्तंस] मादिशेत् [?] ।
पवित्रदानं तस्यान्ते सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥९०७॥

[राजमातङ्गीदेव्याः पवित्रार्पणमन्त्रः]

वक्ष्येऽथ राजमातगीमन्त्रं वश्यकरं परम् ।
सारस्वतं भौवनेशी कमला तार एव च ॥९०८॥

नमो भगवतीत्युक्त्वा मातंगेश्वरि चोद्धरेत् ।
ततः सर्वजनेत्येवं मनोहरिपदं ततः ॥६०६॥
पुनः सर्वमुख प्रोच्य रञ्जिनी[ति] ततः परम् ।
तत उच्चारयेदेवं सर्वराजवशंकरि ॥६१०॥
सर्वस्त्रीपुंसां भाष्य वशंकरि पुनर्वदेत् ।
सर्वदुष्टमृगालिख्य ततोऽनु च वशंकरि ॥६११॥
एतस्यानु वदेदेवं सर्वसत्त्ववशंकरि ।
सर्वलोकममुं मेऽनु सर्वमानय चेत्यपि ॥६१२॥
शिरोऽन्तो मनुरुद्दिष्टो वश्यकर्मफलप्रदः ।

[भुवनेश्वर्याः पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथ ते भुवनेश्वर्याः कथयामि महामनुम् ॥६१३॥
न कुत्राप्येष केनापि ज्ञात उद्धृत एव वा ।
केवलं शंकरेणोक्तमादियामल एव हि ॥६१४॥
सर्वागमानां मूर्द्धादौ पाशो मायांकुशस्तथा ।
मदनो भुवनेश्वर्याः संबुद्धिस्तदनन्तरम् ॥६१५॥
सप्तलोकानिति प्रोच्य सप्तद्वीपानिति स्मरेत् ।
सप्तानु भुवनान्युक्त्वा पातालानि च सप्ततः ॥६१६॥
सप्तार्णवानिति ततः शाकिनीयोगिनीस्त्रियः ।
मह्यं देहि समुद्धृत्य ततो दापय कीर्तयेत् ॥६१७॥
चतुर्द्दशानु भुवननायिके तदनूद्धरेत् ।
सुरासुरपदस्यान्ते वन्दिते परिभावयेत् ॥६१८॥
जय जीव युगं युग्मं द्विः स्फुर प्रस्फुर द्वयम् ।
जगत्त्रयेति संलि[ख्य] पालिनीति समुच्चरेत् ॥६१६॥
पाशमायासृणीनां च त्रितयं त्रितयं पठेत् ।
अस्त्रं शिरश्च चरमे महामन्त्रोऽयमीरितः ॥६२०॥

त्रिरावृत्ति विधायास्य ततः सूत्रं समर्पयेत् ।
[हरसिद्धायाः पवित्रार्पणमन्त्रः]
अत्राच्याशासंस्थितायै तृतीयायै नितत: [?] ॥६२१॥
सर्वदुष्टं हर युग्मं सर्वोपद्रवमित्यपि ।
नाशय द्वितयं चाथ सर्वाभीष्टं दद द्वयम् ॥६२२॥
सर्वशत्रून् हर द्वन्द्वं सर्वसिद्धिं च देहि युक् ।
ततः प्रचलशव्दानु जटाभारानु भासुरे ॥६२३॥
महाभोगिपदाद्राजभूषितेति समुद्धरेत् ।
सिन्दूरारुणदेहे च पुनः शुष्केरयेरयेत् ॥६२४॥
कपालाभरणे [चेति] विद्युत्कोटिसमप्रभे ।
उक्त्वा प्रसीदयुगलं युगं रोषास्त्रयोस्ततः ॥६२५॥
शिर एकं भवेदन्ते हरसिद्धामनुस्त्वयम् ।
त्रिः संकीर्त्य तथैतेन पवित्रं विधिनार्पयेत् ॥६२६॥
[अन्नपूर्णायाः पवित्रार्पणमन्त्रः]
अथ वक्ष्येऽन्नपूर्णाया विंशत्यक्षरकं मनुम् ।
त्रिपुरायाः प्रसंगेन शंकरेण यदुद्धृतम् ॥६२७॥
वेदादिरथ लज्जा च कमला काम एव च ।
नमो भगवती प्रोच्य सन्धानरहितं ततः ॥६२८॥
माहेश्वर्यन्नपूर्णे च शिरः शेषे नियोजयेत् ।
पञ्चवारानिमं मन्त्रं प्रोच्य सूत्रं निवेदयेत् ॥६२९॥
[सरस्वत्याः पविन्नार्पणमन्त्रः]
अथ सारस्वतं मन्त्रं वक्ष्ये विद्याफलप्रदम् ।
कथितं यद्गिरीशेन **कुब्जिकायाः प्रसंगतः** ॥६३०॥
सारस्वताच्छिरः सन्धियुगं भगवतीरयेत् ।
वाग्वादिनि समालिख्य वदयुग्मं ततो वदेत् ॥६३१॥
मूकं वादय युग्मं च विसन्ध्यष्टादशोच्चरेत् ।
विद्याप्रकाशिनि प्रोच्य ततो ब्रह्ममुखीत्यपि ॥६३२॥

ब्रह्मवादिन्यनु ब्रूयात्पङ्कजासन इत्यपि ।
वाग्मित्वं मयि धेह्युक्त्वा वागगोचर इत्यपि ॥६३३॥
वागीश्वरीति संकीर्त्य फट् स्वाहा तदनन्तरम् ।
पञ्च कृत्वस्तथैषोऽपि प्रोच्चार्यः सूत्रदत्तये ॥६३४॥

[जयदुर्गायाः पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथैशान्यां विदिशि या जयदुर्गेति कथ्यते ।
मालामन्त्रं वच्मि तस्याः सावधाना निशामय ॥६३५॥
अपारमास्मरा आदौ भगवत्यथ कथ्यते ।
संबुद्धिर्जयदुर्गाया दुर्गोत्तारिणि तत्परम् ॥६३६॥
आख्याय दुष्टासुरेति निकृन्तनि ततो वदेत् ।
युद्धे जयं मे देह्युक्त्वा शत्रून्मे नाशय द्वयम् ॥६३७॥
हन मार छिन्धि भिन्धि पच त्रासय संहर ।
युगं युगं सप्तवदेन्महामाये ततोऽप्यनु ॥६३८॥
महाभाग्यप्रदे चापि महैश्वर्यविधायिनि ।
शाकिनी डाकिनी चापि प्रलयः सह कृत्यया ॥६३९॥
दैत्यदानवमारिण्यनु च संहारतारिणि ।
हूं फट् स्वाहा सर्वशेषे पूर्णो मन्त्रस्तवेरितः ॥६४०॥
उच्चार्य वारत्रितयमेनं दद्यात्पवित्रकम् ।
इत्यष्टारस्थरीत्यस्तु दत्वा देवीभ्य ईश्वरी ॥६४१॥
यज्ञसूत्रं ततो दद्यान्नवारस्थाभ्य आदृतः ।

[त्रिपुरसुन्दर्याः पवित्रदानमन्त्रः]

तासामाद्या परिज्ञेया देवी त्रिपुरसुन्दरी ॥६४२॥
उद्ध्वाम्नाये तु या मुख्या ब्रह्मविद्या प्रकाशिनी ।
षडशीतिर्भिदास्तस्या मन्त्राणां जगदोश्वरि ॥६४३॥
तन्मध्ये षोडशार्णा तु मुख्यान्मुख्यतरा मता ।
यामेकवारमुच्चार्य न्मक्या [?] हृदयभूतया ॥६४४॥

सप्तद्वीपवतीपृथ्वीदानस्य फलमश्नुते ।
कमला भौवनेशी च कामश्चैतन्यमेव च ॥६४५॥
भैरवी चापि वेदादिर्माया लक्ष्मीः पुनस्तथा ।
पराकूटं तमो दत्वा चित्कूटं तदनन्तरम् ॥६४६॥
ज्येष्ठाकूटं च तस्यानु लक्ष्मी बीजं ततः परम् ।
पुनः कुलांगनाकामौ वाग्भवो भैरवी तथा ॥६४७॥
भगवत्यै कथितो ह्येष षोडशार्णाह्वयो मनुः ।
नववारानिमं प्रोच्य यज्ञसूत्रं समर्पयेत् ॥६४८॥

[सिद्धिलक्ष्म्योः पवित्रार्पणमन्त्रः]

अदसीयनवारीयद्वितीया देवता हि या ।
तस्या मालामन्त्रमहमिदानीं कथयामि ते ॥६४९॥
तत्पाठादेव तत्सूत्रदानं सिद्ध्यति नान्यथा ।
मन्त्रेषु सिद्धिलक्ष्म्याः स प्रोक्तो मुख्यतमः प्रिये ॥६५०॥
अक्षरैर्दशभिर्हीनस्त्रिशताक्षरिको मनुः
महाफलप्रदत्वेन ख्यातः सर्वागमेष्वयम् ॥६५१॥
महागोप्यतमोऽप्येष सिद्धिप्रदतया द्रुतम् ।
मालामन्त्रं सिद्धिलक्ष्म्याः शृण्वतः परमीश्वरी ॥६५२॥
श्रेष्ठेयं सर्वविद्यानां दशोना हि शताक्षरी ।
अनया राधिता राज्यलक्ष्मी राज्यफलप्रदा ॥६५३॥
अतः परमयत्नेन गोपनीया कुलार्थिभिः ।
प्रणवं हार्द्दमन्त्रौ च सर्वसिद्धि पदं तत. ॥६५४॥
भ्यसन्ता योगिनीमुक्त्वा हृन्मन्त्रात्सर्वसिद्ध्यपि ।
पुनर्भ्यसन्ता माता च पुनर्हार्द्दमनुर्मतः ॥६५५॥
ततोदितानन्दनन्दिन्यै समीरयेत् [?] ।
वदेदस्यानु सकलकुलचक्रपदं प्रिये ॥६५६॥

नायिकायै प्रोच्य भगवत्यै चण्ड ततः परम् ।
कापालिन्यै तारबीजं मायाकूर्चौं ततः [परम्] ॥६५७॥
नानुद्धरे त्क्रमेणैव हित्वा व्यत्यासमादरात् ।
कालीसिंहासनधरः सर्वो यज्ञस्ततः परम् ॥६५८॥
पदत्रयमिदं देवि भ्यसन्तं समुदीरयेत् ।
पवित्रमेतदुल्लिख्यार्प्पयाम्यस्यानुसन्धिमत् ॥६५६॥
यूयमामुञ्चत ततः सिद्धिं ददत तत्परम् ।
विसन्ध्यस्मिन्कर्मणि च साक्षीभूताः स्थ इत्यपि ॥६६०॥
नमो वो वेदमूलेभ्यः स्वाहा च चरमे वदेत् ।

[शिवासनपवित्रदानमनुः]

शिवासनपवित्रस्य दाने यो मनुरीरितः ॥६६१॥
तमिदानीं ब्रुवे देवि सावधाना निशामय ।
तारादिमौ मैधपाशौ मायाप्रासादमन्मथाः ॥६६२॥
शाकिनी डाकिनी चेति पुरतोऽष्ट समुद्धरेत् ।
एह्येहि भगवत्युक्त्वा महाकालाग्निरुद्र च ॥६६३॥
महाकल्पान्त संभाष्य नर्तकेति ततो वदेत् ।
महामन्त्रमयेत्युक्त्वा विग्रहेति ततः परम् ॥६६४॥
गुह्यकालीवाहन महाशिवासन ततोऽप्यनु ।
इदं ते यज्ञसूत्रं च समर्प्पयामि चेत्यपि ॥६६५॥
परिधत्स्व तथामुञ्च सन्ध्यूनं द्वितयं युगम् ।
अस्मिन् देव्युपवीता तु कर्मणि त्वं च साक्ष्यपि ॥६६६॥
भवद्वन्द्वमधिष्ठाता भव सन्ध्यूनमेव च ।
सुप्रसन्नो भव तथा वरदो भव चेत्यपि ॥६६७॥
तुभ्यं नमोनमः फट् च स्वाहा सर्वान्तगोऽपि च ।
शिवासनीयसूत्रस्य दाने मनुरुदीरितः ॥६६८॥

[अष्टदलकमलस्य पवित्रदानमनुः]

अथाष्टदलपद्मस्य मन्त्रमाकलय प्रिये ।
मैधतारौ रमामाये कामरावौ च सामृतौ ॥९६९॥
फेत्कारी च तथा बीजमेतद्बीजाष्टकादनु ।
धर्मादीनां चतुर्णां हि तथा तत्प्रतियोगिनी ॥९७०॥
बीजानि सर्वाण्युल्लिख्य वसहाद्या नवार्णकाः ।
सेकाराश्चापि शोकाराः षट्कूटास्तदनन्तरम् ॥९७१॥
ततश्च निर्वाणमहानिर्वाणौ परिकीर्तितौ ।
एवं हि बीजकूटानां विंशद्भिश्च दुरूचिर्छता ॥९७२॥
देवीमूलासनमयं महाष्टदलपद्म च ।
चतुर्वर्गमय प्रोच्य चतुरर्थमयेति च ॥९७३॥
अस्मिन्कर्मणि संलिख्य साक्षिणो भवतेति च ।
सान्निध्यं च कुरुध्वं च युष्मभ्यं तदनन्तरम् ॥९७४॥
नमो नमस्तथा स्वाहा मनुरेषोऽष्टपादिकः ।
उदीरितानामष्टानामेषामष्टदलावधि ॥९७५॥
कालः सूत्रार्पणे देवि द्विविधः परिकीर्तितः ।
केषाश्चिन्मतमीदृक्षं प्रागावरणपूजनात् ॥९७६॥
देयं पवित्रं सर्वेभ्यस्ततस्तत्र प्रपूजनम् ।
केषामपि च मूलस्य पूजनानन्तरं स्मृतम् ॥९७७॥
यस्य यस्यार्चने कालो मूलमित्युपलक्षणम् ।
सर्वेषां भाण्डिकेराणां मौलेयानां तथैव च ॥९७८॥
दिगम्बराणामथ च मतमीदृशमेव हि ।
ममापि देवदेवेशि स्थितः सिद्धान्त ईदृशः ॥९७९॥
यस्य कस्यापि देवेशि पुरतः पूजनं चरेत् ।
पूजां समाप्य विधिवच्चरमे सूत्रमर्पयेत् ॥९८०॥
मतमेतत्समीचीनं बहुरादि [?] पुरस्कृतम् ।
एवं स्थिते क्रमो ज्ञेयो यन्नैमित्तिक ईरितः ॥९८१॥

आरम्भणीया पूजादौ क्रमेण त्रिदशेश्वरि ।
यस्य कस्यापि भवतु तदन्वन्ते समन्त्रकम् ॥९८२॥
तस्य तस्यार्पयेत्सूत्रमित्येषा वैदिकी स्थितिः ।
एवं स्थितायां वैदिक्यां व्यवस्थायां सुरेश्वरि ॥९८३॥
मन्त्रोद्धारक्रमो ज्ञेयो आनुषंगिकयोगतः ।
तस्मादस्य विदित्वैवं प्रकारं सूत्ररोपणे ॥९८४॥
तत्तन्मन्त्रस्यावसरे स स मन्त्रः प्रगृह्यते ।

[पात्राणां सूत्रदानमन्त्रः]

पात्राणामधुना षण्णां सूत्रदानमनुं ब्रुवे ॥९८५॥
सारस्वतागमशिरः कमला कुलभाविनी ।
पाशः प्रेतो भैरवी च शाकिनी डाकिनी तथा ॥९८६॥
नव बीजान्यमून्युक्त्वा प्रातिलोम्येन कीर्तयेत् ।
कूटत्रयं पुष्करादि भासादि त्रितयं ततः ॥९८७॥
वामयोगेन संकीर्त्य पराचिज्जेष्ठनामकम् ।
कूटत्रयं पुनर्दत्वा विधायाष्टादशांकुरीम् ॥९८८॥
एह्येहि ब्रह्ममय च तथा ज्ञानमयेति च ।
तथा निर्वाणमय च एवं सम्बोधनत्रयम् ॥९८९॥
देवीस्वरूपाऽमृतमय पुनः सम्बोधनत्रयम् ।
त्रिरामृतं बीजमय तत आयादिपञ्चकम् ॥९९०॥
फेत्कारिणी शेष उक्त्वा भवेत्तेन नवांकुरी ।
वेदयज्ञतपोयोगसुखध्यानकुलाकुल ॥९९१॥
अष्टभ्य एभ्यः शब्देभ्यः प्रत्येकं मय कीर्त्तयेत् ।
श्रीपात्रेति च संबुद्धिस्तुभ्यमेतदिति स्मरेत् ॥९९२॥
पवित्रमर्पयाम्युक्त्वा तेनाऽमुक्ता भवेति च ।
प्रसीद द्वितयं चापि सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ॥९९३॥

पवित्रारोहणं पूर्णं कुरुयुग्ममनन्तरम् ।
हृद्युग्ममस्त्रयुग्मं च सन्धियुक्तं शिरोऽपि च ॥९९४॥
इति श्रीपात्रसूत्रस्य दाने मनुरुदाहृतः ।
ताररावत्रपाकामकालीपाशांकुशक्रुधः ॥९९५॥
कुलिकप्रेतभैरव्यः फेत्कारी द्वादशी तथा ।
सद्योजातो वामदेवोऽघोरतत्पुरुषाः क्रमात् ॥९९६॥
ईशानशाम्भवौ चेति कूटषट्कमुदाहृतम् ।
तेजोधर्मबलप्राणसिद्धितत्त्वक्रियामनः ॥९९७॥
मयेत्यमीभ्योऽप्यष्टभ्यो वीरपात्रेति तत्परम् ।
अदः सूत्रं गृहाणानु परिधत्स्व द्वयं मतम् ॥९९८॥
कृताकृतावेक्षकश्च सन्धानसहितो भवः ।
सर्वसिद्धिप्रदायानु तुभ्यं हृद्युगलं शिरः ॥९९९॥
वीरपात्रस्यैष मन्त्रो भोगस्याप्यधुना शृणु ।
सारस्वतं शाकिनी च डाकिनी च तृतीयका ॥१०००॥
फेत्कारिणी चतुर्थी च पञ्चमी सृष्टिरेव च ।
द्वे चापि षष्ठीसप्तम्यौ त्रेता कृत्या तथैव च ॥१००१॥
अष्टमो भोग उद्दिष्टो नवमं सृष्टिकूटकम् ।
मायाबुद्धिद्वेषरागभ्रममोहलयस्मृति ॥१००२॥
पदेभ्योऽष्टभ्य एतेभ्यः संबोधनतया मय ।
नवसम्भोगपात्रं च तदपीदृशमीश्वरी ॥१००३॥
पवित्रं तुभ्यमिदमहमर्पयामि ततोऽपि च ।
गृह्ण गृह्ण च निसन्धि आमुञ्च द्वितयं तथा ॥१००४॥
त्वयि सर्वमोतप्रोतमित्येवं तदनन्तरम् ।
त्वयानुकूलसमयं साधयिष्ये ततः परम् ॥१००५॥
प्रसीद द्वितयं पश्चात्सुमना भव चैककम् ।
सर्वसिद्धिप्रदायानु तुभ्यमंगुष्ठयुग्मकम् ॥१००६॥

शिरः शेष इति प्रोक्तो भोगपात्रस्य वै मनुः ।
अथ वक्ष्ये शक्तिपात्रसूत्रसन्धायकं मनुम् ॥१००७॥
तारो माया रमा कामः स्त्री काली सृणिरेव च ।
अमृतं शक्तिरित्येवं नव बीजानि वै पुरः ॥१००८॥
शक्तिस्थितिपराख्यानि त्रीणि कूटानि वै पुरः ।
आनन्दश्च त्रिवर्गश्च कौलिको मङ्गलं तथा ॥१००९॥
मोहनो निर्वृत्तिश्चापि विज्ञानं वाङ्मयं तथा ।
त्रिवर्णमयशब्देभ्य एभ्यः संबुद्धितो मय ॥१०१०॥
शक्तिपात्रं तथैवोक्त्वा पवित्रमेतदुद्धरेत् ।
निवेदयामि संलिख्य प्रविधत्स्व द्वयं तथा ॥१०११॥
गृहाण युगलं चापि सुप्रसन्नो भव द्वयम् ।
सुमना भवेति युगलं द्विवारं वरदो भव ॥१०१२॥
पुनः समयविद्यां च द्विः प्रकाशय संलिखेत् ।
कुलविद्यां गोपय द्विः परापरपदादनु ॥१०१३॥
चक्रस्वरूपाय ततो भव ते हृदयद्वयम् ।
अस्त्रात्रयोऽग्निवनिते मन्त्रोऽयं शक्ति सूत्रदः ॥१०१४॥
साम्प्रतं कुलपात्रस्य मन्त्रमाकलय प्रिये ।
चैतन्यपाशशाकिन्यः कूर्चप्रासादविद्युतः ॥१०१५॥
योगिनीप्रेतभैरव्यः पुनः दण्डादिपञ्चकम् ।
क्षेत्रपालो डाकिनी च फेत्कारी प्रलयादिमा ॥१०१६॥
अष्टादशभ्य एतेभ्यो बीजेभ्यः परमेश्वरी ।
पराचिज्ज्येष्ठकूटानि तत्परं प्रातिलोम्यतः ॥१०१७॥
अनाहूतादि त्रितयं भासादि त्रितयं तथा ।
एवं तु बीजकूटानि भुवि तानि भवन्ति हि ॥१०१८॥
इच्छा सत्ता चित्तभावस्तथा सर्गो गुणत्रयम् ।
एभ्यो मयपदं प्रोच्य कुलपात्रेति तत्परम् ॥१०१९॥

यज्ञसूत्रमिदं गृह्ण द्वितयं समुदीरयेत् ।
स्वयं बन्ध युगं चापि ममेमामर्हणामपि ॥१०२०॥
रक्षद्वयं पाहियुगं सर्वसिद्धिप्रदापि च ।
कुलमार्गपदात्सेतो साक्ष्येण त्वामहं वृणे ॥१०२१॥
महातेजोवतारेति तुभ्यं सहृदयं शिरः ।
अथ ब्रवीमि ते मन्त्रं गुरुपात्रप्रदायकम् ॥१०२२॥
वेदादिरावौ चैतन्यं कमला च कुलांगना ।
कामो वधूर्गारुडं च नक्षत्रं योगिनी तथा ॥१०२३॥
कालादित्यौ काकिनी च ज्ञानेच्छासंविदस्त्रयः ।
शाकिनी षोडशतमा बीजान्येतानि वै पुरः ॥१०२४॥
कूटौ च निर्वाणमहानिर्वाणौ तदनन्तरम् ।
प्रभावश्च प्रबोधश्च प्रमाणप्रत्ययावपि ॥१०२५॥
वैराग्यं च विवेकश्च विकारोऽपि स्मयोऽपि च ।
एभ्यो मय समुद्धृत्य गुरुपात्रेति तत्परम् ॥१०२६॥
उपवीतमिदं प्रोच्य गृहाण तदनन्तरम् ।
आमुञ्च परिधत्स्वेति त्रितयं सन्धिवर्जितम् ॥१०२७॥
ततश्च तत्पद प्रोच्य प्रकाशक समुद्धरेत् ।
तुभ्यमों नम इत्येवं फट् स्वाहा तदनन्तरम् ॥१०२८॥
एवं षट्पात्रपूजा वारेऽमत्रार्चने कृते ।
शेषे तत्तन्मनूच्चारपूर्वकं सूत्रमर्पयेत् ॥१०२९॥

[गुह्यकाल्याः नववक्त्राणां सूत्रार्पणमनुः]

नवानामथ वक्त्राणां वक्ष्ये सूत्रार्पणे मनुम् ।
तच्चावरणपूजायाः प्रस्तावे तदनेहसि ॥१०३०॥
सवेदादि सचैतन्यं माया पाशस्मरांऽकुशम् ।
रोषवामारावरमायोगिनी दीप एव च ॥१०३१॥

द्वादशेमानि बीजानि व्याहृत्य पुरतः प्रिये ।
ततोऽदोद्ध्वं वदेत्कूटं सत्त्वं भासामनन्तरम् ॥१०३२॥
हिरण्यगर्भं सान्वाख्यं संहारं चादि पुष्करम् ।
पुनस्तावन्ति बीजानि डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥१०३३॥
फेत्कारी कर्णिकादी द्वे सुरसादिद्वयं ततः ।
तन्त्रादि द्वितयं चापि द्वे मारण्डादिमे तथा ॥१०३४॥
पुनर्दीपश्चेति ततो महाचण्ड पदादनु ।
योगेश्वरी स्वरूपेति द्वोपि वक्त्रेति तत्परम् ॥१०३५॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलद्भिः स्फुर प्रस्फुर तादृशम् ।
मोहान्धकामानाभाष्य नाशय द्वितयं ततः ॥१०३६॥
मुक्तिमार्गं पुनः प्रोच्य ततः प्रकटय द्वयम् ।
इदमुपवोतं ते समर्पयामि ततोऽप्यनु ॥१०३७॥
गृह्ण द्वयस्यानु परिधेहि द्वितयमेव च ।
ममेदं कर्म च ततो वदेत्सफलय द्वयम् ॥१०३८॥
प्रसीद द्वितयं चापि सिद्धिं देहि युगं तथा ।
नमस्त प्रोच्य सर्वापद्धराय तदनन्तरम् ॥१०३९॥
अस्त्रत्रयं सहृदयं मन्त्र आद्योऽयमीरितः ।
पञ्च सारस्वतस्यान्ते त्रपा रावश्च योगिनी ॥१०४०॥
सकूर्चक्षेत्रपवधूप्रासादामृतगारुडम् ।
नृसिंहसिंहौ बीजानि षोडशेमानि वै पुरः ॥१०४१॥
एतदर्द्धमथो कूटं तत्राद्यं नारसिंहकम् ।
ततो द्वितीयतार्त्तीयौ पद्मभौमावुदीरितौ ॥१०४२॥
बृहद्रथन्तरयुतौ सरजस्तमसावपि ।
विशुद्धाख्यं सर्वशेषे पुनर्बीजानि षोडश ॥१०४३॥
भोगः सृष्टिस्ततस्त्रेता कृत्या रञ्जिन्यथो घटी ।
चर्पटादीनि चत्वारि तावन्नादान्तकादि च ॥१०४४॥

पुनर्नृसिंहसिंहौ च चत्वारिंशाक्षरादनु ।
वज्रकापालिनीशब्दात्स्वरूप परिकीर्तयेत् ॥१०४५॥
सिंहवक्त्रा समाभाष्य महोग्रतर इत्यपि ।
पुनरुक्त्वा वज्रनखदंष्ट्रायुध समालिखेत् ॥॥१०४६॥
जय द्वयं जीव युगं चट द्विः प्रचट द्वयम् ।
भवपाशं दारय द्विर्विदारय युगं तथा ।१०४७॥
ततस्तुभ्यमिदं यज्ञसूत्रमावेदयामि च ।
गृह्णद्वयं सन्धिहीनमामुञ्च द्वितयं तथा ॥१०४८॥
पवित्रारोहणमिदमविघ्नं कुरु च द्वयम् ।
सान्निध्यमत्र संलिख्य[कल्प]य द्वितयं ततः ॥१०४९॥
नमस्ते ज्वलते प्रोच्य पुनः प्रज्वलते वदेत् ।
ततो महाभीषणाय तत्पश्चान्मृत्युमृत्यवे ॥१०५०॥
रोषद्वयं फट्त्रितयं हृदयं शिर एव च ।
इति ते सिहंवक्त्रस्य प्रोक्तः सूत्रार्पणे मनुः ॥१०५१॥
आगमानां शिरो मैधं पाशांकुशवधूस्मराः ।
कूर्चरावौ प्रेतपरे कालादित्यौ च काकिनी ॥१०५२॥
योगिनी भैरवं चापि बीजानि दश पञ्च च ।
षडेव कूटानि ततः श्रीकण्ठानन्दशाम्भवाः ॥१०५३॥
अनाहताभिधं चापि मणिपूरकमेव च ।
स्वाधिष्ठानं पुनः पञ्चदश बीजानि पार्वति ॥१०५४॥
डाकिनी प्रलयो हारशिखाजम्भास्तथैव च ।
कुशिकौपह्वरद्यमु [?] रागव्यजनसंज्ञकाः ॥१०५५॥
स्वस्वद्वितीयसंयुक्तादसेपानि [?] तथैव च ।
स्वरूपपदतः पूर्वं महाडामर्युदीरयेत् ॥१०५६॥
फेरुवक्त्र समालिख्य फेरुरावाच्च भीषणा ।
महाश्मशाननिलय महोल्कामुख चेरयेत् ॥१०५७॥

प्रलयानलं वमयुगं मम शत्रुं दहद्वयम् ।
कहयुग्मं धकयुगं ज्वलद्विः प्रज्वलद्वयम् ।।१०५८।।
इदं पवित्रं तुभ्यं समर्पयामि समालिखेत् ।
गृहाणद्वितयं चापि परिधेहि युगं तथा ।।१०५९।।
विसन्ध्यस्मिन् कर्मणि च साक्षीभव युगं ततः ।
नमस्तेऽनु महामांसप्रियाय परिकीर्तयेत् ।।१०६०।।
सर्वसिद्धिप्रदायानु शत्रुक्षयकराय च ।
रोषास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते तृतीयो मनुरीरितः ।।१०६१।।
चैतन्यपाशकमलाकालीप्रासादगारुडाः ।
योगिनो शाकिनी कूर्चकालादित्याश्च डाकिनी ।।१०६२।।
द्वादशेमानि बीजानि पुरतः समुदाहरेत् ।
दलमेतस्य कूटं तु त्रैपुरं च परापरम् ।। १०६३।।
चित्संहारादिद्वयं च विपरीततया मतम् ।
विधिश्च मेखलाकुण्डे कर्णिकाश्रृंखले अपि ।।१०६४।।
नाराचशूलनालीकभुशुण्डचुत्कोचिनीयुते ।
त्रैता कृत्या च तावन्ति ततः सिद्धिकराल्यपि ।।१०६५।।
स्वरूपकपिवक्त्रेति ततो नखरशब्दतः ।
दशनायुधसंलिख्य महापिंगलकीर्तयेत् ।।१०६६।।
सटाय समनूद्धृत्य द्विश्चल द्विश्च चालय ।
प्रतिपक्षं नाशय द्विर्द्विः मारय तथैव च ।।१०६७।।
किचिद्वयं कहयुगं तुभ्यं सूत्रमिदं तथा ।
निवेदयामि संकीर्त्य गृहाण परिधत्स्व च ।।१०६८।।
द्वयं द्वयं समाभाष्य ततोऽत्राधिष्ठितो भव ।
सन्धानरहितं कार्यं नमस्ते पिंगलेरयेत् ।।१०६९।।
लोचनायेति चोद्धृत्य महाजटुलमूर्तये ।
अस्त्रत्रयं कूर्चयुगं हृदयं शिर एव च ।।१०७०।।

कुलांगना योगिनी च रोषवध्वौ च शाकिनी ।
डाकिनी चापि फेत्कारी कालीगरुडमन्मथाः ॥१०७१॥
हाकिनीहारवेतालकुटिलारागचर्पटाः ।
हेममन्दारोदयास्तमेरुरत्नमणिक्रमाः ॥१०७२॥
अष्टावेते क्रमात् कूटाः पुनर्बीजानि षोडश ।
भ्रामरी च प्रचण्डा च मन्दः समोह एव च ॥१०७३॥
भोगः सृष्टिः सानुरक्षस्तन्द्रा कुटिलया सह ।
नादान्तकश्चामरं च मारण्डोऽपि विनादयुक् ॥१०७४॥
विरूपश्चापरान्तश्व चत्वारिंशदिमेऽखिलाः ।
ततः पुनर्वदेत् सिद्धिविकरालीस्वरूप च ॥१०७५॥
विसन्धानं वदेदृक्षवक्त्र तत्परतः पुनः ।
निर्विभक्तो क्रिश्च खरनखरेति पदे वदेत् ॥१०७६॥
दन्त नीलसटाभारभासुरेति ततः परम् ।
ज्वल प्रज्वल इत्येवं स्फुर प्रस्फुर इत्यपि ॥१०७७॥
चत्वारि द्विर्द्विराभाष्य प्रसीद द्वितयं तथा ।
पवित्रमेनं तुभ्यं च सन्धिना वेदयामि च ॥१०७८॥
गृहाण परिधेहि द्वियुगयोरपि सुन्दरि ।
कर्मादः पूरय द्वन्द्वं साक्षीभव युगं ततः ॥ १०७९॥
नमस्तेऽस्यानु च वनविहारिणि इतीरयेत् ।
महाकान्तारपदतश्चारिणे तदनन्तरम् ॥१०८०॥
हृदयास्त्रशीर्षं चरमे मनुरार्क्ष्य इति स्मृतः ।
नारं यद्वदनं षष्ठं तद्देव्या मुख्यमुच्यते ॥१०८१॥
गुह्यकाल्यभिधानं च तच्छेषे कथयिष्यते ।
अधुना गारुडास्यस्य मनुमाकलय प्रिये ॥१०८२॥
मैधं पाशी भौवनेशी सृणिकामवधूरुषः ।
प्रासादो योगिनी रावडाकिन्यौ प्रलयोऽपि च ॥१०८३॥

शृंखला शूलनालीकपङ्क्तः कुटिलया सह ।
गारुडं चेति बीजानि पुरतोऽष्टादश प्रिये ॥१०८४॥
खेचरी डाकिनी माया प्रासादक्रमसेतवः ।
मन्त्रवर्णकुलाख्याश्च कूटान्नव ततः परम् ॥१०८५॥
पुनस्तावन्ति बीजानि वेद्यादिद्वितयं बलिः ।
कल्पादि पञ्चकं जम्भो ग्रामर्या द्वितयं तथा ॥१०८६॥
मन्दादिद्वितयं चापि युगलं दाक्षिकादि च ।
षट्चक्रं शक्तिसर्वस्वं......................॥१०८७॥
गारुडाख्यं पुनर्बीजं सर्वशेषे प्रकीर्तयेत् ।
चण्डकापालिनी शव्दात्स्वरूप समुदाहरेत् ॥१०८८॥
तार्क्ष्यवक्त्र ततोऽप्युक्त्वा वज्राधिककराल च ।
चञ्चुपक्षसमाभाष्य पुनः पवनकोटि च ॥१०८९॥
गुणवेग ततो दत्वा पतद्भिः प्रपतद्वयम् ।
तावत्स्फुर प्रस्फुर च जीवयुग्मं जयद्वयम् ॥१०९०॥
महाबलं प्रकटय द्विरिदं सूत्रं गृहाण च ।
निःसन्धि सकृदेवापि प्रतिमुञ्च तथैककम् ॥१०९१॥
सान्निध्यमत्रोद्धृत्यानु वदेत्कलय पार्वति ।
नमस्तेऽखण्डित प्रोच्य ङेन्तं ब्रह्माण्डमण्डलम् ॥१०९२॥
महातेजपदं तद्वन्महोग्राकार एव च ।
महाप्रलयकारी [च] ब्रह्माण्ड परिकीर्तितः ॥१०९३॥
विशेषणान्यमूनि स्युरेकाकाराणि पञ्च वै ।
रोषत्रयास्त्रत्रितये हृदये द्वेकमेककम् [?] ॥१०९४॥
अथो मकरवक्त्रस्य सूत्रदं मनुमीरये ।
तारमैधे पाशशृणी मायालक्ष्मीस्मरस्त्रियः ॥१०९५॥
भारुण्डा योगिनी काली नृसिंहक्षेत्रपालकौ ।
डाकिनी चापि फेत्कारी बीजानि दश पञ्च च ॥१०९६॥

कूटान्यत्र षडेव स्युर्नवार्णघटितानि हि ।
पुष्करादित्रयं किन्तु प्रातिलोम्येन कीर्तयेत् ॥१०९७॥
संहारादीनि च त्रीणि कीतंनं पूर्ववत्प्रिये ।
अन्तेऽमीषां पुनर्बीजान्यथ पञ्चदशेरयेत् ॥१०९८॥
मुक्ताहारक्रमशिखाः मारण्डा सानुमेखले ।
ताटंकनीलाभूतिन्यः प्रचण्डा पूरकं तथा ॥१०९९॥
मारण्डाद्वितयं शेष उत्कोचिन्यपि कथ्यते ।
अतोऽट्टहासिनिशब्दात्स्वरूपपदमीरयेत् ॥११००॥
ततो मकरवक्त्रेति तथा दीर्घसितापि च ।
ततो दंष्ट्रा विकराल महाभोगाच्च भासुर ॥११०१॥
तथा जलचराद्राज वर्द्ध बृह द्वयं द्वयम् ।
शत्रुरक्तं पिबद्वन्द्वं प्रपिब द्वितयं तथा ॥११०२॥
मां रक्षयुगलं चापि प्रसीदद्वयमेव च ।
यज्ञोपवीतमेतत्तु तथैवोपनयामि च ॥११०३॥
गृहणाऽमुञ्च तथा धत्स्व [द्वितयं] द्वितयं लिखेत् ।
ततः पूर्णमिदं कार्यं समाचर युगं ददेत् ॥११०४॥
निः सन्धानं तथा चाधिष्ठानं कुरु युगं वदेत् ।
नमस्तेऽनु वदेद्रक्तार्णवसञ्चारिणे तथा ॥११०५॥
महाविकटपुच्छाय यादोराजाय चैव हि ।
हृदयास्त्रमस्तकान्यन्ते गजास्यस्याधुना शृणु ॥११०६॥
मैधं तारं तथा माया लक्ष्मी कामाङ्गनास्तथा ।
योगिनीकालिकारोषाः प्रासादगारुडौ तथा ॥११०७॥
नृसिंहप्रेतभैरव्यः शाकिनी. . . . [डाकिनी] तथा ।
प्रलयश्चाथ फेत्कारी वीजान्यष्टादशैव हि ॥११०८॥
भासानाख्ये च संहारस्तमश्च रज इत्यपि ।
विशुद्धाज्ञे च निर्वाणं महानिर्वाणमेव च ॥११०९॥

एषां नवानामन्ते च द्विगुणं बीजमुद्धरेत् ।
दुष्कृतं सुरसश्चापि भद्रिका चर्पटस्तथा ॥१११०॥
चतुष्कं च चतुष्कं च एतदादि समुद्धरेत् ।
परापरः शाम्भवश्च द्वावेतावन्तिमौ मतौ ॥१९९१॥
पञ्चचत्वारिंशसंख्या बीजकूटा भवन्ति हि ।
मुण्डमालिन्यनुब्रूयात्स्वरूपदमेव हि ॥१११२॥
गजवक्त्र ततः पश्चाद्वज्राधिकपदादनु ।
दन्तशुण्डायुध प्रोच्य महाकायानु चेत्यपि ॥१११३॥
प्रस्रवद्दानधारानु वदेद्भूषितगण्ड च ।
महामदोन्मत्त इति तथा समरकर्कश ॥१११४॥
वृह प्रवृहद्विर्द्विश्च चल धाव द्वयं द्वयम् ।
द्विषतो मम संलिख्य जहि युग्मं हन द्वयम् ॥१११५॥
मां पालय युगं चापि पाहियुग्मं तथैव च ।
पवित्रमिदमाभाष्य ततोमा [आ] वेदयामि च ॥१११६॥
गृहाणामुञ्च च परिधत्स्व द्विर्द्विः समुद्धरेत् ।
सन्ध्यूनमत्राधिष्ठानं कुरुयुग्मं ततो वदेत् ॥१११७॥
साक्षीभवद्वयं वाथा————————=————[?]
उक्त्वा नमस्ते ङन्तं च महाबलपराक्रम ॥१११८॥
तथा सर्वातीतशक्तिर्महाराज्याङ्गमेव च ।
कूर्चास्त्रहृदयानां द्विः सन्धियुक् छिर एककम् ॥१११९॥
एष ते गजवक्त्रस्य मन्त्रः समुपवर्णितः ।
वाजिवक्त्रमनुं वक्ष्ये साम्प्रतं त्रिदशेश्वरि ॥११२०॥
कुलाङ्गना योगिनी च रोषरामा [च] शाकिनी ।
डाकिनी प्रलयस्ताक्ष्यो मन्मथः पाशकालिके ॥११२१॥
प्रलयो नरसिंहश्च फेत्कारी त्रेतया सह ।
हयग्रीवः सर्वशेषे बीजानीमानि षोडश ॥११२२॥

क्रमतो युस्वरैक्ता तावर्णाः षड्च कूटकाः ।
द्वावन्यौ शाम्भवेशानौ बीजाली तावती पुनः ॥११२३॥
नक्षत्रमादिमं विद्युन्मौञ्जीसूत्रं सकर्णिकम् ।
पतनादिद्वयञ्चान्यत् प्रतानादिद्वयं तथा ॥११२४॥
विराधादिद्वयञ्चाथ षट्चक्रादिद्वयं ततः ।
शक्तिसर्वस्वादियुगमन्तिमं षोडशाह्वयम् ॥११२५॥
कालचक्रेश्वरी शब्दात् स्वरूप हयवक्त्र च ।
खुरखण्डितत्रिभुवनोदर चापि मनोजव ॥११२६॥
त्रयी गायक संलिख्य ज्वलद्विर्जीव च द्वयम् ।
युगं युगं कह धक प्रसीद द्वयमेव च ॥११२७॥
मम शत्रून् हन पच मथ द्विर्द्विः समुद्धरेत् ।
सिद्धिं मे देहि युगलं दापय द्वितयं तथा ॥११२८॥
पवित्रमिदमावेदयामि गृह्ण युगं ततः ।
परिधेहि युगञ्चापि पवित्रारोहणे पदात् ॥११२९॥
सान्निध्यं कल्पय द्वन्द्वं साक्षीभव युगं पुनः ।
नमस्ते नु महावेगः शक्रैश्वर्यप्रदस्तथा ॥११३०॥
महाभीमतरह्लेषासन्त्रासितजगत्त्रयम् ।
तथा महासटामाली तथा स्वाराज्यदाय्यपि ॥११३१॥
विशेषणानि ङेन्तानि पञ्चामूनि भवन्ति हि ।
कूर्चत्रयास्त्रत्रितयं हृद्युगं मौलिरेककः ॥११३२॥
पवित्रारोहणाख्येऽस्मिन् कर्मणि त्रिदशेश्वरि ।

[सुखानुगुणनवपात्रकल्पनम्]

अधिकं वर्तते किञ्चित्तन्निशामय सादरा ॥११३३॥
मुखेभ्यो नवसंख्येभ्य एकैकं पृथगेव हि ।
पात्रं प्रकल्पनीयं स्यात् क्रमेणाननपूर्वकम् ॥११३४॥

समासैरथवा व्यासैः समयस्यानुसारतः ।
मूलमन्त्रेण तद्देयं गृहीत्वा नामनी उभे ॥११३५॥
ततः प्रसन्नापाङं [त्वं] हि नम इत्येवमुद्धरेत् ।
कुलकुम्भाय तत्स्थायै सुधादेव्यै च सुन्दरि ॥११३६॥
पवित्रयुगलं देयं मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
षण्णां हि मूलपात्राणां कुलकुम्भः पृथक् स्थिरः ॥११३७॥
तत्रस्था च सुधादेवी तदधिष्ठत्र्युदीरिता ।
नवास्यपात्ररीतौ तु पृथगेवापरो घटः ॥११३८॥
सुधादेवो च तत्रस्था द्वौ वारौ तत्प्रपूजनम् ।
द्विवारं सूत्रदानञ्च तत्रात्रापि सुरेश्वरि ॥११३९॥
एक एव मनुर्ज्ञेय उभयत्रापि कर्मणि ।
अत एव तयोर्मन्त्रः पुराणप्रतिपादितः ॥११४०॥

[कुम्भसुधयोः पवित्रार्पणमनुः]

तयोस्तु कुम्भसुधयोरिदानीं मनुमीरये ।
तारो मैधं भौवनेशी योगिनी शाकिनी रुषः ॥११४१॥
डाकिनी प्रलयश्चापि फेत्कारी मणिमालया ।
नृसिंहकुम्भौ तदनु बीजानि द्वादशाग्रतः ॥११४२॥
कुलकुम्भाय वै तुभ्यमुपवीतमुदीरयेत् ।
ससन्ध्युपनयाम्युक्त्वा तेन नद्धो भवोच्चरेत् ॥११४३॥
बद्धो भव पुनर्ब्रूयाद् रुद्धो भव पुनर्वदेत् ।
क्षीरोदार्णवाऽवतीर्णेति पवित्रार्पणिकं मनुम् ॥११४४॥
मैधत्रयं त्रपायुग्मं रावः कान्ता च योगिनी ।
डाकिनी प्रलयो हारनृसिंहक्षेत्रपालकाः ॥११४५॥
गारुडो मदनो लक्ष्मीः सुधादेव्यै ततः परम् ।
पवित्रमेतदाभाष्य ससन्ध्युपनयामि च ॥११४६॥

सुप्रीता भव तत्पश्चाद् वरदा भव चेत्यपि ।
तथा च गतसन्धानमधिष्ठात्री भवापि च ॥११४७॥
सर्वानाराधयिष्ये च त्वया शब्दादनन्तरन् ।
ततस्तुभ्यं सुधादेव्यैं हृदयद्वितयं शिरः ॥११४८॥
एवमित्युभयत्रापि सुधाकलशयोर्महः ।
कर्तव्योऽमुत्र सङ्कल्पे तथा वक्त्रविधावपि ॥११४९॥

[अष्टारस्थदेवतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

पवित्रारोहणे कार्ये या अष्टारस्य देवताः ।
तत्पवित्रमनूंवक्ष्ये क्रमेण त्रिदशेश्वरि ॥११५०॥
अष्टारस्य नवारस्य देव्यः सप्तदशेह या ।
मूलमन्त्रेण तासां हि सूत्रदानं विधीयते ॥११५१॥
प्रणवो भौवनेशी च यौगिनी राव एव च ।
पुष्करं कुटमस्यानु फेत्कारी त्रेतया सह ॥११५२॥
करालो कृत्यया सार्द्धं देव्याः सम्बोधनं ततः ।
प्रचण्डकरवालिन्यनु कूर्चः शिर एव च ॥११५३॥
चतुर्विंशत्यक्षरोऽयं मन्त्रराजो महापदात् ।
प्रसिद्ध उग्रचण्डाया यामले रुद्रभाषितः ॥११५४॥
त्रिवारमेवमुच्चार्य पूर्वादिक्रमतः प्रिये ।
पवित्रं पाणिनादायोग्रचण्डायै निवेदयेत् ॥११५५॥

[महालक्ष्म्या पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथ मन्त्रं महालक्ष्म्याः शृणु षट्त्रिंशदक्षरम् ।
यदुद्धृतं शङ्करेण कुब्जिकायाः प्रसङ्गतः ॥११५६॥
चैतन्यं कमला माया मदनो वनिताऽपि च ।
शाकिनी गरुडो रोषः प्रासादो नरकेशरी ॥११५७॥
महालक्ष्मी समाभाष्य लक्ष्मीं मे देहि कीर्तयेत् ।
नमः कमलवासिन्यै महाराज्यप्रदा पदम् ॥११५८॥

ङेऽन्तं शेषे शिरश्चापि महालक्ष्म्या असौ मनुः ।
सर्वत्र वारत्रितयं मनूच्चारण......॥११५९॥
सर्वज्ञः सर्वान्तर्याम्यतः परम् ......।
सर्वव्यापि ततश्चापि भ्रष्टेमानि पदानि हि ॥११६०॥
विभक्तेः खलु तुर्याया एकत्वे विहितानि च ।
तुभ्यं पवित्रमेतच्च ससन्ध्यावेदयामि च ॥११६१॥
प्रसीद भगवान् प्रोच्य प्रासादत्रितयं ततः ।
ततो हृच्छिरसी दद्यादेतस्यानन्तरं पुनः ॥११६२॥
गुरुपूजा प्रकर्तव्या तदन्ते सूत्रमर्पयेत् ।

[गुरुसूत्रार्पणमन्त्रः]

तन्मन्त्रस्तारपरमौ ज्ञानदीपप्रदाय च ॥११६३॥
तत्पदप्रकाशकाय त्वं पददर्शकाय च ।
इदं ततो ब्रह्मसूत्रं समर्पयामि चेत्यपि ॥११६४॥
तत्त्वबोधक संलिख्य प्रसीद द्वितयं ततः ।
तुभ्यं मनस्तथा शीर्षं गुरुसूत्रार्पणे मनुः ॥११६५॥

[द्वारपालानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

एतस्मिन्नेव समये द्वारपालं प्रपूजयेत् ।
पवित्रमस्मै दद्याच्च तन्मन्त्रमधुना ब्रुवे ॥११६६॥
पाशसारस्वतक्रोधप्रासादकमलाह्रियः ।
डाकिनी चाथ फेत्कारी बीजान्येतानि वै पुरः ॥११६७॥
महाभाग द्वारपाल पवित्रं भवते पदात् ।
समर्पयामीति पदमिदमामुञ्च चेत्यपि ॥११६८॥
सन्धिहीनं ततः पश्चात् त्वं मां पालय पालय ।
पूजामिमां रक्ष युगं फट् त्रयं वह्निवल्लभा ॥११६९॥

१—अत्र खण्डिता मातृकेति प्रतीयते ॥

द्वारपालपवित्रस्य मनुरेष समर्पकः ।

[वटुकस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथो निशामय शिवे वटुकार्पणकं मनुम् ॥११७०॥

चैतन्यं प्रणवो माया हारः कर्णिकया सह ।

शृङ्खलादित्रयञ्चापि महासिद्धिप्रदाय च ॥११७१॥

महारुद्रावताराय वदेद् भगवते ततः ।

पुनर्वटुकनाथाय पवित्रमेतदित्यपि ॥११७२॥

निवेदयामि सन्ध्याख्यं तुभ्यं पश्चान्महाबल ।

पराक्रमाय संलिख्य कालादित्यौ त्रिवारकम् ॥११७३॥

पवित्रारोपणं प्रोच्य सफलञ्च कुरु द्वयम् ।

[क्षेत्रपालस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

हृदस्त्रशीर्षण्यन्ते च क्षेत्रपालस्य शृण्वतः ॥११७४॥

सारस्वतं त्रिरुच्चार्य क्षेत्रपालस्य च त्रयम् ।

कूर्चप्रासादयोस्त्रिस्त्रिस्तत आयादिपञ्चकम् ॥११७५॥

कूटञ्च शाम्भवं पश्चादेवमष्टादशोऽत्तरम् ।

तुभ्यं भगवते क्षेत्रपालायेति ततः परम् ॥११७६॥

पवित्रमिदमाभाष्य अर्पयामि च सन्धिमत् ।

गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विः परिधत्स्व तथा द्वयम् ॥११७७॥

पवित्रारोहणञ्चोक्त्वा सम्पूर्णं कुरु च द्वयम् ।

देवीपुरःसर महाभाग सन्धानवर्जितम् ॥११७८॥

अचिन्त्यबलतो ब्रूयात् पराक्रम पदं ततः ।

सिद्धिं मे देहि संलिख्य सकृद्दापय कीर्तयेत् ॥११७९॥

हूं हूं फट् फडथोच्चार्य चरमे वह्निवल्लभा ।

[युगानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

सूत्रे युगेभ्यो दातव्ये मन्त्रं ते कथयाम्यहम् ॥११८०॥

मैधपाशकलाकामहारदीपबलिस्त्रियः ।

फेत्कारीडाकिनीजम्भप्रलया द्वादश स्मृताः ॥११८१॥

चतुर्भ्योऽनु युगेभ्यश्च पवित्रमिदमित्यपि ।
अर्पयामि ससन्धानं यूयमेतदितः परम् ॥११८२॥
आमुञ्चत द्विरुच्चार्य प्रतिबध्नत च द्वयम् ।
पवित्रारोहणं मे च रक्षत द्वितयं तथा ॥११८३॥

[वेदानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

युष्मभ्यं हृदयं शीर्षं वेदानामधुना शृणु ।
तारत्रयं समाभाष्य ब्रह्मनिःश्वसितं पदम् ॥११८४॥
क्रतुप्रवर्तकमथ धर्मनिर्णायकस्तथा ।
पदानि त्रीण्यमून्यत्र भ्यसन्तानि समाचरेत् ॥११८५॥
चतुर्भ्योऽनु च वेदेभ्य उपवीतमिदं ततः ।
समर्पयामि संलिख्य यूयं सर्वेऽत्र कर्मणि ॥११८६॥
अधिष्ठातार इत्युक्त्वा भवतेति च सन्धिमत् ।

[दिक्पालानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

नमो वः शीर्षमन्ते च दिक्पालानामथ ब्रुवे ॥११८७॥
तारसारस्वतरमा कामिनोह्लीकुलाङ्गनाः ।
प्रासादशाकिनीप्रेतभैरवीकालिकारुषः ॥११८८॥
क्षेत्रपालशिखापद्मप्रलयाङ्कुशविद्युतः ।
मारण्डादित्रयं पश्चात् कुटिलादित्रयं ततः ॥११८९॥
चतुर्विंशति संख्यानि बीजान्येवं भवन्ति हि ।
दिग्विदिगधीशपदं ततोऽष्टौ पदमेव च ॥११९०॥
लोकपाल पदश्चापि पदं सपरिवार च ।
देवीसिंहासनधरपदं तदनु कथ्यते ॥११९१॥
पदानीमानि पश्चापि भ्यसन्तानि समाचरेत् ।
इदं यज्ञोपवीतञ्च युष्मभ्यं तदनूद्धरेत् ॥११९२॥
समर्पयामि चोद्धृत्य गृहीत द्वितयं ततः ।
कर्मदः साङ्गमाभाष्य तथोपनयतापि च ॥११९३॥

ससन्धानतया वाच्यं ततो यागमिदं वदेत् ।
रक्षत द्वितयञ्चापि सम्पूर्णं कुरुत द्वयम् ॥११९४॥
नादपाशौ क्षेत्रकले स्थाणुशवौ ततोऽप्यनु ।
दुर्द्धर्षवाग्भवौ चापि प्रणवोऽश्वत्थ एव च ॥११९५॥
कुणपः कौल[र]जं चापि शीर्षकं शल्यमेव च ।
कीलं तथाऽस्थिभेदी च बीजानीमानि षोडश ॥११९६॥
अस्त्रद्वयं हृच्छिरसी दिक्पालार्पणको मनुः ।

[पञ्चानां प्रेतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

प्रेतानामथ पञ्चानां ब्रुवे सूत्रार्पणं मनुम् ॥११९७॥
सारस्वतश्च प्रणवो मायापाशाङ्कुशावपि ।
रोषरावौ डाकिनी च प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ॥११९८॥
इमानि दश बीजानि पुरतः परिभाष्य च ।
ब्रह्मादि पञ्च प्रेतेभ्य इदं सूत्रमुदीरयेत् ॥११९९॥
आवेदयामि सन्ध्याढ्यं प्रतिबध्नीत च द्वयम् ।
विसन्ध्यविघ्नमस्तूक्त्वा श्रेयोऽस्तु तदनन्तरम् ॥१२००॥
पुष्टिरस्तु समाभाष्य समृद्धिरस्तु चेत्यपि ।
नमो वो देवदेवेभ्य स्वाहा च चरमे भवेत् ॥१२०१॥

[भैरवाख्यषष्ठपीठस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथ षष्ठस्य पीठस्य भैरवाख्यस्य सुन्दरि ।
पवित्रदायकं मन्त्रं विशेषेणोपपादये ॥१२०२॥
वेदादिरावयोगिन्यस्त्रपा कामस्त्रियावपि ।
कल्पादिपञ्चकं वेदी कर्णिका शृङ्खला तथा ॥१२०३॥
कूटौ पुष्करसंहारौ स्युरष्टादशसंख्यकाः
समत्वभासौ तदनु महाभैरव चेत्यपि ॥१२०४॥
भयङ्कराकार ततः शवरूपधरेत्यपि ।
द्विर्द्विर्ज्वल प्रज्वल च महामन्त्रमयेति च ॥१२०५॥

तुभ्यमिदमुपवीतमहं दद इतः परम् ।
उद्धृत्य बन्ध बन्धेति परिधत्स्व द्वयं तथा ॥१२०६॥
अस्मिन् पवित्रारोहणे साक्षी भव विसन्धि च ।
अधिष्ठाता भव तथा ततः प्रासादपञ्चकम् ॥१२०७॥
रोषद्वयं फड्द्वितयं हृदयं शिर एव च ।
मन्त्रेणैवामुनाष्टारपूजावसर ईश्वरि ॥१२०८॥
अष्टभ्यो भैरवेभ्यस्तु दद्यात्सूत्रं हि तादृशम् ।
अस्मिन्नेव ह्यवसरे ददति ह्य[?]दिगम्बराः ॥१२०९॥
मन्त्रेणैव हि निर्वाहं केचित् कुर्वन्ति कौलिकाः ।
भैरवत्वपुरस्कारादेकमेवेति मन्मतम् ॥१२१०॥

[षोडशयज्ञघटितासनस्य पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथ षोडशयज्ञेन घटितस्यासनस्य हि ।
पवित्रार्पणिकं मन्त्रं दुरूहं कथयामि ते ॥१२११॥
तारत्रयं पुरो दत्वा मैधरावौ ततो वदेत् ।
प्रभञ्जनादि सप्तैव कालरात्र्यन्तमीरयेत् ॥१२१२॥
रागञ्च सारसं पश्चात् कुशिकं व्ययमेव च ।
यज्ञानां षोडशानां हि ये ये कूटाः पुरोदिताः ॥१२१३॥
अब्धिरावौ चावभृथंसृणिबीजञ्च हृन्मनुः ।
वेदादिमुक्त्वा परमहंसिनीति प्रकीर्तयेत् ॥१२१४॥
निर्वाणमार्गदे प्रोच्य विषमोपप्लवेरयेत् ।
ततः प्रशमनीत्युक्त्वा सकलेति समुद्धरेत् ॥१२१५॥
मम शत्रूनिति प्रोच्य मर्द्द खाहि युगं युगम् ।
त्रिशूलेनेति चोल्लिख्य भिन्धि छिन्धि द्वयं द्वयम् ॥१२१६॥
खड्गेनेति पदस्यानु ताडय द्वितयं वदेत् ।
फेत्कारी हारवेद्यौ च प्रेतबीजमतः परम् ॥१२१७॥
ममानु सकलेयुक्त्वा प्रदे च [चापि] मनोरथान् ।
साधय द्वन्द्वमुल्लिख्य प्रवदेत् परमेत्यपि ॥१२१८॥

मातः प्रणवशब्दाच्च जनवत्सल ईरयेत् ।
ततः कारुणिके प्रोच्य भगवत् परिकीर्तयेत् ॥१२१९॥
महाभैरवरूपा च धारिणि त्रिदशेत्यपि ।
ततो वरणते प्रोच्य सकलान्मन्त्र चेत्यपि ॥१२२०॥
देवीत्युक्त्वा वाग्भवञ्च कामं लक्ष्मीं वधूमपि ।
योगिनीञ्च महाकालि कालनाशिनि चेत्यपि ॥१२२१॥
क्रोधत्रयं पुनः प्रोच्य प्रसीदद्वितयं वदेत् ।
मदनातुरां च सङ्कीर्त्य कुरुयुग्मं समुद्धरेत् ॥१२२२॥
सुरासुरपदाद् ब्रूयात् कन्यकां तदनन्तरम् ।
त्रपारमारुषः प्रोच्य ततोऽस्त्रत्रितयं वदेत् ॥१२२३॥
सर्वशेषे शिरो मन्त्रः कथितस्तव पार्वति ।
वर्णानां द्विशतं ज्ञेयं नवत्यधिकमत्र हि ॥१२२४॥
सर्वापदद्वितीयेऽर्णे सम्पूर्णं प्रथमं शतम् ।
परमस्यापि मध्येऽर्णे द्विशतो परिपूरिता ॥१२२५॥
शिरो मन्त्रान्ताक्षरे च समाप्ता नवतिः प्रिये ।
जपे होमे च पूजायां मालामन्त्रो महाफलः ॥१२२६॥
यामलादौ प्रसिद्धोऽयं धार्यो यत्नेन साधकैः ।

[उक्तमन्त्रस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

प्रसङ्गतो ब्रवीम्यस्य ऋष्यादि ते सुरेश्वरि ॥१२२७॥
अमुष्य मालामन्त्रस्य प्रजापति ऋषिर्मतः ।
अनुष्टुप् छन्द उदितं सिद्धिलक्ष्मीश्च देवता ॥१२२८॥
रावो बीजं शक्तिरस्या भवेदवतृता [भृथा] ङ्कुरा ।
सृणिः कीलकमाख्यातं प्रयोगः सर्वसिद्धये ॥१२२९॥
अनेनाराधयेत्तस्या नान्यरूपविपर्यया ।
ज्ञेयो हृदयमन्त्रश्च मन्त्रस्यास्य नवाक्षरः ॥१२३०॥

कापालिकादयः केचित् सहस्राक्षरिकं मनुम् ।
सिद्धिलक्ष्याः समुच्चार्य सूत्रं तस्यै ददत्यपि ॥१२३१॥
भूरिता दोषमालोक्य तदत्रानुद्धृतं मया ।
अमुं पठित्वैकवारं पवित्रं विनिवेदयेत् ॥१२३२॥
[कुब्जिकायाः पवित्रार्पणाय मालामन्त्रः]
मालामन्त्रं कुब्जिकायास्तातीर्थारार्चनाय हि ।
शृणु सावहिता देवो सद्यः फलविधायकम् ॥१२३३॥
वेदागमानां मूर्द्धादौ कूटं तदनु पौष्पकम् ।
आदिशक्तिः कुब्जिका च तृतीया भगवत्यपि ॥१२३४॥
चतुर्थ्यघोरामुख्युक्ता चत्वारि ङेन्तिमानि हि ।
किणिस्त्वतः परं युग्मं विच्चायै तदनन्तरम् ॥१२३५॥
पञ्चानामपि वर्गाणामन्तिमार्णानि च क्रमात् ।
संहारकूटं तदनु ज्वलिताद् रक्तमुख्यपि ॥१२३६॥
सारस्वतं भौवनेशी योगिनी तत्परेण च ।
अघोरे तदनु प्रोच्य दण्डबीजं ततः स्मरेत् ॥१२३७॥
निर्बिन्दुरथ संमाथो [?] घोरे बीजं त्रपाभिधम् ।
घोरघोरतरे प्रोच्य गोबोजात् सर्वतः परम् ॥१२३८॥
सर्वशर्वे च तदनु द्वे बीजेंऽशुः सशुक्लयुक् ।
नमस्ते रुद्ररूपे च मेषबीजमतः परम् ॥१२३९॥
पश्चिमेश्वरि संलिख्य निःसन्धानमघोर च ।
शक्तिस्वरूपे तदनु सर्वव्यापिनि तत्परम् ॥१२४०॥
अस्त्रत्रयं हृच्छिरसी एकैके परिकीर्तयेत् ।
त्रिवारमेनमुच्चार्य ततः सूत्रं समर्पयेत् ॥१२४१॥
एषा शताक्षरी विद्या कुब्जिकाया वरानने ।
पश्चिमाम्नायमध्ये तु गोपिता सर्वदेवतैः ॥१२४२॥

[उग्रताराया सूत्रदानमन्त्रः]

वक्ष्याम्यथोग्रताराया मालामन्त्रं सुगोपितम् ।
तुर्यारसूत्रदानार्थं लोकानाञ्च हितेप्सया ॥१२४३॥
तारो लज्जा नाकुलञ्च रोषास्त्रे तदनन्तरम् ।
महामाये भगवतिउग्रतारे विसन्धि च ।१२४४॥
विद्या बुद्धचतिमेधानु बलानु स्यात् प्रदायिनी ।
योगिनी वनिता रावो डाकिनी प्रलयोऽपि च ॥१२४५॥
जाड्यापहारिण्युच्चार्य फेरुराविणि तत्परम् ।
कर्तृकापालधारिण्यनु ब्रूयात् परमेश्वरि ॥१२४६॥
महामांसप्रिये प्रोच्य श्मशानाद् वासिनीत्यपि ।
खर्वोरुनागराजाभरणे तरुण [णि] कीर्तयेत् ॥१२४७॥
नृसिहतार्क्ष्यप्रासादाः प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ।
महामदोन्मादिनि च घोररावे ततो वदेत् ॥१२४८॥
करवालदारितानेकदानवे तदनूद्धरेत् ।
प्रज्वलज्ज्वलनप्रोच्य चितामध्यस्थितेरयेत् ॥१२४९॥
प्रसीद द्वितयं दत्वा वावदूकमितीरयेत् ।
मां कुरु द्वन्द्वमुल्लिख्य सर्वशास्त्रपदादनु ॥१२५०॥
पारङ्गमं कारय द्विः कूर्चास्त्रे शिर एव च ।
मन्त्रमेनं समुच्चार्य त्रिवारं वरवर्णिनि ॥१२५१॥
प्रदद्यादुग्रतारायै पवित्रं साधकोत्तमः ।

[छिन्नमस्तायाः सूत्रदानमन्त्रः]

अथ च्छिन्नोत्तमाङ्गायाः सूत्रदानमनुं शृणु ॥१२५२॥
चैतन्यं कमलालज्जारोषराषाश्च डाकिनी ।
कामो वधूरष्टबीजान्महाघोरतराकृति ॥१२५३॥
धारिण्यन्ते भगवति कृत्तमुण्डधरे तथा ।
वज्रवैरोचनीये च नरमुण्डाच्च मालिनि ॥१२५४॥

ततो वदेन्मां द्विषतो जहि छिन्धि पच त्रुट ।
चतुर्णां प्रवदेद्युग्मं छिन्नमस्ते ततः परम् ॥१२५५॥
ततो रुधिरधारानु पानलोलुप ईरयेत् ।
द्वयं द्वयं वदेत् पश्चात् ज्वल प्रज्वल जीव च ॥१२५६॥
मां रक्ष सकृदाभाष्य भ्यसन्तं सर्वसङ्कटम् ।
स्वाहा नियोज्या चरमे मन्त्रोऽयं गोप्य ईश्वरो ॥१२५७॥
पञ्चधैनं समुच्चार्य पञ्चमारे गुणं सृजेत् ।

[षड़ारस्थदेव्याः चामुण्डायाः पवित्रारोहणम्]

अथ षष्टारमध्येस्था पवित्रारोहणेऽधिपा ॥१२५८॥
अधुना तन्मनुं वक्ष्ये सर्वत्रोन्नतिकारकम् ।
यज्ज्ञात्वा यत्र कुत्रापि सङ्कटे नावसीदति ॥१२५९॥
सङ्कटे निर्भयो भूयादधिगच्छेच्च सम्पदम् ।
प्रणवाङ्कुशकाल्यश्च डाकिनी चण्डवेगिनी ॥१२६०॥
खेचरी क्रोधफेत्कारी विद्युत्कालरतित्रपाः ।
भौजङ्गममहाक्रोधसौवर्णान् षोडशोद्धरेत् ॥१२६१॥
चामुण्डे इति सङ्कीर्त्य युग्मं ज्वल हिलेः किलेः ।
मम शत्रूनिति प्रोच्य युगं डाशय मारय ॥१२६२॥
हन युग्मं पच युगं भक्षय द्वितयं तथा ।
कालीत्रपारुषां युग्मं ठठ इत्यक्षर द्वयम् ॥१२६३॥
वैश्वानराङ्गनाशेषे चामुण्डा दैवतो मनुः ।
एकसप्तत्यक्षरात्मा सर्वकामफलप्रदः ॥१२६४॥
त्रिरेतं मन्त्रमुच्चार्य यज्ञसूत्रं समर्पयेत् ।

[शिवदूत्याः यज्ञसूत्रसमर्पणमन्त्रः]

अधिष्ठात्री सप्तमारे शिवदूती प्रकीर्तिता ॥१२६५॥
तन्मन्त्रमधुना वच्मि यज्ञसूत्रसमर्पकम् ।
सारस्वतागमशिरस्त्रपालक्ष्मीः स्मरस्त्रियः ॥१२६६॥

रावश्च डाकिनी चेति बीजान्यष्टौ पुरो वदेत् ।
यूकार घटिताः पश्चान्नवात्मानः क्रमेण षट् ॥१२६७॥
शिवदूतीति चाख्याय ततो घोराट्टहासत ।
सन्त्रासितासुर तथा चक्रे भगवतीति च ॥ १२६८॥
हूंकारनादपदतः कम्पिताच्च जगत्त्रये ।
गलद्रक्तमहामुण्डमालालंकृतविग्रहे ॥१२६९॥
गारुडो नरसिंहश्च फेत्कारो प्रलयादिमा ।
कृत्या च पञ्चबीजानि तदनु प्रतिभावयेत् ॥१२७०॥
उक्त्वा प्रसीद द्वितयं सिद्धिं मे देहि दापय ।
त्रितयं त्रितयं दद्यात्कूर्चस्यास्त्रस्य च प्रिये ॥१२७१॥
हृदयद्वितयं चैकं शिरः शेषे नियोजयेत् ।
मालामन्त्रोऽयमीदृक्षः शिवदूत्याः प्रकाशितः ॥१२७२॥
रूपत्रयं विधायास्य दद्यात्सूत्र ततः शनैः ।

[कालसंकर्षण्याः सूत्रदानविधिः]

कालसंकर्षिणीं देवीमष्टमारे प्रपूजयेत् ॥१२७३॥
तन्मन्त्रमधुना तुभ्यं कथयामि वरानने ।
यन्न ज्ञातं न चाख्यातं कस्मैचिदपि केनचित् ॥१२७४॥
कपालडामरे तावदयं केवलमुद्धृतः ।
तारत्रपारमाकामवाग्भवांकुशकालिकाः ॥१२७५॥
पाशक्रोधमहाक्रोधप्रसादामृतगारुडाः ।
फेत्कारीधनदाचण्डयोगिनीशाकिनीधनैः ॥१२७६॥
विद्युद्रतिप्रेतभूतखेचरीकालपन्नगाः ।
कालसंकर्षणी प्रोच्य क्रोध युग्मं ततः परम् ॥१२७७॥
स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयं यन्त्रः षड्त्रिंशदक्षरः ।
पंचकृत्वोऽमुमाभाष्य यज्ञसूत्रं निवेदयेत् ॥१२७८॥

[चण्डेश्वर्याः सूत्रदानमन्त्रः]

नवमीया नवारस्य देवता भूरिभीषणा ।
नाम्ना चण्डेश्वरी ख्याता यन्मन्त्रोपीदृशः स्मृतः ॥१२७९॥
ब्रवीम्यहं तमधुना पूर्णा येन विधीयते ।
तारलज्जारमाक्रोधांकुशकालीवधूस्मराः ॥१२८०॥
अष्टबीजं समुद्धृत्य शाम्भवं कूटमुद्धरेत् ।
ततश्च भैरवीकूटं कूटं माहेश्वरं ततः ॥१२८१॥
ततः परापरं कूटं व्योमकूटं च पञ्चमम् ।
उक्त्वा चण्डेश्वरि ततः खेचरीं योगिनीं लिखेत् ॥१२८२॥
शाकिनीं गारुडं बीजं युगं क्रोधास्त्रयोस्ततः ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो जगतीतलदुर्लभः ॥१२८३॥
नातः परतरो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ।
यामाराध्य हि दुर्वासा मूर्तिः क्रोध इवाभवत् ॥१२८४॥
उत्कीर्त्यामुं पञ्चवारं पवित्रं तन्निवेदयेत् ।

[नवमातृकाणां पवित्रार्पणमन्त्रः]

नवानामथ मातृणामेकमेव मनुं प्रिये ॥१२८५॥
नवाराचसांगतार्थं प्रवदामि मनोऽर्पय ।
तारः सारस्वतं लज्जा पाशो लक्ष्मीः स्मरो वधूः ॥१२८६॥
प्रासादः शाकिनी कूर्चः क्षेत्रपालश्च गारुडः ।
द्वादशेमानि बीजानि पुरतः परिकीर्तयेत् ॥१२८७॥
ब्रह्माणि माहेश्वरि च ततः कौमारि वैष्णवि ।
वाराहि नारसिंहीति तथेन्द्राणि विसन्धि च ॥१२८८॥
शिवदूति च चामुण्डे महाकालि च भैरवि ।
महालक्ष्मि महारात्रि महातामसि बाभ्रवि ॥१२८९॥
षोडशी तु महामाया तस्याः संबोधनं वदेत् ।
पवित्रारोहणमिदं मदीयं रक्षतद्वयम् ॥१२९०॥

साक्षिण्यो भवत प्रोच्य सन्निहितास्तिष्ठतापि च ।
पवित्रमिदमामुञ्चतेति तत्परमीरयेत् ॥१२६१॥
पुनर्यज्ञमितंपात् [?] स्वाहान्तो मनुरुत्तमः ।
एतं त्रिवारमुच्चार्य दद्यात्सूत्रमुदारधीः ॥१२६२॥

[ग्रहाणां पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथो मनुं प्रवक्ष्यामि ग्रहाणां त्रिदशेश्वरि ।
तारः पाशः कला सर्वः श्रवणाश्चार्थऋतंभराः ॥१२६३॥
अंह आरोहश्च सृतिरिन्द्रियं च कषायकम् ।
अजनं च तथा शंका कालो ग्लानिश्च धूरपि ॥१२६४॥
अर्तिस्ततोऽनु रुक्तयोक्रो [?] धारणानृतिरेव च ।
तारकः कोलखेदौ च रूपादित्रितयं तथा ॥१२६५॥
आदित्यसोमभौमानु बुधजीव प्रतीरयेत् ।
शुक्रमन्द तथा राहुकेतवस्तदनन्तरम् ॥१२६६॥
नव ग्रहाः ससन्धानमुभयत्रापि पार्वति ।
इदं पवित्रं गृहणीध्वमामुञ्चत ततः परम् ॥१२६७॥
सान्निध्यं कुरुताभाष्य प्रसीदत ततः परम् ।
भवद्भ्य उल्लिख्य नवग्रहेभ्यः सन्धिमत्तथा ॥१२६८॥
हृदयद्वितयं शीर्षे मन्त्रो नवग्रहो ह्ययम् ।

[सृष्ट्यादिपञ्चकाल्या पवित्रार्पणमनुः]

अथ पञ्चारगायास्तु पञ्च सृष्ट्यादिकालिकाः ॥१२६९॥
तासां मनून् प्रवक्ष्यामि पवित्रप्रतिपादकान् ।
तारो रावो भौवनेशी योगिनी रोष एव च ॥१३००॥
कमलाकामवध्वश्च डाकिनीप्रलयावपि ।
फेत्कारी कर्णिका हार शृङ्खला गरुडो विधिः ॥१३०१॥
कलासंख्यानि बीजानि पुर एतानि पार्वति ।
सत्त्वं हैरण्यगर्भं च पौष्करं शिखरित्रयम् ॥१३०२॥

ब्रह्मकूटं सृष्टिकूटं पञ्चेमानि पुरः स्मरेत् ।
अनाहतादित्रितयं व्युत्क्रमात् सृष्टितुर्ययुक् ॥१३०३॥
तत्त्वसंख्यात्मका बीजकूटा भगवतीरयेत् ।
सृष्टिकालि समाभाष्य चतुर्विधपदादनु ॥१३०४॥
भूतसर्गप्रवर्तयित्रि परापरकुलादनु ।
चक्रनायिक आभाष्य आदिशक्ति विसन्धि च ॥१३०५॥
ततश्चतुरशीत्युक्त्वा कोटिब्रह्माण्ड कीर्तयेत् ।
प्रसवित्रि ततः प्रोच्य सद्योजात पदं वदेत् ॥१३०६॥
पुरा रूपशिवेत्युक्त्वा सह धर्मानुचारिणि ।
चतुर्दशानु भुवनव्यवस्थाकारिणीरयेत् ॥१३०७॥
महामाये त्रिजगदुत्पत्तिकारिणि संलिखेत् ।
इदं पवित्रं च मयोपनीतं च गृह्ण च द्वयम् ॥१३०८॥
उपनद्धा भव युगं पवित्रारोहणं मम ।
ततः सफलय द्वन्द्वं पाहि रक्ष युगं युगम् ॥१३०९॥
विसन्ध्यविघ्नमाभाष्य कुरु युग्मं ततो लिखेत् ।
दण्डादिपञ्चकं स्मृत्वा सृष्टिकूटमनूद्धरेत् ॥१३१०॥
सकृत्प्रसन्ना भव च वरदा भव चेत्यपि ।
सुप्रतिष्ठिता भव चाधिष्ठिता भव सन्धिकृत् ॥१३११॥
सिद्धिदा भव सर्वाच्च पञ्चैतानि सकृत्सकृत् ।
रावरोषत्रपास्त्राणां युग्मं युग्मं सकृत्सकृत् ॥१३१२॥
हृदयं च शिरो देवि स्थितिकाल्याः मनुं शृणु ।
त्रितयं त्रितयं तारमैधयोर्मन्मथाङ्गने ॥१३१३॥
लज्जा लक्ष्मीश्च पाशश्च गरुडः शाकिनी च रुट् ।
योगिनी कालिका चेति पुर एतानि षोडश ॥१३१४॥
गुणत्रयात्मकं कूटं क्रमेण तदनूद्धरेत् ।
अमीषामनु निर्वाणं महानिर्वाणमेव च ॥१३१५॥

परापरः शाम्भवश्च तुरीया स्थितिरेव च ।
अत्रापि पूर्ववत्पञ्चविंशतिर्बीजकूटयोः ॥१३१६॥
ततो भगवति प्रोच्य स्थितिकालीति कीर्तयेत् ।
सप्त लोकानु वै सप्त द्वीप सप्त पदादनु ॥१३१७॥
पातालपालिन्युल्लिख्य राक्षसासुरदानव ।
दैत्यविध्वंसिनि प्रोच्य स्थितिद्वयाच्छक्त एव च ॥१३१८॥
विसन्ध्याब्रह्मकोटादिचतुर्विधपदादनु ।
भूतसंघातपालयित्रि वामदेवपदादनु ॥१३१९॥
लिखेद्भूतशिवेत्येव सहधर्मानु चारिणि ।
प्रात्यप्रणि[?] व्यवस्थातः कारिणि प्रतिकीर्तयेत् ॥१३२०॥
जगज्जननि संलिख्य जगत्पालिनि चेत्यपि ।
जगदाधार इत्येवं यज्ञसूत्रमिदं ततः ॥१३२१॥
परिधत्स्वामुञ्च तथा युग्मं युगमुदीरयेत् ।
पवित्रारोहणमिदं पाहि रक्ष च पालय ॥१३२२॥
द्वे द्वे त्रयाणामाभाष्य अच्छिद्रं कुरु सन्धिकृत् ।
कल्पादिपञ्चकं प्रोच्य स्थितिकूटमुदाहरेत् ॥१३२३॥
दोग्ध्री भव तथा षोष्ट्री भव दात्री भवापि च ।
धात्री भव पुनः पात्री भवेति सकृदेव हि ॥१३२४॥
योगिनीडाकिनीकामास्त्रिवारमनुकीर्तयेत् ।
हृच्छीर्षे वारमेकैकं द्वितीयो मनुरीदृशः ॥१३२५॥
अथ संहारकालीयं मन्त्रं पावित्रिकं शृणु ।
पञ्चकृत्वो मैधमादौ वेदादिस्तावदेव हि ॥१३२६॥
पाशः कामश्च लक्ष्मीश्च रोषश्च वनिता तथा ।
योगिनीरावडाकिन्यः प्रलयः फेत्कृतिस्तथा ॥१३२७॥
कर्णिकाशृङ्खलाहारप्रासादप्रेतभैरवीः ।
षड्त्रिंशतिभ्य एतेभ्यो बीजेभ्यः परमेश्वरी ॥१३२८॥

हैरण्यगर्भं प्रवदेत्कूटं पौष्करमेव च ।
आज्ञाविशुद्धिसंहारकूटानि तदनन्तरम् ॥१३२९॥
ततो भगवतीत्येवं पुनः संहारकालि च ।
देवासुरपदं ब्रूयादादौ सकलवर्णतः ॥१३३०॥
नरनागप्राणहारिण्युक्त्वा च विकरालिनि ।
अट्टाट्टहासिनि तथा जगद्ग्रासिनि सन्धिकृत् ॥१३३१॥
तृतीयशक्ते तदनु सन्धिहीनमघोर च ।
ततो रूपशिव प्रोच्य सहधर्मानुचारिणि ॥१३३२॥
महाकल्पान्तपदतस्ताण्डविन्यथ कीर्तयेत् ।
एकमेव गृहाणोक्त्वा परिधत्स्व द्वयं वदेत् ॥१३३३॥
आमुञ्च प्रतिमुञ्चापि वारद्वयमुदीरयेत् ।
कर्मेदं मे पूरय द्विः प्रपूरय तथैव च ॥१३३४॥
सर्वत्र सन्धिना हीनमधिष्ठात्री भवापि च ।
अवित्री भव चेक्षित्रो भव श्रोत्री भवापि च ॥१३३५॥
अर्हिता भव देवेशि पञ्चैतानि सकृत् सकृत् ।
वेण्वादिपञ्चकस्यानु कूटं सांहारिकं तथा ॥१३३६॥
तथा संहारफेत्कारिण्युत्कोचिन्यास्त्रयोस्त्रयम् ।
नमः स्वाहा सर्वशेष एकैकं वारमुद्धरेत् ॥१३३७॥
निशामयाधुनाऽनाख्याकालीमन्त्रं सुरेश्वरि ।
तारो रावो योगिनी च रोषो वनितया सह ॥१३३८॥
कामो रमा च पाशश्च डाकिनी प्रलयावपि ।
वैपरीत्येऽनाहतादिपञ्चकं तदनन्तरम् ॥१३३९॥
कूटे पाशुपतेशाने ततोऽनाख्याभिधं तथा ।
संहाराद्यं शेखरान्तं बीजानां दशकं ततः ॥१३४०॥
षट्चक्रसर्वागमौ च अम्नायातीतमित्यपि ।
तत्त्वार्णवस्तथा शक्तिसर्वस्वं च परापरम् ॥१३४१॥

तथा शाम्भवचिच्छक्तौ सर्वं षट्त्रिंशदीरितम् ।
सन्धिहीनं भगवति अनाख्याकालि तत्परम् ॥१३४२॥
निगमागमगोचराद् भावेच्छानन्तशक्तितः ।
महिमबलपौरुषे प्रपञ्चातीत इत्यपि ॥१३४३॥
योगिजनहृदयान्तश्चारिणीति ततः परम् ।
तुरीयशक्ति आभाष्य ततस्तत्पुरुषोद्धरेत् ॥१३४४॥
ततो रूपशिवेत्युक्त्वा सहधर्मानुचारिणि ।
यज्ञसूत्रमिदं गृहण द्वितयं तदनन्तरम् ॥१३४५॥
परिधेहि द्वयं च द्विरामुञ्च प्रतिमुञ्च च ।
सन्धिहीनं ततो ब्रूयात्कर्मैतद्रक्ष रक्ष च ॥१३४६।
अचला अर्चिता चैव तथार्द्धिर्वृद्धिसिद्धचपि ।
पदेभ्य एभ्यः पञ्चेभ्यः प्रतिशेषं भवोद्धरेत् ॥१३४७॥
आयादि पञ्चकं प्रोच्य कूटे त्रैपुरशांकरे ।
वेदादिमैधपाशानां त्रितयं त्रितयं वदेत् ॥१३४८॥
शेषे हृदस्त्रशीर्षे द्वे एकैकं न द्विरुच्चरेत् ।
अथ वक्ष्यामि ते देवि पञ्चम्या मनुमुत्तमम् ॥१३४९॥
तारत्रयं मैधयुगं त्रिस्त्रिः पाशकले वदेत् ।
कामवध्वौ रमामाये प्रासादप्रेतभैरवीः ॥१३५०॥
शाकिनीं डाकिनीं चैव फेत्कारीं प्रलयादिमाम् ।
सुकृतादीनि पञ्चापि चत्वारः सुरसादयः ॥१३५१॥
भद्रिकाद्याः पुनः पञ्च पञ्चाशत्पञ्चवर्जिताः ।
संबुद्धचा भगवत्युक्त्वा भासाकालि ततो वदेत् ॥१३५२॥
श्रुत्यगोचरतत्त्वावतारे च तदनूद्धरेत् ।
चिन्मयानन्दघनतः कलेवर इतीरयेत् ॥१३५३॥
तुरीयपदशब्दानु प्रकाशिनि समालिखेत् ।
नादबिन्द्वर्णतो रूपिण्युक्त्वा च शिवशक्तितः ॥१३५४॥

वाच्यवाचकरूपिण्याभाष्य सुन्दरवन्दिते ।
जीवात्मपरमात्मानु रूपिण्यप्यस्य पश्चिमे ॥१३५५॥
ततो विम्बप्रतिविम्बरूपिणीति विभावयेत् ।
ईशानरूपशिवतः सहधर्माच्च चारिणी ॥१३५६॥
ततः प्रबोधचैतन्यविज्ञानानन्दब्रह्म च ।
मयिशब्देभ्य एतेभ्यः पञ्चभ्यः परिकीर्तयेत् ॥१३५७॥
मया निवेदितमिदं पवित्रं गृह्ण च द्वयम् ।
गृह्णापय युगं चापि ग्रामुञ्च द्वितयं तथा ॥१३५८॥
परिधेहि द्वयं चापि पिनह्य द्वितयं तथा ।
इदं कर्म मम प्रोच्य सम्पूर्णं कुरु च द्वयम् ॥१३५९॥
सान्निध्यमावेशय च प्रसीद द्वितयं तथा ।
अथ रा[वा]चाव्ययालक्ष्यादृश्यागम्या तथैव च ॥१३६०॥
प्रत्येकमेषां चरमे भवशब्दमुदीरयेत् ।
चर्पटादिचतुष्कं च गायत्र्यादीनि पञ्च च ॥१३६१॥
ये शब्दा मयि पौरस्त्यास्तेषां कूटानि संलिखेत् ।
योगिनीडाकिनीरावत्रितयं त्रितयं ततः ॥१३६२
नमः स्वाहा सर्वशेषे काल्यः पञ्चेति ता मया ।
[काल्याः परिवाराणां पवित्रार्पणमन्त्रः]
आसां तु परिवाराणां प्रत्येकः क्रमत शृणु ॥१३६३॥
पवित्रदानस्य मनून्समूद्धरणपूर्वकान् ।
तारो मैधश्च पाशश्च कालीप्रासादमन्मथाः ॥१३६४॥
कुलिकः खेचरी रावः कर्णिकाहारशृंखलाः ।
नृसिंहप्रलयक्रोधफेत्कार्यो भ्रामरी तथा ॥१३६५॥
तथा पतनसंहारौ वीरवेतालनामकौ ।
तथा चत्र्यस्रविरतिबिन्दुका बीजसञ्चयाः ॥१३६६॥

शार्दूलवराहपारावतमार्जारपिकप्रेतेहामृगोलूकश्येनरुरु - भरद्वाजचमरद्वीपिखड्गकंकसृमरभासलेलिन्दभूलिङ्गकलिङ्ग - रोहितशल्यदार्वाघाटगोकर्णाननाभ्यः समयानन्दचन्द्रनियम - त्रिदशहिरण्यविकृतक्रोधोल्काफेरुजीमूतगुप्तविग्रहप्रतप्तचैतन्यविश्व-कुलज्योतीरूपमेधाव्यालोत्तरावर्तसिंहनादमन्त्रकालीभ्यः सृष्टिकाली-परिवारावरणदेवताभ्य आभ्यश्चतुर्विंशतिभ्य इदं पवित्रमर्पयामि ।

जिनसंख्यानि बीजानि प्रातिलोम्या पुनर्वदेत् ।
अविघ्नं कुरुत प्रोच्य सिद्धिं ददत इत्यपि ॥१३६७॥
अधिष्ठात्र्यो भवत च सन्धिहीनमिदं त्रयम् ।
कूर्चास्त्रहच्छिरांस्यन्ते द्वितीयमवधारय ॥१३६८॥

[स्थितिकाल्याः परिवारावरणदेवतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

तारमायामैधरावप्रासदांकुशविद्युतः ।
पाशः प्रेतो भैरवी च नरसिंहश्च दक्षिणा ॥१३६९॥
प्रलयः कर्णिकाहारौ नालीकादिद्वयं तथा ।
ततश्च चण्डसंमोहौ दुष्कृतादिचतुष्टयम् ॥१३७०॥
मणिमाला च बीजानां चतुर्विंशतिरीरिता ।

सरभचातकसारंगगवयतरक्षुमहिषगोधाकुक्कुट गोधिकाचटक-वकक्रष्णसारक्रकचसम्बरकरेटुशशछागकंचिलकाकरंकुमेषकाकोल-दात्यूहवृषभाननाभ्यः काल्योत्पातसंमोहचक्रधारसमरविलास - मेघरक्षाचलकपिलपुष्करशिखरव्यूहतीव्रनखरव्यूहतीव्रपाण्डरजम्बा-लमार्तंण्डकेतुकूटयन्त्रभूतादिदुर्द्धर्षलोहिताक्षकालीभ्यःस्थितिकाली - परिवारावरणदेवताभ्य आभ्यश्चतुर्विंशतिभ्य इदं पवित्रमर्प-यामि ।

चतुर्विंशति बीजानि वैपरीत्यात्पुनर्वदेत् ।
अविघ्नं कुरुत प्रोच्य सिद्धिं ददत इत्यपि ॥१३७१॥

अधिष्ठात्र्यो भवत च सन्धिहीनमिदं त्रयम् ।
कूर्चास्त्रहृच्छिरांस्यन्ते तृतीयमधुना ब्रुवे ॥१३७२॥

[संहारकाल्याः परिवारावरणदेवतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

मैधतारौ रावमाये कामवध्वौ श्रिया सह ।
प्रासादो गरुडो विद्युद्विधिर्भूतिन्यनन्तरम् ॥१३७३॥
जम्भः सानुर्मेखला च तन्द्रा कुटिलया सह ।
मणिमाला चर्पटाद्या चामरश्च तदादियुक् ॥१३७४॥
मारण्डश्च विनादश्च प्रतानं सर्वशेषगम् ।

उष्ट्रचिल्लगर्दभगृध्रशुककुक्कुटक्रौंचसर्पमूषिकशिशुमारमीन - कृकलासवृकग्राहसारसचक्रवाककच्छपकररहंसोद्रट्टिटिभकुलूतकर्कट कुम्भीराननाभ्यो दोप[?]चाण्डालसमृद्धिसर्वेश्वरत्रिश्ववाह्व- नन्तजटालमृत्युमुखतपनरौरवसिन्धुनादनिह्र्दहेमांगहव्यवाहपूर्ण - भद्रचपलमणितारमित्रनीलदैत्यान्तोद्योतशोणाक्षरणसंक्रन्दकालिभ्यः संहारकालीपरिवारावरणदेवताभ्य आभ्यश्चतुर्विंशतिभ्य इदं पवित्रमर्पयामि ।

चतुर्विंशति बीजानि पूर्वोक्तानि वरानने ।
उच्चार्य व्युत्क्रमतया सर्वत्राविघ्नमित्यपि ॥१३७५
कुरुतैकं समाभाष्य मम शत्रूनथो वदेत् ।
द्विवारं नाशयत सिद्धीर्ददत वै सकृत् ॥१३७६॥
अधिष्ठिता भवत च सन्धिना हीनमुद्धरेत् ।
पवित्रारोहणमिदं द्विः संवर्धयतेरयेत् ॥१३७७॥
द्विर्द्विर्मयारुडस्त्राणां वारैकं हृदयं शिरः ।

[अनाख्याकाल्याः परिवार।णदेवतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]

अथो निशामयानाख्यापरिवारमनुं प्रिये ॥१३७८॥

प्रणवः कालिकामायापाशानङ्गस्त्रियस्तथा ।
शाकिनी डाकिनी रोषप्रासादप्रेतभैरवीः ॥१३७९॥
योगिनीजम्भनृहरिभारुण्डाशक्तिविद्युतः ।
जीवनीपुटकौ चापि नान्दीकव्ययसारसाः ॥१३८०॥
सर्वशेषे विदिगपि चतुर्विंशतिरित्यमी ।

उर्णनाभिसरारिशतपदवृश्चिकनकुलमण्डूकतैलपायिपतंग-शंखशलभभ्रमरमयूरहारीतकारण्डवप्लवसंवूकाश्वतरमलिन्दतित्ति-रिकलभानुर्कदंशवर्करकारकाननाभ्यो विरिंचिविभूतिविनर्यविचित्र-रक्तनषोत्साहकादंवखेचरडामरकरंकसुमेरुसन्धानसन्तानघण्टा-दुर्मरविकलफेरूसुवर्णाग्निपिशाचभूतवीरर्घुर्घुरवेतण्डकालीभ्यो-ऽनाख्याकालीपरिवारावरणदेवताभ्यश्चतुर्विंशतिभ्य इदं पवित्रमर्प-यामि ।

विदिगादि तारशेषां बीजालीं जिनसम्मिताम् ।
प्रतिलोमेन देवेशि पुनरेव समुच्चरेत् ॥१३८१॥
ममाखिलं विध्नमुक्त्वा खण्डय द्वितयं वदेत् ।
सामरस्यपदं प्रोच्य प्रकाशय युगं स्मरेत् ॥१३८२॥
अज्ञानं नाशय द्वन्द्वं द्विर्द्विर्भस्मी कुरु त्रुट ।
भवपाशं छिन्धि युगं कर्तय द्वितयं तथा ॥१३८३॥
मोहमूलमनु प्रोच्य उन्मूलय युगं स्मरेत् ।
सन्धिहीनमधिष्ठात्री भूत्वा तिष्ठ युगं तथा ॥१३८४॥
सकृदेव पुनर्ब्रूयादिदं कर्म समापय ।
मां वाञ्छितफलेनोक्त्वा योजयद्वितयं लिखेत् ॥१३८५॥
सर्वं मे राध्यतां चैव साध्यतां तदनन्तरम् ।
समृध्यतां च तिसृषु सर्वं मे पदमीरयेत् ॥१३८ ॥
त्रितयं त्रितयं ब्रूयाद्द्रावस्य च कुलस्त्रियाः ।
डाकिन्या अथ रोषस्य हारस्यास्त्रस्य तत्परम् ॥१३८७॥

सकृदंगुष्ठतर्जन्यौ पञ्चमीमधुना ब्रुवे ।
[भासाकाल्याः परिवारावरणदेवतानां पवित्रार्पणमन्त्रः]
पञ्चकं पञ्चकं पूर्वं मैधस्य प्रणवस्य च ॥१३८८॥
त्रितयं त्रितयं चापि शाकिनीपदयोरपि ।
द्वौ कामौ द्वे च वनिते कालीप्रासादगारुडाः ॥१३८९॥
योगिनीकमलापाशाः प्रेतो भैरव्यनन्तरम् ।
डाकिनीप्रलयौ चापि ज्ञानेच्छासम्विदस्तथा ॥१३९०॥
तथा शाम्भवचिच्छक्ती सायुज्यं सर्वशेषगम् ।
एवं षड्त्रिंशतो बीजनिकुरम्बाद् वरानने ॥१३९१॥
ईशानान्तं शाम्भवाद्यं कूटाष्टकमितः परम् ।
पुष्करादित्रयं तच्च व्युत्क्रमात्तदनन्तरम् ॥१३९२॥
संहारादित्रयमपि जानीयादेवमेव हि ।
ऐकात्म्यादिचतुष्कं च पूर्वार्द्धमिति वर्णितम् ॥१३९३॥
पूर्वं महातत्त्वमिदं द्वे मिलित्वा युगेषवः ।

लावकचकोरवार्ध्रीनसशतपत्रजीवंजीवमत्स्यवर्तककरंकभारुण्ड-कालकण्ठखेचरश्यामवीभत्सपातालदानवपिशाचकूष्माण्डचन्द्रनाभ-शोणांकसुवर्णरत्नविद्युद्द्रुम्वरत्रैलोक्याननाभ्यो घर्घरप्रभामहाशंख प्रकाशकर्मारिरोहितविवर्णविशालकरकमन्दारसिद्ध्यंगारकेशरमर्म मुकुलभैरवकुणपमातंगमर्मरमुकुटमुक्तिशक्राणि गुह्यकालीभ्यो भासाकालीपरिवारावरणदेवताभ्य आभ्यश्चतुर्विंशतिभ्य इदं पवित्रमर्पयामि ।

तावन्त्येव हि कूटानि बीजानि त्रिदशेश्वरि ।
वैपरीत्येन कीर्त्यानि चतुष्पंचाशदेव हि ॥१३९४॥
विघ्नानुक्त्वा सन्धियुगं तदोपशमयद्वयम् ।
शान्तिमादेशयादेशय कथ्यन्तदनन्तरम् ॥१३९५॥
पवित्रारोहणं कर्म समाप्ति कुरु च द्वयम् ।
महाज्ञानं प्रकटय द्वितयं तदनूद्धरेत् ॥१३९६॥

भवपाशं छिन्धियुगं मोहं कृन्तय च द्वयम् ।
स्वपदप्रकाशिनि ततो द्वैतनाशिनि चेत्यपि ॥१३९७॥
निजरूपं दर्शय द्विर्मुक्तिं द्विश्च नियोजय ।
चिद्रूपमयि संलिख्य तथानन्दमयीरयेत् ॥१३९८॥
परमात्मा मनः सत्ता चैतन्योपशमौ तथा ।
विज्ञानैकात्म्ययोगाश्च ब्रह्मान्ते नवमीमपि ॥१३९९॥
कर्मण्यमुष्मिन्नध्यक्षा भवैकं वारमुद्धरेत् ।
विसन्ध्यधिष्ठानमपि कुरुयुग्मं ततः परम् ॥१४००॥
ततः सर्वमिदं मेऽनु परितश्च समाप्यताम् ।
क्रियापदानि पश्चाणति् पुनश्च प्रथमान्वितम् ॥१४०१॥
समृध्यतां च तथा चैवोपपद्यताम् [?] ।
आप्यायतां च तदनु प्रपूर्य सर्वशेषगम् ॥१४०२॥
पवित्रारोहणत्येव च त्रपा..............? ।
तावती अपि रोषास्त्रे नमः स्वाहैकमेककम् ॥१४०३॥
भासायाः परिवाराणां पवित्रार्पणकर्मणि ।
मन्त्रो विशिष्य कथितः समभ्युद्धारपूर्वकः ॥१४०४॥
[मुख्याया गुह्यकाल्याः पवित्रार्पणमन्त्रः]
प्रवक्ष्ये मुख्यभूताया गुह्यकाल्या अथो मनुम् ।
यज्ञसूत्रं येन दद्यात्समष्टिव्यष्टिहेतुकम् ॥१४०५॥
तारमैधत्रपारावयोगिनीरोषयोषितः ।
प्रासादप्रेतभैरव्यः कालीपाशस्मरस्त्रियः ॥१४०६॥
फेत्कारी डाकिनी पूर्वा बीजानीमानि षोडश ।
सत्त्वं हिरण्यगर्भश्च पुष्करं तदनन्तरम् ॥१४०७॥
संहारादित्रयं कूटं व्युत्क्रमेण ततः परम् ।
शक्तिशाम्भवकूटे च तदर्द्धिकतयाखिलम् ॥१४०८॥
भगवत्या मूलनाम्नः संबुद्धिद्वितयं तथा ।
एह्येहि जगदम्बोक्त्वा स्वशक्तिपरिवार च ॥१४०९॥

सहिते सुरतेजोमयविग्रहे महाश्मशानवासिनि नवपञ्चचक्रान्तश्चारिणि दशवदनधारिणि नवकोटिकुलाकुलसमयप्रवर्तिनि गुह्यानन्ततत्त्वधारिणि मनोवागगोचरे प्रपञ्चातीतनिष्कलतुरोयाकारे वेदोपवेदमयसिंहासनाधिरुढे महाखेचरोसिद्धिविधायिनि प्रबलजटाभारभासुरे आदिशक्ति दिगम्बरि यन्त्रतन्त्राधिदैवते ।

भारुण्डाद्ये ततो बीजे आथाद्याः पञ्च तत्पराः ।
तावदेवानाहतादि किन्तु व्युत्क्रमयोगतः ।।१४१०।।
नाराचशूले नालीकभुशुण्डचौ तदनन्तरम् ।

ऊर्ध्वकेशि व्योमकेशि विद्युत्केशि वमदग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते शुष्कनरकपालमालाभरणे सदाशिवांकपर्यंकविहारिणि महानीलघनाघनश्यामखर्वकलेवरे यज्ञसूत्रं पवित्रं एतदेवं विलिख्य हि ।

समर्पयाम्यथ निवेदयामि तदनन्तरम् ।
गृह्ण गृह्णापय द्विर्द्विरंगीकुरुयुगं तथा ।।१४११।।
सन्ध्यूनमामुञ्च तथा प्रतिमुञ्च युगं युगम् ।
पिनह्यद्वयमस्यान्ते सुमुखो सुप्रसन्नया ।।१४१२।।
सुदृष्टिश्च त्रिपद्यन्ते सर्वत्र भव कीर्तयेत् ।
निगूढा तिष्ठ संलिख्य गुप्ताचार ततो वदेत् ।।१४१३।।
सन्ध्यूनमावृतास्वेति अध्यक्षा भव तादृशम् ।
अधिष्ठात्री भव तथा तत आनन्दिता भव ।।१४१४।।
गायत्र्याद्याः पुरः पञ्च तावन्तः सुकृतादयः ।
भद्रिकाद्याश्च तावत्यः शक्तिसर्वस्वपश्चिमाः ।।१४१५।।

सर्वमिदं कर्म परिपूरय हायन्यर्चा समाप्यतां सिद्धय उपतिष्ठतां समृद्धय उपपद्यन्तां विघ्ना मे नश्यन्तां शत्रवो मे विलीयन्तां यान्यशुभानि तानि शममायान्तु अवदातानि कर्माण्युपचीयन्तां मलीमशानि क्षीयन्ताम् ।

शाम्भवाद्यानथो कूटानष्टौ क्रमत ईरयेत् ।
परापरश्च श्रीकण्ठस्तुरीया रौद्र एव च ॥१४१६॥
चिदानन्दकलानादाः षोडशैव भवन्ति हि ।
ब्रह्मतत्त्वानन्दमयि तथा चिच्छक्तिरूपिणि ॥१४१७॥
योऽसि त्वं सोऽस्म्यहं प्रोच्य बीजं सायुज्यमुद्धरेत् ।
प्लुततारत्रयं मैधत्रयं च प्लुतपूर्वकम् ॥१४१८॥
त्रितयं त्रितयं मायारावयोस्तदनन्तरम् ।
योगिनीरोषकालानां संख्यया यावदेव हि ॥१४१९॥
नमः स्वाहा च तारश्च गुह्यकाल्या अयं मनुः ।
अनेन मनुना देवि त्रिवारोच्चारितेन हि ॥१४२०॥
प्राङ्निर्मितं पवित्रन्तन्मूलदेव्यै निवेदयेत् ।

[बलिदीपादिविविधवस्त्वर्पणविधिः]

स्वशक्त्यवधिपात्राणां स्थापितानां निमित्तवेत् ॥१४२१॥
मन्त्रपूर्वं पूजितानामर्पणं तदनन्तरम् ।
बलयः पूर्वमुदिता ये नैमित्तिककर्मणि ॥१४२२॥
ते प्रदेया यथाशक्ति समन्त्रविधिप्रोक्षणाः ।
स्वगाच्छागालुलायावा [?] आरण्या मृगशूकराः ॥१४२३॥
विहिता ये जलचरा ये बलित्वेन कीर्तिताः ।
ते हि युग्मतया देया नैवायुग्माः कदाचन ॥१४२४॥
तेषां विधानं कथितं प्राङ्नैमित्तिकपूजने ।
यथा हि बलिबाहुल्यं पवित्रारोहणे भवेत् ॥१४२५॥
तथा देवि विधातव्यं फलबाहुल्यमिच्छता ।
नैवेद्यस्य प्रदीपस्य धूपस्य च बलेस्तथा ॥१४२६॥
पात्रणामथ शक्तीनामत्राधिक्यं समाचरेत् ।
गीतानां वाद्यनृत्यानामत्राधिक्यं फलाप्तये ॥१४२७॥

साधकाः साधिका वापि ये चरन्त्यत्र कर्मणि ।
स्नाता अलंकृता धौतचरणांशुकपाणयः ।।१४२८।।
मुदिताः सुप्रसन्नाश्च सोत्साहा अत्र कर्मणि ।
विहिते बलिदाने तु विधिवद्विबुधेश्वरि ।।१४२९।।
[सकलदेवतानां कृते समन्त्रः पवित्रार्पणविधिः]
एकं पवित्रं सर्वाभ्यो देवताभ्यो समर्पयेत् ।
उक्तानुक्ताश्च ये केचिद् देवा वा देव्य एव वा ।।१४३०।।
पूर्णाहुतिवदेतेभ्यो दद्यादेतत् क्रियाविधौ ।
आवृत्तिस्तस्य षष्टिः स्यादष्टोत्तरशताधिका ।।१४३१।।
द्वादशग्रन्थिसंयुक्ता षड्त्रिंशांगुलिमायता ।
पंचभंग्यान्विता तद्वदथ मन्त्रं शृणु प्रिये ।।१४३२।।
समाप्ते बलिदाने तु पवित्रमधुनोदितम् ।
पाणिभ्यां तत्समादाय वक्ष्यमाणमनुं गृणन् ।।१४३३।।
प्रदद्यात्सर्वदेवेभ्यो ये पवित्राधिकाङ्क्षिणः ।
तारो मैधश्च पाशश्च माया कामो वधूरपि ।।१४३४।।
योगिनीरावडाकिन्यः फेत्कारी प्रलयादिमा ।
प्रासादप्रेतभैरव्यः कर्णिकाहारशृंखलाः ।।१४३५।।
उत्कोचिनी सर्वशेषे कूटान्यष्टादशाऽप्यतः ।
तारशांकरभैरव्यो नादसौवर्णगुह्यकाः ।।१४३६।।
सृष्टयादयः पञ्च तथा सत्त्वं हैरण्यगर्भवत् ।
पुष्करं चापि तदनु परान्निज्ज्येष्ठ एव च ।।१४३७।।
सर्वशेषे परिज्ञेयं महानिर्वाणनामकम् ।

त्रयस्त्रिंशत्कोटिजातिनामधारिणो देवास्तादृश्यो देव्यश्च ये चैतत्कर्मण्यधिष्ठिता आहूता वा सावरणा निरावरणा भागिनः प्रेक्षका लुम्पका रक्षका भक्षकास्तेभ्य इदं पवित्रं समर्पयामि निवेदयाम्युपढौकयामि गृह्णीतामुञ्चत परिदधत ममादः कर्म

समापयत प्रेक्षेध्वं मा लुम्पध्वं मा भक्षयध्वं युष्मभ्यो भागमददं तेनैव मुदिता भवत अविघ्नं कुरुत भयं शमयत प्रत्यक्षं द्विषतो घ्नत ।

सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्तु मम शब्दात्समुद्धरेत् ।
संपदोऽनु च वर्द्धन्तां पूर्वोक्तात्पदतः प्रिये ।।१४३८।।
अमृतक्षेत्रपालौ च काकिनी दक्षिणा बलिः ।
जम्भः प्रासो विधिश्चञ्चुः प्रचण्डान्ता च भूतिनी ।।१४३९।।
तथा पतनसंहारौ विनादाद्यास्त्रयोऽपि च ।
प्रसीदत द्वयमथ वरदा भवतैककम् ।।१४४०।।
सर्वान्कामान्विन्दत च द्वे द्वे शेषास्त्रयोस्ततः ।
चरमेंऽगुष्ठतर्जन्यावेकैको समुदाहरेत् ।।१४४१।।
अनेन मनुना देवि यावत्यो देवदेवताः ।
दिव्यन्तरीक्षपाताले भूमावब्धौ तरौ जले ।।१४४२।।
गोष्ठे श्मशाने भवने कान्तारे [नद्य]एव वा ।
भवन्ति पूजिताः सर्वाः पवित्रेण वरानने ।।१४४३।।

[विविधवाद्यवादनविधानम्]

ततो वाद्यं वादयीत प्रचुरं शंखघण्टयोः ।
अन्येषामपि वाद्यानां शब्दं यत्नेन कारयेत् ।।१४४४।।
डमरोश्च मृदंगस्य वीणाया आनकस्य च ।
पटहस्याथ ढक्काया घनस्य शुषिरस्य च ।।१४४५।।
प्राचुर्यं तत्क्षणे कुर्याद्विशेषाद्धूपदीपयोः ।

[शक्तिपूजाविधिः]

शक्तिपूजां ततः कुर्याद्रीत्या पूर्वोक्तया प्रिये ।।१४४६।।
विकारो मान्मथस्तत्र वर्जनीयः प्रयत्नतः ।
अंगहानिस्तु पूजायाः कृतेऽमुष्मिन्प्रजायते ।।१४४७।।
पारुष्यं कलहं निन्दां द्वेषमालस्यमेव च ।
त्वरां तन्द्रां मदं जाड्यं विषादं रोदनं भयम् ।।१४४८।।

द्वादशैतानि वर्ज्यानि यत्नात्स्मरविकारवत् ।
वस्त्रालंकरणादीनि शक्तितः शक्तयेऽर्पयेत् ॥१४४९॥
यैः कैरपि प्रकारैस्तु शक्तिं तुष्टां समाचरेत् ।
विदायायंग[?]विकृतिं तेन तुष्यति कालिका ॥१४५०॥

[कुमारीपूजाविधिः]

तां समाप्य क्रियां देवि कुमारीरथ पूजयेत् ।
तिस्रः पञ्च तथा सप्त नवैकादश वा तथा ॥१४५१॥
एतदूर्ध्वं न कर्तव्या युग्मा वा युग्मरूपिणीः ।
अर्चायां शारदीयायामेतस्य विधिरीरितः ॥१४५२॥
एतासां चेष्टनविधौ पूर्ववत्फलमेव हि ।
देव्या एव पुरः सर्वाधो जयीत विचक्षणः ॥१४५३॥
खाद्यद्रव्यस्यापि फलं पूर्वं[व]त्कथितं प्रिये ।
भक्षयन्तीषु तास्वित्थं पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः ॥१४५४॥
नाम्नां सहस्रं गद्यं वा सुधाधारामथापि वा ।
बीजमालामयीमन्त्रमथवा समुदाहरेत् ॥१४५५॥
विष्णूपास्यायुतार्णं वा न तुष्णीं स्थितिमाचरेत् ।
संभाविता विसर्ज्यैता उच्छिष्टानि निरस्य च ॥१४५६॥

[पुष्पाञ्जलित्रयदानविधिः]

चतुर्विंशतिभिर्मन्त्रैः पृथक्पृथगुदीरितैः ।
शनैर्शनैर्न्निरलसो दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥१४५७॥
एकाक्षरं समारभ्य यावत्साहस्रिकाक्षरः ।
यावन्तो गुह्यकाल्यास्तु मन्त्रा अत्र मयोदिताः ॥१४५८॥
तानेकैकं समुच्चार्य त्रिवारं त्रिदशेश्वरि ।
निमील्य नेत्रे भक्त्येत्थं प्रदद्यात्कुसुमाञ्जलिम् ॥१४५९॥
प्रदक्षिणं ततो दद्याद् दक्षिणाप्लुतिपूर्वकम् ।
दण्डप्रणामं च चरेदष्टांगावनिसंगिनम् ॥१४६०॥

आरात्रिकं ततो दद्याद् यथाविभवशक्ति च ।

[शिवाबलिविधिः]

सायाह्नेऽहनिसंजाते शिवाभ्यो बलिमाहरेत् ।।१४६१।।
समांसतेमनैरन्नैः सा मन्त्र्याऽप्यन्यया तथा ।
विधानं द्विविधं तस्य मया पूर्वं निरूपितम् ।।१४६२।।
एकं नानामिषैः साध्यं बह्वायासं महत्फलम् ।
तच्च कामकलाकाल्याः प्रसंगेन त्वया श्रुतम् ।।१४६३।।
अन्यद् गुह्याप्रसंगेन वारद्वयमुदीरितम् ।
यत्रात्मनः स्यात्सामर्थ्यं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।।१४६४।।
समाचरेत्तदेवात्र साधको निजया धिया ।
रात्रावेष विधिः कार्यो न तिष्ठति दिवाकरे ।।१४६५।।
अस्य रीतिफले देवि तत्रैव प्रतिपादिते ।
ततो गते याममात्रे रात्रेरभ्यधिकेऽपि वा ।।१४६६।।

[पात्रतर्पणविधिः]

संस्थापितानां पात्राणां कुर्यात्तदनु तर्पणम् ।
यः पक्षो यस्य यः प्रोक्तः स तेन विदधीत तम् ।।१४६७।।
षड्त्रिंशाष्टादश तथा द्वादशापि तदार्धिकम् ।
तत्तन्मर्यादया तस्य तस्य तर्पणमाचरेत् ।।१४६८।।
क्रमोऽप्यस्योदितः पूर्वं तत्समयं तु कर्मणि ।
केचिद्वदन्त्यत्र कार्ये कुर्यान्मितचतुष्टयम् ।।१४६९।।
एकं द्वयं त्रयं चापि कुर्यादथ चतुष्टयम् ।
मतं ममाप्येतदेव फलभूमा यतो भवेत् ।।१४७०।।
कृतेनैकप्रकारेण नांगहानिः प्रजायते ।
कृतैः सर्वप्रकारैस्तु फलबाहुल्यमुच्यते ।।१४७१।।
यथा यस्याभिलषितं विधेयं तेन तत्तथा ।
पवित्रारोहणं कर्म महमेतद्धि वार्षिकम् ।।१४७२।।

अत्र सर्वे तथा देवास्तुष्टाः स्युस्तत्समाचरेत् ।
इत्थं समाप्य देवेशि कर्म तार्पणिकं शुभम् ॥१४७३॥
वामेन घण्टामाधूय दक्षेणारात्रिकं वहन् ।
वक्ष्यमाणैः स्तवश्लोकैः स्तुतिं देव्यग्र आचरेत् ॥१४७४॥

[देव्याः स्तवः]

जय जन्मजरामृत्युव्याधिहारिणि कालिके ।
जय संसारपाथोधितरणे करुणामयि ॥१४७५॥
जय पापमहाशैलपक्षच्छेदाशनेऽम्बिके ।
जय श्रीकण्ठगृहिणि भक्तकल्पलते जय ॥१४७६॥
जय ब्रह्ममयीशानि जय नित्ये शिवे जय ।
जय वेदाम्बुधिसुधे चिदानन्दाकृते जय ॥१४७७॥
जय दुःखौघतृणव्यूहज्वलदग्निशिखे परे ।
जय श्मशाननिलये जय मुक्तिप्रदायिनि ॥१४७८॥
परापरसमुद्भूतचिदानन्दैकविग्रहे ।
कुलाकुलमताम्भोधि गुह्यकालि दशानने ॥१४७९॥
भीमरावे महाघोरे सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
सर्वान्तर्यामिनि शिवेऽखिलकर्मैकसाक्षिणि ॥१४८०॥
निरञ्जने महामाये नादबिन्दुकलात्मिके ।
वेदान्तागोचरे दुर्गे दुर्गोत्तारिणि पार्वति ॥१४८१॥
धर्माऽधर्ममहास्रोतोऽर्णवरूपिणि चिन्मये ।
त्रैलोक्यव्यापिके नित्ये ज्ञानामृतकलानिधे ॥१४८२॥
हरस्य चारिणीशानि सर्वकर्मैकसाक्षिणि ।
धर्माधर्ममहापाशहस्ते त्रैलोक्यडामरि ॥१४८३॥
नादबिन्दुकलारूपे योगोदधिसुधामयि ।
आगमारण्यपञ्चास्ये ब्रह्मविष्णुशिवासने ॥१४८४॥

अट्टाट्टहासिनि नादसन्त्रासितजगत्त्रये ।
चतुर्वर्गमहावृक्षफलरूपिणि शांकरि ॥१४८५॥
यानि कानि पुराणानि ये केचिन्निगमागमाः ।
सांख्यानि योगा ज्ञानानि त्वं तेषां तत्त्वमुच्यते ॥१४८६॥
न विदुर्वेदवेदान्तास्तव तत्त्वं नवेश्वरः ।
न विष्णुर्नैव च ब्रह्मा कुत एवाधमा वयम् ॥१४८७॥
पवित्रारोहणं कर्म यदिदं वै कृतं मया ।
गृहाण सर्वं देवेशि परिवारगणैः सह ॥१४८८॥
न रूपं नैव ते शीलं नैवाकारं न च क्रियाम् ।
न जाने भगवत्यम्ब भक्ति ते वेद्मि केवलम् ॥१४८९॥
इति षोडशभिः पद्यैः प्रथितैर्भक्तिभावितैः ।
आरात्रिकं समाप्यैव दण्डवत्प्रणमेद् भुवि ॥१४९०॥
प्रणामान् यावतः कर्तुं शक्नुयात्कालिकाग्रतः ।
आचरेत्तावतो भक्त्या साधकः स्तुतिमीरयन् ॥१४९१॥

[कवचपाठविधिः]

पठेत्ततो नु कवचं साधकः शक्तिभिर्युतः ।
परिवारगणैः सर्वैरन्यैर्मन्त्रेषु दीक्षितैः ॥१४९२॥
तां रात्रिं सकलान् व्याप्य पवित्रकुसुमांशुकम् ।
तथैव सर्वं देव्यंगे स्थापयीत विचक्षणः ॥१४९३॥
ततो निशीथे संजाते प्रसुप्ते सकले जने ।
साधकैः साधिकाभिश्च सह मुख्यो हि साधकः ॥१४९४॥
पात्रामृतानि नैवेद्यं चन्दनं कुसुमं फलम् ।
उपयुञ्जीत विधिवदन्येभ्योऽपि प्रदापयेत् ॥१४९५॥
यद्यद्पात्रं यस्य योगं यद्यद्विहितमत्र च ।
तत्सर्वमन्यूनतया विधातव्यं स्वया धिया ॥१४९६॥

शान्तिपाठं ततः कुर्यात्सविशेषतयोदितम् ।

[शान्तिपाठविधिः]

पवित्रारोहणविधौ ये केचिदिह देवताः ॥१४९७॥
समायाता मयाहूता देव्या सह य आगताः ।
कौलिकागमरीत्येदं मया कर्म समापितम् ॥१४९८॥
पूजिता गुह्यकाली च यथाशक्ति यथावस्तु ।
तेन मे प्रीयतां सैव यदि सत्यं सदाशिवः ॥१४९९॥
सुरामिषैर्मया देवी पूजिता शिवशासनात् ।
मयि प्रसन्ना सा भूयात्किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ॥१५००॥
कौलिकाचारकथितां ये निन्दन्तेऽर्हणां तव ।
ते त्वत्कुदृष्टिनिहताः पतन्तु भुवि पर्णवत् ॥१५०१॥
पतन्तु निरये घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
तान् रुद्रः स[श]पतां सद्यः सदारसुतबान्धवान् ॥१५०२॥
ये पूजामीदृशीं तेऽम्ब निन्दन्ति ज्ञानगर्विताः ।
सदास्तु शुभमस्माकं संपदः सन्तु कर्मणि ॥१५०३॥
राजानो वशमायान्तु विद्या चास्तु निरर्गला ।
पुत्रपौत्राभिवृद्धिः स्याज्जीवाम शरदां शतम् ॥१५०४॥
शत्रवो नाशमायान्तु वृद्धिं मित्राणि चैव मे ।
वेदस्मृतिपुराणानि किं करिष्यन्ति मादृशाम् ॥१५०५॥
मय्यम्ब करुणादृष्टिर्यदि ते पक्षपातिनि ।
शिवाज्ञया त्वदर्चायां कृतायां यदि कालिके ॥१५०६॥
श्रुत्यश्च [?] च्युतिरस्माकं त्वं तदा तारयित्र्यसि ।
कुलनिन्दाकरा ये च ये चामुष्यान्धनोऽहिताः [?]॥१५०७॥
ये द्विषन्ति शिवानुज्ञां ये च त्वय्यनुसूयकाः ।
य आगमं न मन्यन्ते ये च शंकसुकालसाः ॥१५०८॥

प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा ये द्विषन्ति च मादृशः ।
येषामवज्ञा चैतेषु द्वेषालीकमतां तथा ॥१५०९॥
ये स्वयं धार्मिकंमन्या येऽप्याचारपरायणाः ।
ये वैदिका याज्ञिकाश्च तथा ये चाग्निहोतृणः ॥१५१०॥
त्वय्यनास्थां विदधति ये केचित्पापयोनयः ।
ते सर्वे विलयं यान्तु पतितास्तव खर्परे ॥१५११॥
डाकिन्योऽदन्तु तान्सर्वान् विधाय लवशस्तथा ।
भैरव्यो भैरवाश्चापि निरये पातयन्तु तान् ॥१५१२॥
बटुकाः क्षेत्रपालाश्च ये त्वत्सिंहासनोद्वहाः ।
त्वं तेषां पिब रक्तानि खाद मांसानि पार्वति ॥१५१३॥
अथवा नरके घोरे पातयित्वा प्रसाधि वा ।
शाला वृकोदरेष्वेते प्रमीतायां तु तत्क्षणात् ॥१५१४॥
कष्टात्कष्टतरं वापि ते सर्वे कालिकाद्विषः ।
धर्मस्य सेतवो ये च ये सदाचारदेशिनः ॥१५१५॥
प्रमाणीकुर्वते ये त्वां रक्षकास्ते भवन्तु नः ।
चत्वारो देवि ये वेदा ये चैषां संगतां गताः ॥१५१६॥
आम्नाया ये षडाख्याता ये चैषामनुयायिनः ।
निरूपिता या ऋषिभिर्धर्माचारस्य संहिताः ॥१५१७॥
मीमांसे कथिते ये द्वे ज्ञानकर्मप्रकाशिके ।
ज्ञानं सांख्यं तपो योगो विद्यायाश्च चतुर्दश ॥१५१८॥
पुराणानीतिहासाश्च तर्कव्याकरणादयः ।
समुद्राः लवणोदाद्या ये सप्त परिकीर्तिताः ॥१५१९॥
जम्बूप्लक्षादयो द्वीपाः पातालानि तथैव च ।
द्यौरन्तरीक्षं मार्तण्डो नक्षत्राणि ग्रहाः शशी ॥१५२०॥
राशयो द्वादश तथा लग्नानि तिथयोऽपि च ।
मुहूर्ताश्च कला काष्ठा त्रुटी रात्रिदिने तथा ॥१५२१॥

पक्षौ मासास्तथैवाह्वा ऋतवश्चायने अपि ।
युगानि चत्वारि तथा कल्पा मन्वन्तराणि च ॥१५२२॥
नागाजसंख्यके [?] वीथ्यौ निधयः कल्पपादपाः ।
सुमेर्वाद्यास्तथा शैला अनन्तो नागरान्यथा [?] ॥१५२३॥
वासुक्याद्यास्तथा सर्पा गरुडाद्याः खगा अपि ।
इन्द्रो वह्निर्यमश्चापि निर्ऋतिर्वरुणो मरुत् ॥१५२४॥
यक्षाधिपतिरीशानोऽष्टौ तथा ये कुलाचलाः ।
देवा देवर्षयः सर्वे गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥१५२५॥
काश्यादीनि च तीर्थानि शिवलिंगानि यानि च ।
कीर्तितानि पुराणादौ ये च क्षेत्रोषराह्वयाः ॥१५२६॥
सरांसि पुष्करादीनि वनान्युपवनानि च ।
ज्योतिष्टोमादयो योगाः पराकादितपांसि च ॥१५२७॥
यमाश्च नियमाश्चापि गार्हस्पत्यादयोऽग्नयः ।
आगमेयास्त्वथा श्रौता येऽमुत्रा परिकीर्तिताः[?]॥१५२८॥
ऋत्विजो वसुधागावच्छन्दांसि निखिलानि च ।
घृतं पयो दधि मधु गोमयं कुसुमाक्षतम् ॥१५२९॥
कुशास्तिलास्तथा दुर्वा यच्चान्यन्मेध्यमीरितम् ।
कालिकायाः प्रसादेन मम भक्त्या तथैव च ॥१५३०॥
सर्वं शुभाय भवतु अशुभक्षयमेव च ।
सर्वासु दिक्षु मां सिद्धिकराली पातु सा सदा ॥१५३१॥
विदिक्षु च महाचण्डयोगेश्वर्यवतु ध्रुवम् ।
डामरी मां स्थले पातु जलेऽवत्वट्टहासिनी ॥१५३२॥
कालचक्रेश्वरी पातु निराधारे नभस्तले ।
चामुण्डा मां रणे रक्षेन्मातंगी गहने वने ॥१५३३॥
अव्यान्नद्युदधौ तारा सिद्धिलक्ष्मीर्नृपांगणे ।
विवादे बगला पातु दारिद्र्ये धनदावतु ॥१५३४॥

त्रिपुरा त्रिविधोत्पाते परदेशेऽपराजिता ।
अत्युत्पाते महाकाली त्वरिता प्राणसंकटे ॥१५३५॥
जयन्ती विजिगीषासु भद्राकाल्यद्रिमूर्द्धनि ।
मृत्युञ्जयामये पातु विपत्तौ संकटाम्बिका ॥१५३६॥
मोहेषु त्रिपुटा पातु भूतावेशेषु भैरवी ।
रात्रौ चण्डेश्वरी रक्षेन्महामाया दिनेऽवतु ॥१५३७॥
सन्ध्ययो रुद्रचण्डाव्यान्नाकुली वृक्षकोटरे ।
दस्युतस्करतो दुर्गा श्वापदेभ्यश्च शूलिनी ॥१५३८॥
कृत्याभिचारतो बाला ग्रहदोषेषु कुब्जिका ।
शस्त्रास्त्रेभ्यश्छिन्नमस्ता शिवदूती दवानलात् ॥१५३९॥
समुद्रवात्यायानादौ चर्चिका मां सदावतु ।
राजराजेश्वरी रक्षेन्सर्वस्माद्वसुमोषकात् ॥१५४०॥
पातु सर्वाभ्य ईतिभ्यो बाभ्रवी बभ्रुपिंगला ।
जले स्थले गिरौ नद्यां समुद्रे घोरकानने ॥१५४१॥
याते जले दस्युभये श्वापदत्रास एव वा ।
विवादे संकटे वापि रणे राजकुले तथा ॥१५४२॥
विषभीतौ वज्रपाते कान्तारे चौरसंकुले ।
उपद्रवे वा व्याधिनस्त्रिविधोत्पात एव वा ॥१५४३॥
महामारीषु दुर्भिक्षे भये वा राजसर्पयोः ।
दिवसे वा तथा रात्रौ सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१५४४॥
नानाप्रकारास्वापत्सु बन्धुविच्छेद एव च ।
अभ्युत्थाने रिपूणाम्वा उपसर्गभये तथा ।१५४५॥
कुत्सितस्वप्नसंदर्शे महत्यग्निभये तथा ।
उक्तानुक्तासु सर्वासु वासुकास्वपि भीतिषु [?]॥१५४६॥
वज्रकापालिनी पातु स्वगणैः परिवारिता ।
विद्या कीर्तिश्च भोगश्च हिरण्यानि हया गजाः ॥१५४७॥

युवभ्यो रूपवत्यश्च विभ्रमाभरणाः स्त्रियः ।
तवार्चा तव भक्तिश्च भवपाशच्छिदा तथा ॥१५४८॥
पुत्रपौत्रादिबाहुल्यभूयसी मान्यता नृपात् ।
यावज्जीवमनारोग्यं महदायुस्तथैव च ॥१५४९॥
इन्द्रियाणामवैकल्यं तथा निर्वेशशक्तिता ।
जयो विवादे सर्वत्र लोकानां वशता तथा ॥१५५०॥
तथाऽप्रतिहतेच्छत्वं सुतीर्थे देहपातनम् ।
एतत्सर्वं भवेत्सिद्धिकराल्यास्तव भक्तितः ॥१५५१॥
गुह्यकाली नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमोनमः ।
इति भिन्नक्रमं शान्तिपाठं कृत्वा वरानने ॥१५५२॥
शक्तीच्छापूर्वकं कुर्यात्संभोगसुरतोत्सवम् ।
यद्यदीष्टे मनस्तस्यां रात्रौ तत्तत्समाचरेत् ॥१५५३॥
नैवेद्यभक्षणं वापि तथान्यत्साबरोत्सवम् ।
एवं सर्वा निशा तत्र नीत्वा जागरणादिना ॥१५५४॥
प्रातः स्नात्वा तथा चीर्णं नित्यकृद् य उदङ्मुखः ।
पञ्चोपचारैर्दशभिरुपचारैरथापि वा ॥१५५५॥
पूजयित्वा जगद्धात्रीं धूपाद्यैः कुसुमाक्षतैः ।
दीपैर्नैवेद्यबाहुल्यैर्कुलोक्तैर्भूरिवस्तुभिः ॥१५५६॥
घण्टावाद्यैरात्रिके च निवेद्य तदनन्तरम् ।
मूर्ध्नि छत्रं समारोप्य चामरेणोपबीज्य च ॥१५५७॥
अन्यान्यपि हि वाद्यानि वादयित्वा बहूनि च ।
कृताञ्जलिपुटाः कृत्वा स्ववर्ग्या पुरुषाः स्त्रियः ॥१५५८॥
देव्यनुज्ञां समादाय कुर्यादस्या विसर्जनम् ।
मण्डलं स्थण्डिलं वापि कलशं खड्गमेव वा ॥१५५९॥
पीठम्वा यन्त्रमूर्ती वा स्पृष्ट्वा दक्षेण पाणिना ।
वक्ष्यमाणान्मन्त्ररूपान् श्लोकान् धीरः समुच्चरेत् ॥१५६०॥

[देव्याः बिसर्जनस्तुतिः]

जय देवि जगद्धात्रि जय प्रणतवत्सले ।
जय पापौघसंहर्त्रि सदाशिवसधर्मिणि ।।१५६१।।
जय जन्मजरादावामृतघोरजयेश्वरि ।
जय दारिद्रचकुलिशहतभक्तमहौषधि ।।१५६२।।
असंख्यशक्तिसहिते जयाचिन्त्यपराक्रमे ।
शरणागतरक्षित्रि वांछाकल्पलते जय ।।१५६३।।
सुरतेजोमयि जय प्रणतार्तिहरे जय ।
जय सिद्धिप्रदे देवि जय कष्टनिवारिणि ।।१५६४।।
युद्धकालि महारावे दशवक्त्रे करालिनि ।
अट्टहासे घोररूपे मुण्डमालाविराजिते ।।१५६५।।
चतुः पंचाशदोर्द्दण्डैर्दिव्याण्यस्त्राणि बिभ्रति ।
सर्वदेवमयाचिन्त्यसिंहासनविराजिते ।।१५६६।।
आहूतासि मया देवि पवित्रारोहणे विधौ ।
पूजितासि यथाभक्ति यथाविभवमीश्वरि ।।१५६७।।
योजिता चासि यज्ञोक्तयज्ञसूत्रेण कालिके ।
बलिभिस्तर्पिता चासि स्तोत्रेणापि स्तुताऽप्यसि ।।१५६८।।
परिवारास्तथा तेऽम्ब पवित्रैः पूजिता मया ।
उपचारैस्तथा चान्यैः शक्तयस्तव पूजिताः ।।१५६९।।
पवित्रारोहणाख्यां ते कृतां पूजां मया शिवे ।
सर्वाभिः शक्तिभिः सार्द्धं गृहीत्वा गुह्यकालिके ।।१५७०।।
समाप्य वार्षिकीं पूजां कृत्वा निर्विघ्नमाशु मे ।
सिद्धीर्दत्वा च विविधा गृहीत्वा मत्कृतार्चनम् ।।१५७१।।
प्रसन्ना मयि भूत्वा च भूत्वा च मुदिता तथा ।
यथोक्तफलदा भूत्वा गच्छ देवि यथासुखम् ।।१५७२।।
साकारेणानु रूपेण चिरं तिष्ठ गृहे मम ।
निराकारेण रूपेण देवि धाम निजं व्रज ।।१५७३।।

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं परिवारगणैः सह ।
यत्स्थानं न विदुर्देवा विष्ण्वाद्यास्तव कालिके ।।१५७४।।
विसर्जयामि त्वां देवि स्वधामगमनाय हि ।
शिवेन सह संयुज्य पुनरायाहि मद्‌गृहम् ।।१५७५।।
अनुजानामि देवि त्वां संगृहीतास्मदर्चनाम् ।
परिवारस्वशक्तिभ्यां सहिता त्रिदशेश्वरि ।।१५७६।।
मनो मम त्वं जानासि भक्तिं जाने तवाऽप्यहम् ।
कृतं मया स्वोचितं हि त्वमपि स्वोचितं कुरु ।।१५७७।।
ममौचित्यं सुरेशानि त्वद्भक्तिस्त्वत्पदार्चनम् ।
भोगापवर्गयोर्दानं तवौचित्यं प्रकीर्तितम् ।।१५७८।।
शुभाय मम भूत्यै च गच्छ कालि निजं गृहम् ।
सन्तत्यै शत्रुनाशाय पुनरागमनाय च ।।१५७९।।
एभिर्मन्त्रैः सुपठितैस्त्रिवारं सकृदेव वा ।
विसर्जयीत रुद्राणीं देशिको निजवर्गयुक् ।।१५८०।।
सर्वाणि च पवित्राणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
अवतार्यं शनैर्देव्या अङ्गात्साधकसाधकः ।।१५८१।।
नैवेद्यानि तथा मालाः कुसुमान्यनुलेपनम् ।
दद्याद्विभज्य सर्वेभ्यो यथायोग्यं वरानने ।।१५८२।।
धारयीत स्वयं मूलपवित्रं गलकण्ठयोः ।
गले पवित्रमन्येऽपि धारयेयुर्यथोचितम् ।।१५८३।।
भूषणानि च वासांसि गुरवे प्रतिपादयेत् ।
तदभावे देशिकाय तन्त्रज्ञाय विशेषतः ।।१५८४।।
यः कश्चिदपि पात्रं स्यान् नैवेद्यकुसुमासभाम् ।
पवित्राणां हि पात्राणि विरलानि सुरेश्वरि ।।१५८५।।
इति ते कथितो देवि पवित्रारोहणक्रमः ।
अनेन विधिना देवि वर्षे वर्षे पवित्रकम् ।।१५८६।।

कर्तव्यमन्यथा पूजा वर्षस्यैकस्य निष्फला ।
यथागस्त्यायार्घदानं यथा भीष्माय तर्पणम् ॥१५८७॥
अकृते वार्षिकं कृत्यं सर्वं निष्फलतामियात् ।
पवित्रारोहणेऽप्येवमकृते निष्फलाखिला ॥१५८८॥
दमनारोपणं कर्म पवित्रारोहणं तथा ।
उभे नित्ये परिज्ञेये अकृते पापदायिनी ॥१५८९॥
कृतयोः कालिका तुष्टा ददाति वरमीप्सितम् ।
वशे तिष्ठन्ति भूपालाः शत्रवो यान्ति च क्षयम् ॥१५९०॥
वर्द्धन्ते संपदो गेहे पुत्रपौत्रादयोऽपि च ।
पक्षिणी पञ्जरस्थेव विद्यास्य गृहवासिनी ॥१५९१॥
सदाधिष्ठानमीशानी कुरुते तस्य मन्दिरे ।
अनाहूता अपि जनास्तदाज्ञाकारिणः सदा ॥१५९२॥
तद्वंशो वर्द्धते नित्यं दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
महामारीं मारयति उत्पातान्नाशयत्यपि ॥१५९३॥
पवित्रारोहणं कर्म राज्ये यस्य महीपतेः ।
जायते देवि विध्युक्तं धन्यं राष्ट्रं तदुच्यते ॥१५९४॥
न दुर्भिक्षं न चोत्पाता न मारी नाग्नितस्कराः ।
नेतिर्न परचक्रं च नान्ये केचिदुपद्रवाः ॥१५९५॥
प्रत्यूहा नाशमायान्ति गलन्ति विविधामयाः ।
नाकाले म्रियते कश्चिदवग्राहो न जायते ॥१५९६॥
न दरिद्रो न वा दुःखी नोपसर्गो न पीडितः ।
नाकालमृत्युवान् कोऽपि तस्य राष्ट्रेऽभिजायते ॥१५९७॥

इति महाकालसंहितायां दमनारोपणपवित्रारोहणविधानकथनं नाम चतुर्दशतमः पटलः ।

परिशिष्टम् (१)

[काल्याः मेधासाम्राज्यप्रदसहस्रनामस्तोत्रम्]

कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नविभूषिते ।
नानवृक्षलताकीर्णे नानपुष्पैरलङ्कृते ।।१।।
चतुर्मंण्डलसंयुक्ते शृङ्गारमण्डपे स्थिते ।
समाधौ संस्थितं शान्तं क्रीडन्तं योगिनीप्रियम् ।।२।।
तत्र मौनधरं दृष्ट्वा देवी पप्रच्छ शङ्करम् ।

देव्युवाच

किं त्वया जप्यते देव किं त्वया स्मर्यते सदा ।।३।।
सृष्टिः कुत्र विलीनास्ति पुनः कुत्र प्रजायते ।
ब्रह्माण्डकारणं यत् तत् किमाद्यं कारणं महत् ।।४।।
मनोरथमयी सिद्धिस्तथा वाञ्छामयी शिव ।
तृतीया कल्पनासिद्धिः कोटिसिद्धीश्वरात्मकम् ।।५।।
शक्तिपाताष्टदशकं चराचर पुरीगतिः ।
महेन्द्रजालमिन्द्रादिजालानां रचना तथा ।।६।।
अणिमाद्यष्टकं देव परकायप्रवेशनम् ।
नवीनसृष्टिकरणं समुद्रशोषणं तथा ।।७।।
अमायां चन्द्रसंदर्शो दिवा चन्द्रप्रकाशनम् ।
चन्द्राष्टकं चाष्टदिक्षु तथा सूर्याष्टकं शिव ! ।।८।।
जले जलमयत्वं च वह्नौ वह्निमयत्वकम् ।
ब्रह्मविष्णवादिनिर्माणमिन्द्राणां कारणं करे ।।९।।
पादुकागुटिकायक्षवेतालपञ्चकं तथा ।
रसायनं तथा गुप्तिस्तथैव चाखिलाञ्जनम् ।।१०।।

महामधुमती सिद्धिस्तथा पद्मावती शिव ! ।
तथा भोगवती सिद्धिर्यावत्यः सन्ति सिद्धयः ॥११॥
केन मन्त्रेण तपसा कलौ पापसमाकुले ।
आयुष्यं पुण्यरहिते कथं भवति तद्वद ॥१२॥

शिव उवाच

विना मन्त्रं विना स्तोत्रं विनैव तपसा प्रिये !
विना बलिं विना न्यासं भूतशुद्धिं विना प्रिये ! ॥१३॥
विना ध्यानं विना यन्त्रं विना पूजादिना प्रिये ।
विना क्लेशादिभिर्देवि देहदुःखादिभिर्विना ॥१४॥
सिद्धिराशु भवेद् येन तदेवं कथ्यते महः ।
शून्ये ब्रह्माण्डगोले तु पञ्चाशच्छून्यमध्यके ॥१५॥
पञ्चशून्ये स्थिता तारा सर्वान्ते कालिका स्थिता ।
अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-राजदण्डाग्रके शिवम् ॥१६॥
स्थाप्य शून्यालयं कृत्वा कृष्णवर्णं विधाय च ।
महानिर्गुणरूपा च वाचातीता परा कला ॥१७॥
क्रीडायां संस्थिता देवी शून्यरूपा प्रकल्पयेत् ।
सृष्टेरारम्भकार्यार्थं दृष्टा च्छाया तया यदा ॥१८॥
इच्छाशक्तिस्तु सा जाता तथा कालो विनिर्मितः ।
प्रतिविम्बं तत्र दृष्टं जाता ज्ञानाभिधा तु सा ॥१९॥
इदमेतत् किं विशिष्टं जातं विज्ञानकं मुदा ।
तया क्रियाऽभिधा जाता तदीच्छातो महेश्वरि ॥२०॥
ब्रह्माण्डगोले देवेशि राजदण्डस्थितं च यत् ।
सा क्रिया स्थापयामास स्वस्वस्थानक्रमेण च ॥२१॥
तत्रैव स्वेच्छया देवि सामरस्यपरायणा ।
तदीच्छा कथ्यते देवि यथावदवधारय ॥२२॥

युगादिसमये देवि शिवं परगुणोत्तमम् ।
तदिच्छानिर्गुणं शान्तं सच्चिदानन्द विग्रहम् ॥२३॥
शाश्वतं सुन्दरं शुद्धं सर्वदेवयुतं वरम् ।
आदिनाथं गुणातीतं काल्या संयुतमीश्वरम् ॥२४॥
पूजार्थमागतं देवगन्धर्वाऽप्सरसां गणम् ॥२५॥
यक्षिणीं किन्नरीकन्यामुर्वश्याद्यां तिलोत्तमाम् ।
वीक्ष्य तन्मायया प्राह सुन्दरी प्राणवल्लभा ॥२६॥
त्रैलोक्यसुन्दरी प्राणस्वामिनी प्राणरञ्जिनी ।
किमागत भवत्याऽद्य मम भाग्यार्णवो महान् ॥२७॥
उक्त्वा मौनधरं शम्भुं पूजयन्त्यप्सरोगणाः ।

अप्सरस ऊचुः

संसारात् तारितं देव त्वया विश्वं जनप्रिय ॥२८॥
सृष्टेरारम्भकार्यार्थमुद्युक्तोऽसि महाप्रभो ।
वेश्याकृत्यमिदं देव मङ्गलार्थंप्रगायनम् ॥२९॥
प्रयाणोत्सवकाले तु समारम्भे प्रगायनम् ।
गुणाद्यारम्भकाले हि वर्तते शिवशङ्कर ॥३०॥
इन्द्राणीकोटयः सन्ति तस्याः प्रसवबिन्दुतः ।
ब्रह्माणी वैष्णवी चैव माहेशो कोटिकोटयः ।
तव सामरसानन्द-दर्शनार्थं समुद्भवाः ।
सञ्जाताश्चाग्रतो देव चास्माकं सौख्यसागर ॥३२॥
रतिं हित्वा कामिनीनां नाऽन्यत् सौख्यं महेश्वर ।
सा रतिर्दृश्यतेऽस्माभिर्महत्सौख्यार्थकारिका ॥३१॥
एवमेतत्तु चास्माभिः कर्तव्यं भर्तृणा सह ।
एवं श्रुत्वा महादेवो ध्यानावस्थितमानसः ॥३४॥
ध्यानं हित्वा मायया तु प्रोवाच कालिकां प्रति ।
कालि कालि रुण्डमाले प्रिये भैरववादिनि ॥३५॥

शिवरूपधरे क्रूरे घोरदंष्ट्रे भयानके ।
त्रैलोक्यसुन्दरकरीसुन्दर्यः सन्ति मेऽग्रतः ॥३६॥
सुन्दरीवीक्षणं कर्म कुरु कालि प्रिये शिवे ।
ध्यानं मुञ्च महादेवि ता गच्छन्ति गृहं प्रति ॥३७॥
तव रूपं महाकालि महाकालप्रियङ्करम् ।
एतासां सुन्दरं रूपं त्रैलोक्यप्रियकारकम् ॥३८॥
एवं मायाभ्रमाविष्टो महाकालो वदन्निति ।
इति कालवचः श्रुत्वा कालं प्राह च कालिका ॥३९॥
माययाऽऽच्छाद्य चात्मानं निजस्त्रीरूपधारिणी ।
इतः प्रभृति स्त्रीमात्रं भविष्यति युगे युगे ॥४०॥
बल्ल्याद्यौषधयो दवि दिवावल्लीस्वरूपताम् ।
रात्रौ स्त्रीरूपमासाद्य रतिकेलिः परस्परम् ॥४१॥
अज्ञानं चैव सर्वेषां भविष्यति युग युगे ।
एवं शापं च दत्वा तु पुनः प्रोवाच कालिका ॥४२॥
विपरीतरतिं कृत्वा चिन्तयन्ति भजन्ति ये ।
तेषां वरं प्रदास्यामि नित्यं तत्र वसाम्यहम् ॥४३॥
इत्युक्त्वा कालिका विद्या तत्रैवान्तरधीयत ।
त्रिशत्त्रिखर्वषड्वृन्दनवत्यर्बुदकोटयः ॥४४॥
दर्शनार्थं तपस्तेपे सा वै कुत्र गता प्रिया ।
मम प्राणप्रिया देवी हा हा प्राणप्रिये मम ॥४५॥
किं करोमि क्व गच्छामि इत्येवं भ्रमसङ्कुलः ।
महाकाल्याः कृपा जाता मम चिन्तापरः शिवः ॥४६॥
यन्त्रप्रस्तारबुद्धिस्तु काल्या दत्तातिसत्वरम् ।
यन्त्रयागं तदारभ्य पूर्वं चिद्घनगोचरः ॥४७॥
श्रीचक्रं यन्त्रप्रस्ताररचनाभ्यासतत्परः ।
इतस्ततो भ्रम्यमाणस्त्रैलोक्यं चक्रमध्यकम् ॥४८॥

चक्रपारं दर्शनार्थं कोटचर्वुदयुगं गतम् ।
भक्तप्राणप्रिया देवी महा श्रीवक्रनायिका ॥४९॥
तत्र बिन्दौ परं रूपं सुन्दरं सुमनोहरम् ।
रूपं जातं महेशानि जाग्रत्त्रिपुरसुन्दरि ॥५०॥
रूपं दृष्ट्वा महादेवी राजराजेश्वरोऽभवत् ।
तस्याः कटाक्षमात्रेण तस्या रूपधरः शिवः ॥५१॥
विना शृङ्गारसंयुक्ता तदा जाता महेश्वरी ।
विना काल्यंशतो देवि जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥५२॥
न शृङ्गारो न शक्तित्वं क्वापि नास्ति महेश्वरी ।
सुन्दर्या प्रार्थिता काली तुष्टा प्रोवाच कालिका ॥५३॥
सर्वासां नेत्रकेशेषु ममांशोऽत्र भविष्यति ।
पूर्वावस्थासु देवेशि ममांशस्तिष्ठति प्रिये ॥५४॥
सावस्था तरुणाख्या तु तदन्ते नैव तिष्ठति ।
मद्भक्तानां महेशानि सदा तिष्ठति निश्चितम् ॥५५॥
शक्तिस्तु कुण्ठिता जाता तथा रूपं न सुन्दरम् ।
चिन्ताविष्टा तु मलिना जाता तत्र तु सुन्दरी ॥५६॥
क्षणं स्थित्वा ध्यानपरा कालीचिन्तनतत्परा ।
तदा काली प्रसन्नाऽभूत् क्षणार्धेन महेश्वरी ॥५७॥
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति सादरम् ।
सुन्दर्युवाच
मम सिद्धिवर देहि वरोऽयं प्रार्थ्यते मया ॥५८॥
तादृगुपायं कथय येन शक्तिर्भविष्यति ।
काल्युवाच
मम नामसाहस्रं च मया पूर्वविनिर्मितम् ॥५९॥
मत्स्वरूपं ककाराख्यं मेधासाम्राज्यनामकम् ।
वरदानाभिधं नाम क्षणार्द्धाद्वरदायकम् ॥६०॥

तत्पठस्व महामाये तव शक्तिर्भविष्यति ।
ततः प्रभृति श्रीविद्या तन्नामपाठतत्परा ॥६१॥
तदेव नामसाहस्रं सुन्दरीशक्तिदायकम् ।
कथ्यते परया भक्त्या साधये सुमहेश्वरि ॥६२॥
मद्यैर्मांसैस्तथा शुक्रैर्बहुरक्तैरपि प्रिये ।
तर्पयेत् पूजयेत् कालीं विपरीतरतिं चरेत् ॥६३॥
विपरीतरतौ देवि काली तिष्ठति नित्यशः ।
माध्वीकपुष्पशुक्रान्नमैथुनाद्या विरागिणी ॥६४॥
वैष्णवी व्यापिका विद्या श्मशानवासिनी परा ।
वीरसाधनसन्तुष्टा वीरास्फालननादिनी ॥६५॥
शिवाबलिप्रहृष्टात्मा शिवारूपाद्यचण्डिका ।
कामस्तोत्रप्रियात्युग्रमानसा कामरूपिणी ॥६६॥
ब्रह्मानन्दपरा शम्भुमैथुनानन्दतोषिता ।
योगीन्द्रहृदयागारा दिवा निशि विपर्यया ॥६७॥
क्षणं तुष्टा च प्रत्यक्षा दन्तमालाजपप्रिया ।
शय्यायां चुम्बनाङ्गः सन् वेश्यासङ्गपरायणः ॥६८॥
खड्गहस्तो मुक्तकेशो दिगम्बरविभूषितः ।
पठेन्नामसहस्राख्यं मेधासाम्राज्यनामकम् ॥६९॥
यथा दिव्यामृतैर्देवाः प्रसन्ना क्षणमात्रतः ।
तथाऽनेन महाकाली प्रसन्ना पाठमात्रतः ॥७०॥
कथ्यते नामसाहस्रं सावधानमना श्रृणु ।
सर्वसाम्राज्यमेधाख्यनामसाहस्रकस्य च ॥७१॥
महाकाल ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
देवता दक्षिणा काली मायाबीजं प्रकीर्तितम् ॥७२॥
ह्रूं शक्तिः कालिकाबीजं कीलकं परिकीर्तितम् ।
कालिकावरदानादिस्वेष्टार्थे विनियोगता ॥७३॥

कीलकेन षडङ्गानि षड्दीर्घेण च कारयेत् ।
ध्यानं च पूर्ववत् कृत्वा साधयेदिष्टसाधनम् ॥७४॥

अस्य श्रीसर्वसाम्राज्यमेधाकालीस्वरूपककारात्मकसहस्रनामस्तोत्रस्य महाकालऋषिरुष्णिक्छन्दः श्रीदक्षिणकाली देवता ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं कालीवरदानादिस्वेष्टार्थे जपे विनियोगः ।

ॐ क्रीं काली क्रूं कराली च कल्याणी कमला कला ।
कलावती कलाढ्या च कलापूज्या कलात्मिका ॥७५॥
कलादृष्टा कलापुष्टा कलामस्ता कलाधरा ।
कलाकोटि कलाभासा कलाकोटिप्रपूजिता ॥७६॥
कलाकर्मकलाधारा कलापारा कलागमा ।
कलाधारा कमलिनी ककारा करुणा कविः ॥७७॥
ककारवर्णसर्वाङ्गी कलाकोटिविभूषिता ।
ककारकोटिगुणिता कलाकोटिविभूषणा ॥७८॥
ककारवर्णहृदया ककारमनुमण्डिता ।
ककारवर्णनिलया काकशब्दपरायणा ॥७९॥
ककारवर्णमुकुटा ककारवर्णभूषणा ।
ककारवर्णरूपा च ककशब्दपरायणा ॥८०॥
ककवीरास्फालरता कमलाकरपूजिता ।
कमलाकरनाथा च कमलाकररूपधृक् ॥८१॥
कमलाकरसिद्धिस्था कमलाकरपारदा ।
कमलाकरमध्यस्था कमलाकरतोषिता ॥८२॥
कथङ्कारपरालापा कथङ्कारपरायणा ।
कथङ्कारपदान्तस्था कथंकारपदार्थभूः ॥८३॥
कमलाक्षी कमलजा कमलाक्षप्रपूजिता ।
कमलाक्षवरोद्युक्ता ककारा कर्बुराक्षरा ॥८४॥

करतारा करच्छिन्ना करश्यामा करार्णवा ।
करपूज्या कररता करदा करपूजिता ॥८५॥
करतोया करामर्षा कर्मनाशा करप्रिया ।
करप्राणा करकजा करकाकरकान्तरा ॥८६॥
करकाचलरूपा च करकाचलशोभिनी ।
करकाचलपुत्री च करकाचलतोषिता ॥८७॥
करकाचलगेहस्था करकाचलरक्षिणी ।
करकाचलसम्मान्या करकाचलकारिणी ॥८८॥
करकाचलवर्षाढ्या करकाचलरञ्जिता ।
करकाचलकान्तारा करकाचलमालिनी ॥८९॥
करकाचलभोज्या च करकाचलरूपिणी ।
करामलकसंस्था च करामलकसिद्धिदा ॥९०॥
करामलकसम्पूज्या करामलकतारिणी ।
करामलककालो च करामलकरोचिनी ॥९१॥
करामलकमाता च करामलकसेविनी ।
करामलकवद् ध्येया करामलकदायिनी ॥९२॥
कञ्जनेत्रा कञ्जगतिः कञ्जस्था कञ्जधारिणी ।
कञ्जमालाप्रियकरो कञ्जरूपा च कञ्जना ॥९३॥
कञ्जजातिः कञ्जगतिः कञ्जहोमपरायणा ।
कञ्जमण्डलमध्यस्था कञ्जाभरणभूषिता ॥९४॥
कञ्जसम्माननिरता कञ्जोत्पत्तिपरायणा ।
कञ्जराशिसमाकारा कञ्जारण्यनिवासिनी ॥९५॥
करञ्जवृक्षमध्यस्था करञ्जवृक्षवासिनी ।
करञ्जफलभूषाढ्या करञ्जारण्यवासिनी ॥९६॥
करञ्जमालाभरणा करवालपरायणा ।
करवालप्रहृष्टात्मा करवालप्रियागतिः ॥९७॥

करवालप्रिया कन्या करवालविहारिणी ।
करवालमयीकर्मा करवालप्रियङ्करी ॥९८॥
कबन्धमालाभरणा कबन्धराशिमध्यगा ।
कबन्धकूटसंस्थाना कबन्धानन्तभूषणा ॥९९॥
कबन्धनादसन्तुष्टा कबन्धासनधारिणी ।
कबन्धगृहमध्यस्था कबन्धवनवासिनी ॥१००॥
कबन्धकाञ्चीकरणी कबन्धराशिभूषणा ।
कबन्धमालाजयदा कबन्धदेहवासिनी ॥१०१॥
कबन्धासनमान्या च कपालमाल्यधारिणी ।
कपालमालामध्यस्था कपालव्रततोषिता ॥१०२॥
कपालदीपसन्तुष्टा कपालदीपरूपिणी ।
कपालदीपवरदा कपालकज्जलस्थिता ॥१०३॥
कपालमालाजयदा कपालजपतोषिणी ।
कपालसिद्धिसंहृष्टा कापलभोजनोद्यता ॥१०४॥
कपालव्रतसंस्थाना कपालकमलालया ।
कवित्वामृतसारा च कवित्वामृतसागरा ॥१०५॥
कवित्वसिद्धिसंहृष्टा कवित्वादानकारिणी ।
कविपूज्या कविगतिः कविरूपा कविप्रिया ॥१०६॥
कविब्रह्मानन्दरूपा कवित्वव्रततोषिता ।
कविमानससंस्थाना कविवाञ्छाप्रपूरिणी ॥१०७॥
कविकण्ठस्थिता कं ह्रीं कंकंकं कविपूर्तिदा ।
कज्जला कज्जलादानमानसा कज्जलप्रिया ॥१०८॥
कपालकज्जलसमा कज्जलेशप्रपूजिता ।
कज्जलार्णवमध्यस्था कज्जलानन्दरूपिणी ॥१०९॥
कज्जलाप्रियसन्तुष्टा कज्जलप्रियतोषिणी ।
कपालमालाभरणा कपालकरभूषणा ॥११०॥

कपालकरभूषाढ्या करालचक्रमण्डिता ।
कपालकोटिनिलया कपालदुर्गकारिणी ॥१११॥
कपालगिरिसंस्थाना कपालचक्रवासिनी ।
कपालपात्रसन्तुष्टा कपालार्घ्यपरायणा ॥११२॥
कपालार्घ्यप्रियप्राणा कपालार्घ्यवरप्रदा ।
कपालचक्ररूपा च कपालरूपमात्रगा ॥११३॥
कदली कदलीरूपा कदलीवनवासिनी ।
कदलीपुष्पसम्प्रीता कदलीफलमानसा ॥११४॥
कदलीहोमसन्तुष्टा कदलीदर्शनोद्यता ।
कदलीवनमध्यस्था कदलीवनसुन्दरी ॥११५॥
कदम्बपुष्पनिलया कदम्बवनमध्यगा ।
कदम्बकुसुमामोदा कदम्बवनतोषिणी ॥११६॥
कदम्बपुष्पसम्पूज्या कदम्बपुष्पहोमदा ।
कदम्बपुष्पमध्यस्था कदम्बफलभोजिनी ॥११७॥
कदम्बकाननान्तःस्था कदम्बाचलवासिनी ।
कच्छपा कच्छपाराध्या कच्छपासनसंस्थिता ॥११८॥
कर्णपूरा कर्णनासा कर्णाढ्या कालभैरवी ।
कलप्रीता कलहदा कलहा कलहातुरा ॥११९॥
कर्णयक्षी कर्णवार्त्ता कथिनी कर्णसुन्दरी ।
कर्णपिशाचिनी कर्णमञ्जरी कवि कक्षदा ॥१२०॥
कविकक्षाविरूपाढ्या कविकक्षस्वरूपिणी ।
कस्तूरीमृगसंस्थाना कस्तूरीमृगरूपिणी ॥१२१॥
कस्तूरीमृगसन्तोषा कस्तूरीमृगमध्यगा ।
कस्तूरीरसनीलाङ्गी कस्तूरीगन्धतोषिता ॥१२२॥
कस्तूरीपूजकत्राणा कस्तूरीपूजकप्रिया ।
कस्तूरीप्रेमसन्तुष्टा कस्तूरीप्राणधारिणी ॥१२३॥

कस्तूरीपूजकानन्दा कस्तूरीगन्धरूपिणी ।
कस्तूरीमालिकारूपा कस्तूरीभोजनप्रिया ॥१२४॥
कस्तूरीतिलकानन्दा कस्तूरीतिलकप्रिया ।
कस्तूरीहोमसन्तुष्टा कस्तूरीतर्पणोद्यता ॥१२५॥
कस्तूरीमार्जनोद्युक्ता कस्तूरीचक्रपूजिता ।
कस्तूरीपुष्पसम्पूज्या कस्तूरीचर्वणोद्यता ॥१२६॥
कस्तूरीगर्भमध्यस्था कस्तूरीवस्त्रधारिणी ।
कस्तूरीकामोदरता कस्तूरीवनवासिनी ॥१२७॥
कस्तूरीपानसंरक्षा कस्तूरीप्रेमधारिणी ।
कस्तूरीशक्तिनिलया कस्तूरीशक्तिकुण्डगा ॥१२८॥
कस्तूरीकुण्डसंस्नाता कस्तूरीकुण्डमज्जना ।
कस्तूरीजीवसन्तुष्टा कस्तूरीजीवधारिणी ॥१२९॥
कस्तूरीपरमामोदा कस्तूरीजीवनक्षमा ।
कस्तूरीजातिभावस्था कस्तूरीगन्धचुम्बना ॥१३०॥
कस्तूरीगन्धसंशोभाविराजितकपालभूः ।
कस्तूरीमदनान्तःस्था कस्तूरीमदहर्षदा ॥१३१॥
कस्तूरीकवितादृच्या च कस्तूरीगृहमध्यगा ।
कस्तूरीस्पर्शकप्राणा कस्तूरीविन्दकान्तका ॥१३२॥
कस्तूर्य्यामोदरसिका कस्तूरीक्रीडनोद्यता ।
कस्तूरीदाननिरता कस्तूरीवरदायिनी ॥१३३॥
कस्तूरीस्थापनाशक्ता कस्तूरीस्थानरञ्जिनी ।
कस्तूरीकुशलप्रश्ना कस्तूरीस्तुतिवन्दिता ॥१३४॥
कस्तूरीवन्दकाराध्या कस्तूरीस्थानवासिनी ।
कहरूपा कहाढ्या च कहानन्दा कहात्मभूः ॥१३५॥
कहपूज्या कहाख्या च कहहेया कहात्मिका ।
कहमाला कण्ठभूषा कहमन्त्रजपोद्यता ॥१३६॥

कहनामस्मृतिपरा कहनामपरायणा ।
कहपरायणरता कहदेवी कहेश्वरी ॥१३७॥
कहहेतु कहानन्दा कहनादपरायणा ।
कहमाता कहान्तस्था कहमन्त्रा कहेश्वरी ॥१३८॥
कहगेया कहाराध्या कहध्यानपरायणा ।
कहतन्त्रा कहकहा कहचर्य्यापरायणा ॥१३९॥
कहाचारा कहगतिः कहताण्डवकारिणी ।
कहारण्या कहगतिः कहशक्तिपरायणा ॥१४०॥
कहराज्यनता कर्म्मसाक्षिणी कर्म्मसुन्दरी ।
कर्मविद्या कर्मगतिः कर्मतन्त्रपरायणा ॥१४१॥
कर्ममात्रा कर्मगात्रा कर्मधर्म्मपरायणा ।
कर्मरेखानाशकर्त्री कर्म्मरेखाविनोदिनी ॥१४२॥
कर्म्मरेखामोहकारी कर्मकीर्तिपरायणा ।
कर्मविद्या कर्मसारा कर्माधारा च कर्मभूः ॥१४३॥
कर्मकारी कर्महारी कर्मकौतुकसुन्दरी ।
कर्मकाली कर्मतारा कर्मच्छिन्ना च कर्मदा ॥१४४॥
कर्मचाण्डालिनी कर्मवेदमाता च कर्मभूः ।
कर्मकाण्डरतानन्ता कर्मकाण्डानुमानिता ॥१४५॥
कर्मकाण्डपरीणाहा कमठी कमठाकृतिः ।
कमठाराध्यहृदया कमठकण्ठसुन्दरी ॥१४६॥
कमठासनसंसेव्या कमठी कर्मतत्परा ।
करुणाकरकान्ता च करुणाकरवन्दिता ॥१४७॥
कठोरा करमाला च कठोरकुचधारिणी ।
कपर्द्दिनी कपटिनी कठिनी कङ्कभूषणा ॥१४८॥
करभोरूः कठिनदा करभा करभालया ।
कलभाषामयी कल्पा कल्पना कल्पदायिनी ॥२४९॥

कमलस्था कलामाला कमलास्या क्वणत्प्रभा ।
ककुद्मिनी कष्टवती करणीयकथार्चिता ॥१५०॥
कचार्चिता कचतनुः कचसुन्दरधारिणी ।
कठोरकुचसंलग्ना कटिसूत्रविराजिता ॥१५१॥
कर्णमक्षप्रियाकन्दा कथाकन्दगतिः कलिः ।
कलिघना कलिदूती च कविनायकपूजिता ॥१५२॥
कणकक्षानियन्त्रो च कश्चित्कविवरार्चिता ।
कर्त्री च कर्त्तृका भूषा करिणी कर्णशत्रुपा ॥१५३॥
करणेशी करणपा कलवाचा कलानिधिः ।
कलना कलनाधारा कलना कारिका करा ॥१५४॥
कलगेया कर्कराशिः कर्कराशिप्रपूजिता ।
कन्याराशिः कन्यका च कन्यकाप्रियभाषिणी ॥१५५॥
कन्यकादानसन्तुष्टा कन्यकादानतोषिणी ।
कन्यादानकरानन्दा कन्यादानग्रहेष्टदा ॥१५६॥
कर्षणा कक्षदहना कामिता कमलासना ।
करमालानन्दकर्त्री करमालाप्रपोषिता ॥१५७॥
करमालाशयानन्दा करमालासमागमा ।
करमालासिद्धिदात्री करमालाकरप्रिया ॥१५८॥
करप्रिया कररता करदानपरायणा ।
कलानन्दा कलिगतिः कलिपूज्या करिप्रसूः ॥१५९॥
कलनादनिदानस्था कलनादवरप्रदा ।
कलनादसमाजस्था कहोला च कहोलदा ॥१६०॥
कहोलगेहमध्यस्था कहोलवरदायिनी ।
कहोलकविताधारा कहोलऋषिमानिता ॥१६१॥
कहोलमानसाराध्या कहोलवाक्यकारिणी ।
कर्तृरूपा कर्तृमयी कर्तृमाता च कर्तरी ॥१६२॥

कनीया कनकाराध्या कनीनकमयी तथा ।
कनीयानन्दनिलया कनकानन्दतोषिता ॥१६३॥
कनीयक्करकाष्ठा कथार्णवकरी करी ।
करिगम्या करिगतिः करिध्वजपरायणा ॥१६४॥
करिनाथप्रियाकण्ठा कथानकप्रतोषिता ।
कमनीया कमनका कमनीयविभूषणा ॥१६५॥
कमनीयसमाजस्था कमनीयव्रतप्रिया ।
कमनीयगुणाराध्या कपिला कपिलेश्वरी ॥१६६॥
कपिलाराध्यहृदया कपिलाप्रियवादिनी ।
कहचक्रमन्त्रवर्णा कहचक्रप्रसूनका ॥१६७॥
कएईलह्रीं स्वरूपा च कएईल्ह्रीं वरप्रदा ।
कएईल्ह्रीं सिद्धिदात्री कएइल्ह्रीं स्वरूपिणी ॥१६८॥
कएइल्ह्रीं मन्त्रवर्णा कएइल्ह्रीं प्रसूकला ।
कवर्गा च कपाटस्था कपाटोद्घाटनक्षमा ॥१६९॥
कङ्काली च कपाली च कङ्कालप्रियभाषिणी ।
कङ्कालभैरवाराध्या कङ्कालमानसस्थिता ॥१७०॥
कङ्कालमोहनिरता कङ्कालमोहदायिनी ।
कलुषघ्नी कलुषहा कलुषार्तिविनाशिनी ॥१७१॥
कलिपुष्पा कलादाना कशिपुः कश्यपार्चिता ।
कश्यपा कश्यपाराध्या कलिपूर्णकलेवरा ॥१७२॥
कलेश्वरकरी काञ्ची कवर्गा च करालका ।
करालभैरवाराध्या करालभैरवेश्वरी ॥१७३॥
कराला कलनाधारा कपर्दीशवरप्रदा ।
कपर्दीशप्रेमलता कपर्दिमालिकायुता ॥१७४॥
कपर्दिजपमालाढ्या करवीरप्रसूनदा ।
करवीरप्रियप्राणा करवीरप्रपूजिता ॥१७५॥

कर्णिकारसमाकारा कर्णिकारप्रपूजिता ।
करिषाग्निस्थिता कर्षा कर्षमात्रसुवर्णदा ॥१७६॥
कलशा कलशाराध्या कषाया करिगानदा ।
कपिला कलकण्ठी च कलिकल्पलता मता ॥१७७॥
कल्पलता कल्पमाता कल्पकारी च कल्पभूः ।
कर्पूरामोदरुचिरा कर्पूरामोदधारिणी ॥१७८॥
कर्पूरमालाभरणा कर्पूरवासपूर्त्तिदा ।
कर्पूरमालाजयदा कर्पूरार्णवमध्यगा ॥१७९॥
कर्पूरतर्पणरता कटकाम्बरधारिणी ।
कपटेश्वरसम्पूज्या कपटेश्वररूपिणी ॥१८०॥
कटुः कविध्वजाराध्या कलापपुष्पधारिणी ।
कलापपुष्परुचिरा कलापपुष्पपूजिता ॥१८१॥
क्रकचा क्रकचाराध्या कथम्ब्रमा [?] करालता ।
कथङ्कारविनिर्मुक्ता काली कालक्रिया क्रतुः ॥१८२॥
कामिनी कामिनीपूज्या कामिनीपुष्पधारिणी ।
कामिनीपुष्पनिलया कामिनीपुष्पपूर्णिमा ॥१८३॥
कामिनीपुष्पपूजार्हा कामिनीपुष्पभूषणा ।
कामिनीपुष्पतिलका कामिनीकुण्डचुम्बना ॥१८४॥
कामिनीयोगसन्तुष्टा कामिनीयोगभोगदा ।
कामिनीकुण्डसम्भुग्ना कामिनीकुण्डमध्यगा ॥१८५॥
कामिनीमानसाराध्या कामिनीमानतोषिता ।
कामिनीमानसञ्चारा कालिका कालकालिका ॥१८६॥
कामा च कामदेवी च कामेशी कामसम्भवा ।
कामभावा कामरता कामार्त्ता काममञ्जरी ॥१८७॥
काममञ्जीररणिता कामदेवप्रियान्तरा ।
कामकाली कामकला कालिका कमलार्चिता ॥१८८॥

कादिका कमला काली कालानलसमप्रभा ।
कल्पान्तदहना कान्ता कान्तारप्रियवासिनी ॥१८९॥
कालपूज्या कालरता कालमाता च कालिनी ।
कालवीरा कालघोरा कालसिद्धा च कालदा ॥१९०॥
कालाञ्जनसमाकारा कालञ्जरनिवासिनी ।
कालऋद्धिः कालवृद्धिः कारागृहविमोचिनी ॥१९१॥
कादिविद्या कादिमाता कादिस्था कादिसुन्दरी ।
काशी काञ्ची च काञ्चीशा काशीशवरदायिनी ॥१९२॥
क्रींबीजा चैव क्रांबीजा हृदयाय नमः स्मृता ।
काम्या काम्यगतिः काम्यसिद्धिदात्री च कामभूः ॥१९३॥
कामाख्या कामरूपा च कामचापविमोचिनी ।
कामदेवकलारामा कामदेवकलालया ॥१९४॥
कामरात्रिः कामदात्री कान्ताराचलवासिनी ।
कामरूपा कालगतिः कामयोगपरायणा ॥१९५॥
कामसम्मर्दनरता कामगेहविकाशिनी ।
कालभैरवभार्य्या च कालभैरवकामिनी ॥१९६॥
कालभैरवयोगस्था कालभैरवभोगदा ।
कामधेनुः कामदोग्ध्री काममाता च कान्तिदा ॥१९७॥
कामुका कामुकाराध्या कामुकानन्दवर्द्धिनी ।
कार्तवीर्य्या कार्तिकेया कार्त्तिकेयप्रपूजिता ॥१९८॥
कार्य्या कारणदा कार्य्यकारिणी कारणान्तरा ।
कान्तिगम्या कान्तिमयी कात्या कात्यायनी च का[?]॥१९९॥
कामसारा च काश्मीरा काश्मीराचारतत्परा ।
कामरूपाचाररता कामरूपप्रियम्बदा ॥२००॥
कारूपाचारसिद्धिः कामरूपमनोमयी ।
कार्त्तिकी कार्तिकाराध्या काञ्चनारप्रसूनभूः ॥२०१॥

काञ्चनारप्रसूनाभा काञ्चनारप्रपूजिता ।
कांस्यरूपा कांस्यभूमिः कांस्यपात्रप्रभोजिनी ॥२०२॥
कांस्यध्वनिमयी कामसुन्दरी कामचुम्बना ।
काशपुष्पप्रतीकाशा कामद्रुमसमागमा ॥२०३॥
कामपुष्पा कामभूमिः कामपूज्या च कामदा ।
कामदेहा कामगेहा कामबीजपरायणा ॥२०४॥
कामध्वजसमारूढा कामध्वजसमा स्थिता ।
काश्यपी काश्यपाराध्या काश्यपानन्ददायिनी ॥२०५॥
कालिन्दीजलसङ्काशा कालिन्दीजलपूजिता ।
कादेवपूजानिरता कादेवपरमार्थदा ॥२०६॥
कार्मणा कार्मणाकारा कामकार्म्मणकारिणी ।
कार्म्मणत्रोटनकरी काकिनी कारणाह्वया ॥२०७॥
काव्यामृता च कालिङ्गा कालिङ्गमर्द्दनोद्यता ।
कालागुरुविभूषाढ्या कालागुरुविभूतिदा ॥२०८॥
कालागुरुसुगन्धा च कालागुरुप्रतर्प्पणा ।
कावेरीनीरसम्प्रीता कावेरीतीरवासिनी ॥२०९॥
कालचक्रभ्रमाकारा कालचक्रनिवासिनी ।
कानना काननाधारा कारुः कारुणिकामयी ॥२१०॥
काम्पिल्यवासिनी काष्ठा कामपत्नी च कामभूः ।
कादम्बरीपानरता तथा कादम्बरीकला ॥२११॥
कामबन्ध्या च कामेशी कामराजप्रपूजिता ।
कामराजेश्वरी विद्या कामकौतुकसुन्दरी ॥२१२॥
काम्बोजजा काञ्चिनदा कांस्यकाञ्चनकारिणी ।
काञ्चनाद्रिसमाकारा काञ्चनाद्रिप्रदा नदा ॥२१३॥
कामकीर्त्तिः कामकेशी कारिका कान्तराश्रया ।
कामभेदी च कामार्त्तिनाशिनी कामभूमिका ॥२१४॥

कालानलाशिनी काव्यवनिता कामरूपिणी ।
कायस्था कामसन्दीप्तिः काव्यदा कालसुन्दरी ॥२१५॥
कामेशी कारणवरा कामेशीपूजनोद्यता ।
काञ्चीनूपुरभूषाढ्या कुङ्कुमाभरणान्विता ॥२१६॥
कालचक्रा कालगतिः कालचक्रा मनोभवा ।
कुन्दमध्या कुन्दपुष्पा कुन्दपुष्पप्रिया कुजा ॥२१७॥
कुजमाता कुजाराध्या कुठारवरधारिणी ।
कुञ्जरस्था कुशरता कुशेशयविलोचना ॥२१८॥
कुमठी कुररी कुद्रा कुरङ्गी कुटजाश्रया ।
कुम्भीनसविभूषा च कुम्भीनसवधोद्यता ॥२१९॥
कुम्भकर्णमनोल्लासा कुलचूडामणिः कुला ।
कुलालगृहकन्या च कुलचूडामणिप्रिया ॥२२०॥
कुलपूज्या कुलाराध्या कुलपूजापरायणा ।
कुलभूषा तथा कुक्षिः कुररीगणसेविता ॥२२१॥
कुलपुष्पा कुलरता कुलपुष्पपरायणा ।
कुलवस्त्रा कुलाराध्या कुलकुण्डसमप्रभा ॥२२२॥
कुलकुण्डसमोल्लासा कुण्डपुष्पपरायणा ।
कुण्डपुष्पा प्रसन्नास्या कुण्डगोलोद्भवात्मिका ॥२२३॥
कुण्डगोलोद्भवाधारा कुण्डगोलमयी कुहूः ।
कुण्डगोलप्रियप्राणा कुण्डगोलप्रपूजिता ॥२२४॥
कुण्डगोलमनोल्लासा कुण्डगोलबलप्रदा ।
कुण्डदेवरता क्रुद्धा कुलसिद्धिकरा परा ॥२२५॥
कुलकुण्डसमाकारा कुलकुण्डसमानभूः ।
कुण्डसिद्धिः कुण्डऋद्धिः कुमारीपूजनोद्यता ॥२२६॥
कुमारीपूजकप्राणा कुमारीपूजकालया ।
कुमारी कामसन्तुष्टा कुमारीपूजकोत्सुका ॥२२७॥

कुमारीव्रतसन्तुष्टा कुमारीरूपधारिणी ।
कुमारीभोजनप्रीता कुमारी च कुमारदा ॥२२८॥
कुमारमाता कुलदा कुलयोनिः कुलेश्वरी ।
कुललिङ्गा कुलानन्दा कुलरम्या कुतर्कधृक् ॥२२९॥
कुन्ती च कुलकान्ता च कुलमार्गपरायणा ।
कुल्ला च कुरुकुल्ला च कुल्लुका कुलकामदा ॥२३०॥
कुलिशाङ्गी कुब्जिका च कुब्जिकानन्दवर्द्धिनी ।
कुलीना कुञ्जरगतिः कुञ्जरेश्वरगामिनी ॥२३१॥
कुलपाली कुलवती तथैव कुलदीपिका ।
कुलयोगेश्वरी कुण्डा कुंकुमारुणविग्रहा ॥२३२॥
कुंकुमानन्दसन्तोषा कुंकुमार्णववासिनी ।
कुसुमा कुसुमप्रीता कुलभूः कुलसुन्दरी ॥२३३॥
कुमुद्वती कुमुदिनी कुशला कुलटालया ।
कुलटालयमध्यस्था कुलटासङ्गतोषिता ॥२३४॥
कुलटाभवनोद्युक्ता कुलावर्ता कुलार्णवा ।
कुलार्णवाचाररता कुण्डली कुण्डलाकृतिः ॥२३५॥
कुमती च कुलश्रेष्ठा कुलचक्रपरायणा ।
कूटस्था कूटदृष्टिश्च कुन्तला कुन्तलाकृतिः ॥२३६॥
कुशलाकृतिरूपा च कूर्च्चबीजधरा च कूः ।
कुंकुंकुंकुं शब्दरता क्रूंक्रूंक्रूंक्रूम्परायणा ॥२३७॥
कुंकुंकुं शब्दनिलया कुक्कुरालयवासिनी ।
कुक्कुरासङ्गसंयुक्ता कुक्कुरानन्तविग्रहा ॥२३८॥
कूर्च्चारम्भा कूर्च्चबीजा कूर्च्चजापपरायणा ।
कुचस्पर्शनसन्तुष्टा कुचालिङ्गनहर्षदा ॥२३९॥

कुगतिघ्नो कुवेराच्यर्या कुचभूः कुलनायिका ।
कुगायना कुचधरा कुमाता कुन्ददन्तिनी ॥२४०॥
कुगेया कुहराभासा कुगेया कुघ्नदारिभा ।
कीर्त्तिः किरातिनी क्लिन्ना किन्नरा किन्नरी क्रिया ॥२४१॥
क्रीङ्कारा क्रोञ्जपासक्ता क्रीं ह्रूंस्त्रीं मन्त्ररूपिणी ।
किर्म्मीरितदृशापाङ्गी किशोरी च किरीटिनी ॥२४२॥
कीटभाषा कीटयोनिः कीटमाता च कीटदा ।
किंशुका कीरभाषा च क्रियासारा क्रियावती ॥२४३॥
कींकींशब्दपरा क्लींक्लींक्लूंक्लैंक्लौं मन्त्ररूपिणी ।
कींकींकूंकैं स्वरूपा च कः कट् मन्त्रस्वरूपिणी ॥२४४॥
केतकी भूषणानन्दा केतकी भरणान्विता ।
कैकदा[?]केशिनी केशी केशीसूदनतत्परा ॥२४५॥
केशरूपा केशमुक्ता कैकेयी कौशिकी तथा ।
कैरवा कैरवाह्लादा केशरा केतुरूपिणी ॥२४६॥
केशवाराध्यहृदया केशवासक्तमानसा ।
क्लैव्यविनाशिनी क्लैश्च क्लैं बीजजपतोषिता ॥२४७॥
कौशल्या कोशलाक्षी च कोशा च कमला तथा ।
कोलापुरनिवासा च कोलासुरविनाशिनी ॥२४८॥
कोटिरूपा कोटिरता क्रोधिनी क्रोधरूपिणी ।
केका च कोकिला कोटिः कोटिमन्त्रपरायणा ॥२४९॥
कोट्यनन्तमन्त्रयुता कैरूपा केरलाश्रया ।
केरलाचारनिपुणा केरलेन्द्रगृहस्थिता ॥२५०॥
केदाराश्रमसंस्था च केदारेश्वरपूजिता ।
क्रोधरूपा क्रोधपदा क्रोधमाता च कौशिकी ॥२५१॥
कोदण्डधारिणी क्रौञ्चा कौशिल्या कौलमार्गगा ।
कौलिनी कौलिकाराध्या कौलिकागारवासिनी ॥२५२॥

कौतुकी कौमुदी कौला कुमारी कौरवार्चिता ।
कौण्डिन्या कौशिकी क्रोधा ज्वालाभासुररूपिणी ॥२५३॥
कोटिकालानलज्वाला कोटिमार्तण्डविग्रहा ।
कृत्तिका कृष्णवर्णा च कृष्णकृत्या क्रियातुरा ॥२५४॥
कृशाङ्गी कृतकृत्या च क्रः फट् स्वाहा स्वरूपिणी ।
क्रौं क्रौं हूंफट् मन्त्रवर्णा क्राह्लींह्लूं फट् स्वरूपिणी ॥२५५॥
क्रींक्रींह्लींह्लीं तथा ह्लूं हूंफट् स्वाहा मन्त्र रूपिणी ।
इति श्रीसर्वसाम्राज्यमेधानामसहस्रकम् ॥२५६॥
सुन्दरीशक्तिदानाख्यं स्वरूपाभिधमेव च ।
कथितं दक्षिणाकाल्याः सुन्दर्यै प्रीतियोगतः ॥२५७॥
वरदानप्रसङ्गेन रहस्यमपि दर्शितम् ।
गोपनीयं सदा भक्त्या पठनीयं परस्परम् ॥२५८॥
प्रातर्मध्याह्नकाले च मध्यार्द्धरात्रयोरपि ।
यज्ञकाले जपान्ते च पठनीयं विशेषतः ॥२५९॥
यः पठेत् साधको धीरः कालीरूपो हि वर्षतः ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि शृणोति श्रावयेदपि ॥२६०॥
वाचकं तोषयेद्वापि स भवेत् कालिकातनुः ।
सहेलं वा सलीलं वा यश्चैनं मानवः पठेत् ॥२६१॥
सर्वदुःखविनिर्मुक्तस्त्रैलोक्यविजयी कविः ।
मृतवन्ध्या काकबन्ध्या कन्यावन्ध्या च वन्ध्यका ॥२६२॥
पुष्पवन्ध्या शूलवन्ध्या शृणुयात् स्तोत्रमुत्तमम् ।
सर्वसिद्धप्रदातारं सत्कविं चिरजीवितम् ॥२६३॥
पाण्डित्यं कीर्तिसंयुक्तं लभते नात्र संशयः ।
यं यं काममुपस्कृत्य कालीं ध्यात्वा जपेत् स्तवम् ॥२६४॥
तं तं कामं करे कृत्वा मन्त्री भवति नाऽन्यथा ।
योनिपुष्पैर्लिङ्गपुष्पैकुण्डगोलैन्त्रवैरपि [?] ॥२६५॥

संय्योगामृतपुष्पैश्च त्रस्त्रदेवीप्रसूनकैः ।
कालिपुष्पैः पीठतोयैर्योनिक्षालनतोयकैः ॥२६६॥
कस्तूरीकुङ्कुमैर्देवीं नखकालागुरुक्रमात् ।
अष्टगन्धैर्धूपदीपैर्यवया यवसंयुतैः ॥२६७॥
रक्तचन्दनसिन्दूरैर्मत्स्यमांसादिभूषणैः ।
मधुभिः पायसैः क्षीरैः शोधितैः शोणितैरपि ॥२६८॥
महोपचारै रक्तैश्च नैवेद्यैः सुरसान्वितैः ।
पूजयित्वा महाकालीं महाकालेन लालिताम् ॥२६९॥
विद्याराज्ञीं कुल्लुकाञ्च जप्त्वा स्तोत्रं जपेच्छिवे ।
कालोभक्तस्त्वेकचित्तः सिन्दूरतिलकान्वितः ॥२७०॥
ताम्बूलपूरितमुखो मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
शवयोनिस्थितो वीरः श्मशानसुरतान्वितः ॥२७१॥
शून्यालये बिन्दुपीठे पुष्पाकीर्णे शिवानने ।
शयानोत्थप्रभुञ्जानः कालीदर्शनमाप्नुयात् ॥२७२॥
तत्र यद्यत् कृतं कर्म तदनन्तफलं भवेत् ।
ऐश्वर्य्ये कमला साक्षात् सिद्धौ श्रीकालिकाम्बिका ॥२७३॥
कवित्वे तारिणीतुल्यः सौन्दर्य्ये सुन्दरीसमः ।
सिन्धोर्धारासमः कार्य्ये श्रुतौ श्रुतिधरस्तथा ॥२७४॥
वज्रास्त्र इव दुर्द्धर्षस्त्रैलोक्यविजयास्त्रभृत् ।
शत्रुहन्ता काव्यकर्त्ता भवेच्छिवसमः कलौ ॥२७५॥
दिग् विदिक् चन्द्रकर्त्ता च दिवा रात्रि विपर्य्ययी ।
महादेवसमो योगी त्रैलोक्यस्तम्भकः क्षणात् ॥२७६॥
गानेन तुम्बुरुः साक्षाद् दाने कर्णसमो भवेत् ।
गजाऽश्वरथपत्तीनामस्त्राणामधिपः कृतो ॥२७७॥
आयुष्येषु भुशुण्डो च जरापलितनाशकः ।
वर्षषोडशवान् भूयात् सर्वकाले महेश्वरी ॥२७८॥

ब्रह्माण्डगोले देवेशि न तस्य दुर्लभं क्वचित् ।
सर्वं हस्तगतं भूयान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥२७९॥
कुलपुष्पयुतं दृष्ट्वा तत्र कालीं विचिन्त्य च ।
विद्याराज्ञीं तु सम्पूज्य पठेन्नामसहस्रकम् ॥२८०॥
मनोरथमयी सिद्धिस्तस्य हस्ते सदा भवेत् ।
परदारान् समालिङ्ग्य सम्पूज्य परमेश्वरीम् ॥२८१॥
हस्ताहस्तिकया योगं कृत्वा जप्त्वा स्तवं पठेत् ।
योनिं वीक्ष्य जपेत् स्तोत्रं कुवेरादधिको भवेत् ॥२८२॥
कुण्डगोलोद्भवं गृह्यवर्णाक्तं होमयेन्निशि ।
पितृभूमौ महेशानि विधिरेखां प्रमार्ज्जयेत् ॥२८३॥
तरुणीं सुन्दरीं रम्यां चञ्चलाङ्गामगर्व्विताम् ।
समानीय प्रयत्नेन संशोध्य न्यासयोगतः ॥२८४॥
प्रसूनमञ्चं संस्थाप्य पृथिवीं कशिताश्चरेत् ।
मूलचक्रं तु सम्भाव्य देव्याश्चारणसंय्युतम् ॥२८५॥
सम्पूज्य परमेशानि सङ्कल्प्य तु महेश्वरि ।
जप्त्वा स्तुत्वा महेशानीं प्रणवं संस्मरेच्छिवे ॥२८६॥
अष्टोत्तरशतैर्योनिं प्रमन्त्र्याचुम्ब्य यत्नतः ।
संयोगी भूय जप्तव्यं सर्वविद्याधिपो भवेत् ॥२८७॥
शून्यागारे शिवारण्ये शिवदेवालये तथा ।
शून्यदेशे तडागे च गङ्गागर्भे चतुष्पथे ॥२८८॥
श्मशाने पर्वतप्रान्ते एकलिङ्गे शिवामुखे ।
मुण्डयोनौ ऋतौ स्नात्वा गेहे वेश्यागृहे तथा ॥२८९॥
कुट्टिनीगृहमध्ये च कदलीमण्डपे तथा ।
पठेत्सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं सर्वार्थसिद्धये ॥२९०॥
अरण्ये शून्यगर्त्ते च रणे शत्रुसमागमे ।
प्रजपेच्च ततो नाम काल्याश्चैव सहस्रकम् ॥२९१॥

बालानन्दपरो भूत्वा पठित्वा कालिकास्तवम् ।
कालीं सञ्चिन्त्य प्रजपेत् पठेन्नामसहस्रकम् ॥२६२॥
सर्वसिद्धीश्वरो भूयाद्वाञ्छासिद्धीश्वरो भवेत् ।
मुण्डचूडकयोर्योनि त्वचि वा कामले शिवे ! ॥२६३॥
विष्टरे शववस्त्रे वा पुष्पवस्त्रासनेऽपि वा ।
मुक्तकेशो दिशावासा मैथुनी शयनेस्थितः ॥२६४॥
जप्त्वा कालीं पठेत् स्तोत्रं खेचरीसिद्धिभाग् भवेत् ।
चिकुरं योगमासाद्य शुक्रोत्सारणमेव च ॥२६५॥
जप्त्वा श्रीदक्षिणां कालीं शक्तिपातशतं भवेत् ।
लतां स्पृशन् जपित्वा च रमित्वा त्वर्च्चयन्नपि ॥२६६॥
आलोकयन् दिशावासाः परशक्ति विशेषतः ।
स्तुत्वा श्रीदक्षिणां कालीं योनिं स्वकरगां चरेत् ।२६७॥
पठेन्नामसहस्रं यः स शिवादधिको भवेत् ।
लतान्तरेषु जप्तव्यं स्तुत्वा कालीं निराकुलः ॥२६८॥
दशावधानो भवति मासमात्रेण साधकः ।
कालरात्र्यां महारात्र्यां वीररात्र्यामपि प्रिये ॥२६९॥
महारात्र्यां चतुर्द्दश्यामष्टम्यां संक्रमेऽपि वा ।
कुहूपूर्णेन्दुशुक्रेषु भौमामायां निशामुखे ॥३००॥
नवम्यां मङ्गलदिने तथा कुलतिथौ शिवे ।
कुलक्षेत्रे प्रयत्नेन पठेन्नामसहस्रकम् ॥३०१॥
सुदर्शनो भवेदाशु किन्नरो सिद्धिभाग् भवेत् ।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं वृषशून्यं पुरातनम् ॥३०२॥
तत्र स्थित्वा जपेत् स्तोत्रं सर्वकामाप्तये शिवे ।
भौमवारे निशीथे वा अमावास्यादिने शुभे ॥३०३॥
माषभक्तबलिं छागं कृसरान्नं च पायसम् ।
दग्धमीनं शोणितञ्च दधि दुग्धं कुडार्द्रकम् ॥३०४॥

बलिं दत्वा जपेत् तत्र त्वष्टोत्तरसहस्रकम् ।
देवगन्धर्वसिद्धौघैः सेवितां सुरसुन्दरीम् ।।३०५।।
लभेद्देवेशि मासेन तस्य चासनसंहतिः ।
हस्तत्रयं भवेदूर्ध्वं नात्र कार्या विचारणा ।।३०६।।
हेलया लीलया भक्त्या कालीं स्तौति नरस्तु यः ।
ब्रह्मादीं स्तम्भयेद् देवि महेशीं मोहयेत्क्षणात् ।।३०७।।
आकर्षयेन्महाविद्यां दश पूर्वान् त्रियामतः ।
कुर्वीत विष्णुनिर्म्माणं यमादीनां तु मारणम् ।।३०८।।
ध्रुवमुच्चाटयेन्नूनं सृष्टिनूतनतां नरः ।
मेषमाहिषमार्ज्जारखरच्छागनरादिकैः ।।३०९।।
खड्गीशूकरकापोतैष्टिट्टिभैः शशकैः पलैः ।
शोणितैः सास्थिमांसैश्च कारण्डैर्दुग्धपायसैः ।।३१०।।
कादम्बरीसिन्धुमद्यैः सुरारिष्टैश्च सासवैः ।
योनिक्षालिततोयैश्च योनिलिङ्गामृतैरपि ।।३११।।
स्वजातकुसुमैः पूज्या जपान्ते तर्पयेच्छिवाम् ।
सर्वसाम्राज्यनाम्ना तु स्तुत्वा नत्वा स्वशक्तितः ।।३१२।।
शक्त्या लभन् पठेत् स्तोत्रं कालीरूपो दिनत्रयात् ।
दक्षिणा कालिका तस्य गेहे तिष्ठति नान्यथा ।।३१३।।
वेश्यालतागृहे गत्वा तस्याश्चुम्बनतत्परः ।
तस्या योनौ मुखं दत्वा तद्रसं विलिहं जपेत् ।।३१४।।
तदन्ते नामसाहस्रं पठेद्भक्तिपरायणः ।
कालिकादर्शनं तस्य भवेदेव त्रियामतः ।।३१५।।
नृत्यपात्रगृहे गत्वा मकारपञ्चकान्वितः ।
प्रसूनमञ्चे संस्थाप्य शक्तिन्यासपरायणः ।।३१६।।
पात्राणां साधनं कृत्वा दिग्वस्त्रान्तां समाचरेत् ।
सम्भाव्य चक्रं तन्मूले तत्र सावरणान् जपेत् ।।३१७।।

शतं भाले शतं केशे शतं सिन्दूरमण्डले ।
शतत्रयं कुचद्वन्द्वे शतं नाभौ महेश्वरि ॥३१८॥
शतं योनौ महेशानि संयोगे च शतत्रयम् ।
जपेत्तत्र महेशानि तदन्ते प्रपठेत् स्तवम् ॥३१९॥
शतावधानो भवति मासमात्रेण साधकः ।
मातङ्गिनीं समानीय किं वा कापालिनीं शिवे ! ॥३२०॥
दन्तमाला जपे कार्या गले धार्या नृमुण्डजा ।
नेत्रपद्मे योनिचक्रं शक्तिचक्रं स्ववक्त्रके ॥३२१॥
कृत्वा जपेन्महेशानि मुण्डयन्त्रं प्रपूजयेत् ।
मुण्डासनस्थितो वीरो मकारपञ्चकान्वितः ॥३२२॥
अन्यामालिङ्ग्य प्रजपेदन्यां सञ्चुम्ब्य वै पठेत् ।
अन्यां सम्पूजयेत्तत्र त्वन्यां सम्मर्द्दयञ्जपेत् ॥३२३॥
अन्ययोनौ शिवं दत्वा पुनः पूर्ववदाचरेत् ।
अवधानसहस्रेषु शक्तिपातशतेषु च ॥३२४॥
राजा भवति देवेशि मासपञ्चकयोगतः ।
यवनीशक्तिमानीय शान[?]शाक्ति परायणम् ॥३२५॥
कुलाचारमतेनैव तस्या योनिं विकासयेत् ।
तत्र जिह्वां प्रदत्वा तु जपेन्नामसहस्रकम् ॥३२६॥
जपकाले तत्र दीपं ज्वाल्य यत्नेन वै जपेत् ।
महाकविवरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥३२७॥
कामार्तो शक्तिमानीय योनौ तु मूलचक्रकम् ।
विलिख्य परमेशानि तत्र मन्त्रं लिखेच्छिवे ॥३२८॥
विना न्यासैर्विना पाठैर्विना ध्यानादिभिः प्रिये ।
चतुर्वेदाधिपो भूत्वा त्रिकालज्ञस्त्रिवर्षतः ॥३२९॥
पठेन्नामसहस्रं यः कालीदर्शनभाग् भवेत् ।
भक्त्या पूज्य कुमारीञ्च वेश्याकुलसमुद्भवाम् ॥३३०॥

यद्यद् दत्तं कुमार्यै तु तदनन्तफलं भवेत् ।
कुमारीपूजनफलं मया वक्तुं न शक्यते ॥३३१॥
वामभागे च संस्थाप्य जपेन्नामसहस्रकम् ।
सर्वसिद्धीश्वरो भूयान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥३३२॥
श्मशानस्थो भवेत् स्वस्थो गलितं चिकुरं चरेत् ।
दिगम्बरः सहस्रञ्च सूर्यपुष्पं समानयेत् ॥३३३॥
ॐ ह्रीं पद्मावति पदं ततस्त्रैलोक्य नाम च ।
वार्तां च कथय द्वन्द्वं स्वाहान्तो मन्त्र ईरितः ॥३३४॥
त्रिवर्षं पठतो देवि लभेद्भोगवतीं कलाम् ।
महाकालेन दष्टोऽपि चितामध्यगतोऽपि वा ॥३३५॥
तस्या दर्शनमात्रेण चिरञ्जीवी नरो भवेत् ।
मृतसञ्जीवनीत्युक्त्वा मृतमुत्थापय द्वयम् ॥३३६॥
स्वाहान्तो मनुराख्यातो मृतसञ्जीवनात्मकः ।
चतुर्वर्षं पठेद्यस्तु स्वप्नसिद्धस्ततो भवेत् ॥३३७॥
ॐ ह्लीं स्वप्नवाराहि कलिस्वप्ने कथयोच्चरेत् ।
अमुकस्याऽमुकं देहि क्लीं स्वाहान्तो मनुर्मतः ॥३३८॥
स्वप्नसिद्धा चतुर्वर्षात्तस्य स्वप्ने सदा स्थिता ।
चतुर्वर्षस्य पाठेन चतुर्वेदाधिपो भवेत् ॥३३९॥
स्वस्मिन् कालीं तु सम्भाव्य पूजयेज्जगदम्बिकाम् ।
त्रैलोक्यविजयी भूयान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥३४०॥
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
रहस्यातिरहस्यञ्च रहस्यातिरहस्यकम् ॥३४१॥
श्लोकार्द्धं पादमात्रं वा पादार्द्धञ्च तदर्द्धकम् ।
नामार्द्धं यः पठेद् देवि ! न वन्ध्यदिवसं न्यसेत् ॥३४२॥
पुस्तकं पूजयेद्भक्त्या त्वरितं फलसिद्धये ।
न च मारीभयं तत्र न चाग्निर्वायुसम्भवम् ॥३४३॥

न भूतादिभयं तत्र सर्वत्र सुखमेधते ।
कुंकुमाऽलक्तकेनैव रोचनाऽगुरुयोगतः ॥३४४॥
भूर्ज्जपत्रे लिखेत् पुस्तं सर्वकामार्थसिद्धये ।
इति गदितमशेषं कालिकावर्णरूपं
पठति यदि [च] भक्त्या सर्वसिद्धीश्वरः स्यात् ।
अभिनवसुखकामः सर्वविद्याभिरामो
भवति सकलसिद्धिः सर्ववीरा समृद्धिः ॥३४५॥
पठेन्नामसहस्रं तु त्रैलोक्यं मारयेद् ध्रुवम् ।
सद्भक्ताय प्रदातव्या विद्याराज्ञि शुभे दिने ॥३४६॥
इति संक्षेपः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

इति श्रीमदादिनाथमहाकालविरचितायां महाकालसंहितायां कालकालीसंवादे सुन्दरीशक्तिदानाख्यं कालीस्वरूप सहस्रनामस्तोत्रं मेधासाम्राज्यप्रदं सम्पूर्णम् ॥

परिशिष्टम् (२)

बीजोद्धारः[1]

महाकाल उवाच

अस्यां हि वक्ष्यमाणायां संहितायां सुरेश्वरि ।
शतानि त्रीणि बीजानां सन्ति षटचधिकानि च ॥१॥
अशीतिश्च शतं कूटा उपकूटाश्च सप्ततिः ।
स्वस्वनाम्नैव विख्याता षट्शती च दशाधिका ॥२॥
तान्युद्धरामि पुरतो यथाग्रे सुगमं भवेत् ।
बीजस्यैकस्य नामानि सन्ति भूयांसि पार्वति ॥३॥
एकैकं कस्यचिन्नाम तत्त्यक्त्वान्यन्न सम्भवेत् ।
तदुद्धारं परिज्ञाय मन्त्रोद्धारं समाचरेत् ॥४॥
बीजोद्धाराख्यपटलं तृतीयं यन्मयोच्यते ।
यस्य कस्यापि नाख्येयमाख्याते ब्रह्महा भवेत् ॥५॥
देवी क्रुद्धा च तं पापं सान्वयं पातयत्यधः ।
न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि ॥६॥
न पश्येन्नोपदिश्याच्च न कुर्यान्नैव साधयेत् ।
गुरूपदेशतो लब्धे जपन्यासार्चनादिके ॥७॥
पश्चात्तत् साधयेत्सर्वं सदा तद्भावभावितः ।
ऊर्ध्वदन्ताधरौ बिन्दुयुतौ प्रणववाग्भवौ ॥८॥
तारवेदादिगायत्रीमुखागमशिरोऽभिधः ।
तत्राद्योऽन्यस्तु चैतन्यमैधसारस्वताह्वयः ॥९॥
एतन्नाम्नापि कूटाः स्युस्तत्र केवलनामतः ।
बीजं कूटोपपदतः कूटं ज्ञेयं तु साधकैः ॥१०॥
सदीर्घेकारसपरः सानलोऽधश्च बिन्दुयुक् ।
मायालज्जाभौवनेशीत्रपाव्रीडाकुलाङ्गनाः ॥११॥

१—ख मातृकातो गृहीतम् ।

लक्ष्मीर्वामाक्षिबिन्दुभ्यां दक्षांसोऽधोऽनलान्वितः ।
कामो वामाक्षिबिन्दुभ्यां युक्तो विधिरधो भुवा ॥१२॥
सबिन्दुर्वदनं पाशः सबिन्दुर्वामदृक्कला ।
अधोरदैरूर्ध्वरदैर्वामाक्ष्णा च समन्वितः ॥१३॥
सबिन्दुः कोऽनलारूढ़ो गारुडाङ्कुशकालिकाः ।
सास्यः सिद्धोऽधनै[रै]र्धर्मो जया मूर्ध्नाऽभिधीयते ॥१४॥
वामश्रुत्या हयग्रीवो गौरी च सविसर्गकः ।
सौष्ठः साध्यो वधूर्वामदृग्बिन्दू सतराः क्रमात् ॥१५॥
वामकर्णाधोरदाभ्यां सबिन्दुभ्यां क्षवर्णकः ।
महाक्रोधक्षेत्रपालौ द्वे बीजे भवतः क्रमात् ॥१६॥
खं तादृशस्वरोपेतं कूर्च्चं प्रासाद इत्यपि ।
बिन्द्वोष्ठयुग्वामपार्श्वमधो रः शाकिनी भवेत् ॥१७॥
ऊर्ध्वदन्तैरधोदन्तैश्चण्डो विश्वः स एव हि ।
तच्चेदारूढवान् हादिर्भूतः किंपुरुषः क्रमात् ॥१८॥
बिन्दुर्हेम्बरमारूढः स च भूमिक्रमाद्युतः ।
मुखैर्वामाक्षिकर्णाभ्यामधरैश्चाप्यधोरदैः ॥१९॥
शंखकुम्भामृतावेशसोमबीजान्यनुक्रमात् ।
तथा विधिर्नदीकामरतिप्राणबलाहकाः ॥२०॥
एवं पाशी त्वष्टृदस्रशक्तिनक्षत्रविद्युतः ।
रेफोर्ध्वं कूर्परो दक्षो बिन्द्वधो रदनाधरैः ॥२१॥
खेचर्य्यनन्तो कूष्माण्डी चामुण्डा कोऽपि तादृशः ।
त्रिशक्तिर्वामकर्णेन त्रिशिखा वामचक्षुषा ॥२२॥
तालव्यवर्गवर्णौ द्वावाद्यौ जाद्विशिखिस्थितम् ।
वामेनाज्ञा दानवः स्याद् योगिनी च सबिन्दुकौ ॥२३॥
तत्तृतीयस्तु कालः स्याद् बिन्दुवामश्रवोऽन्वितः ।
स एव वह्निमारूढ़ो बिन्द्वधस्थः समाश्रितः ॥२४॥

शिरोवदनवामाक्षिश्रवोऽधरचतुर्दशी ।
विषखड्गमतिक्षान्तिमालानीलानि च क्रमात् ॥२५॥
विसर्गाधोरदेनाद्यो हादिर्बीजं हि भैरवी ।
तमारूढो नभः प्रेतः सधरा विन्दुयुक् क्रिया ॥२६॥
हान्तो रमा बिन्दु मूर्ध्नि चाधोदद् वाम च श्रवम् ।
नृसिंहो धनदाऽपि स्यात् सविसर्गो धृतिस्तपः ॥२७॥
वर्गास्त्रयोऽपि तटपाः सद्या[?] बह्निशिरस्थिताः ।
सबिन्दवः सवामाक्षाः क्रमाद्बीजानि षोडश ॥२८॥
कंकालं मानसं शान्तिरुग्रो डामरमेव च ।
नाकुलं चापि कापालं तैजसं वज्रमासुरम् ॥२९॥
भारुण्डा काकिनी नागश्चक्रमौदुम्वरस्तथा ।
कूर्मश्चाधाररौद्राख्यौ मदावधरसंयुतौ ॥३०॥
रेफारूढ़ौ सबिन्दू च भोऽनुस्वारसमन्वितः ।
वामश्रवोऽनलारूढमानन्दः परिकीर्तितः ॥३१॥
मध्यमो बिन्दुवामाक्ष्णा द्रावणः खहुताशयोः ।
नभः सबिन्दु तस्यादिः ससर्गो ब्रह्मसंयुतः ॥३२॥
सबिन्दुरमरः प्रोक्तोधरोपर्यनिलोऽधरैः ।
वामश्रुत्यन्वितौ कण्ठचवर्गतातीर्यपञ्चमौ ॥३३॥
स्यातां सबिन्दू क्रमतो वैश्वदेवश्च घोणकी ।
मूर्द्धन्यस्य च तस्यैव महाडाकिनिर्सिंहकौ ॥३४॥
तयोस्तार्त्तीयकौ वर्णौ शिरोवदनसंयुतौ ।
गणेशाप्सरसौ मेरुसागरौ भवतः क्रमात् ॥३५॥
ह्रस्वास्त्रयः स्वरा आद्या सानुस्वारा वरानने ।
स्थाणुक्षेत्रज्ञनादाख्या विपरीतक्रमेण हि ॥३६॥
वर्णाः कचटताः पञ्च बिन्दुदीर्घस्वरान्विताः ।
शुद्धो यवर्गश्च तथा हकारोऽपि च तादृशः ॥३७॥

रूपं रसस्तथा गन्धः स्पर्शः शब्दश्च लोचनम् ।
जिह्वा घ्राणं तथा त्वक् च श्रोत्रं नामान्यनुक्रमात् ॥३८॥
महाप्राणसमानोदानव्यानापानसंज्ञकाः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥३९॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव महादर्पश्च मातृकाः।
वायुस्तेजो धरा तोयं वियद् बीजानि च प्रिये ॥४०॥
स वामकर्णः सगौरः कुमारः परिपठ्यते ।
तारकं बिन्दुवदनैः शिवा स्याद्बिन्द्वधोदता ॥४१॥
कौलस्तु वामनेत्रेणौष्ठाधरैश्छत्रसंवरौ ।
एवं वायुर्निधिर्जीवो ध्रुवो दृक् शर्वरी ऋतुः ॥४२॥
धरावियज्जलानां च तादृशेन क्रमेण हि ।
अभिधानं यथासंख्यं गुणा निर्ऋतिरव्ययम् ॥४३॥
मेरुरब्ध्या च प्रासादो मनोहर्षसमाधयः ।
ध्यानाधानप्रमादेर्ष्याराविकाराह्वयाः क्रमात् ॥४४॥
सबिन्दू रोपरि वमौ वामश्रुत्यास्यसंयुतौ ।
बीजोपरि सबिन्दू चाधरवामश्रवोऽन्वितौ ॥४५॥
विरिञ्चितापिनीगन्धर्वमङ्गलसमाह्वयाः ।
नभसी स्वा[हा]दिमारूढे वामनेत्रौष्ठसंयुते ॥४६॥
निरञ्जनश्च तत्त्वश्च द्वाभ्यां चैकेन बिन्दुना ।
सविसर्गः स आदित्यो विध्यारूढः स वामदृक् ॥४७॥
सुदर्शनः सबिन्दुः स निर्बिन्दुः सर्गयुग्बला ।
बिन्द्वधोदन्तयुग्यक्षः क्षेत्रपालो धरोपरि ॥४८॥
वायुना वेष्टिता पृथ्वी बिन्दुवामश्रवोयुता ।
त्रिकुटा त्रिपुटा कूर्ध्वं पो दक्षश्रुतिबिन्दुभिः ॥४९॥
इकाराकारसंयुक्तस्तथैकारसमन्वितः ।
फकारो बिन्दुना युक्तः ज्ञानेच्छासंविदः क्रमात् ॥५०॥

वरुणो नाकुलारूढ़ोऽनुस्वारोऽधरसंयुतः ।
भश्च वायुरधोदन्तैर्मित्र आङ्गिरसस्तथा ॥५१॥
आधारोऽधरहीनश्च द्वामश्रुत्या रथन्तरः ।
तेनैवोनश्च गन्धर्वो वामाक्षणा बृहदुच्यते ॥५२॥
रौद्रोऽप्याधारवज्ज्येष्ठस्तदूनोऽधोदताऽध्वरः ।
मन्थानो वामनेत्रेण सनादो विधिरप्सु च ॥५३॥
वर्गस्य सप्तमस्याद्यो नादाधस्ताद् धरोपरि ।
दीर्घस्वरैर्मणिर्नित्यो वृषः पुष्टिश्च कौमुदी ॥५४॥
जश्च तादृक् ससर्गश्च षष्ठो वामश्रवोऽन्वितः ।
श्रेष्ठं पौष्पं निर्मलञ्च कुलं चित्रञ्च मण्डलम् ॥५५॥
एवं वियत् क्षितेरूर्ध्वं स्थितिश्चाप्यनलोपरि ।
सूक्ष्मा प्रभा सुप्रभा च विशुद्धिर्नन्दिनी स्मृतिः ॥५६॥
कीर्तिऋ[सि[द्धिर्विभूतिश्च दीप्ता सृष्टिश्च सन्ततिः ।
स आरूढ़ो वामपार्श्वो नादवामश्रवोऽनिलैः ॥५७॥
पूतना शंखिनी शीर्षं वामश्रुत्या जलं क्वधः ।
प्रेतः सौष्ठः कलङ्कं स्यात् खेटः संख्या सकानिला ॥५८॥
वामाक्षिशिरसा भूमौ वामपार्श्वो विहङ्गमः ।
सना वामदृशा शंखिन्येव मानवमुच्यते ॥५९॥
योगिनी कमला स्त्री च स्वस्वस्वरविवर्जिता ।
सर्वैर्दीर्घैरखण्डैर्युग् विन्दुसर्गैरपि क्रमात् ॥६०॥
निद्रा पूर्णा तीक्ष्णधूमौ जयन्ती ललितारुणा ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च कैकरं भ्रमरं तथा ॥६१॥
सूची प्रचण्डो वैराजः सन्ध्या विद्या विभा विराट् ।
सावित्री फैरवः स्वापः कुमार्योजोऽपराजिता ॥६२॥
वामाङ्घ्र्यंगुल्यग्रगं को दहनोर्ध्वं च फौ पथौ ।
क्षः शुद्धो बिन्दुदीर्घाभ्यां केशः शिक्षा सती मधु ॥६३॥

ताण्डवं जगती नन्दा जटा हैमश्च वैमलम् ।
केशरः काकिनी नेमिश्छन्दो विश्वस्तथैव च ॥६४॥
मन्त्रावली च भारुण्डा तन्त्रो वर्णश्च संपुटा ।
त्रिवृत् कापालगोकर्णे सुरभी रौरवं तथा ॥६५॥
पूरकः कुम्भकश्चैव महाक्रोधश्च रेचकः ।
क्षेत्रपालश्च देवेशि त्रिंशद् बीजान्यनुक्रमात् ॥६६॥
रेफोर्ध्वं तादृशौ ह्क्षौ तथोरोर्ध्वं सतादृशौ ।
दण्डलज्जागोंऽशुशुक्लकल्पमुक्तामहाक्रमाः ॥६७॥
नृसिंहवेणुसान्वक्षमौञ्जीसूत्रायमेखलाः ।
कुण्डो गर्भश्च दीपश्च क्रमाद् बीजानि विंशतिः ॥६८॥
लक्ष्मी काली शाकिनी च बुद्धिर्भारुण्डमानसौ ।
त्रिशिखा योगिनी नन्दा कापालं काकिनी पविः ॥६९॥
उद्वहन्त्योऽनलं मूर्ध्नी वर्णाः स्युर्द्वादशापरे ।
इष्टिर्वेदी दक्षिणा च तुङ्गमन्दारसेतवः ॥७०॥
तथा चूडामणिावली भ्रूशिखाजम्भपंक्तयः ।
डाकिनी स्यात् समारूढः शाकिनी दक्षकूर्परः ॥७१॥
ता इमान्ता खतदादी चेत् फेत्कारी प्रलयस्तथा ।
मध्ये चूडामणेर्वाममणिबन्धस्तु हारकः ॥७२॥
सानो मध्ये कर्णिकाक्षोऽक्षमध्ये स च शृङ्खला ।
फेत्कार्येवाधराऽधोदद् वामकर्णेक्षणाननैः ॥७३॥
त्रेताकृत्यासृष्टिभोगानाहताख्याः क्रमाद् भवेत् ।
दक्षकर्णेक्षणाभ्यां च कोशः पिण्डश्च जायते ॥७४॥
महाक्रोध धरा तां खं वामपर्श्वश्च तानपि ।
तं हादिश्च क्रमारूढा बीजवर्णा वरानने ॥७५॥
भ्रूणज्याशङ्कुवेतालाः क्रमशः परिकीर्तिताः ।
वैहङ्गमाख्यं यद्बीजं पञ्च दीर्घस्वरान्वितम् ॥७६॥

समारूढोऽनलस्तस्मात् पञ्च बीजान्यनुक्रमात् ।
कोटिघण्टा पिञ्जला च चिता ध्वज इति क्रमात् ॥७७॥
गणेशहादिमौ वर्णौ दहनोर्ध्वमवस्थितौ ।
पञ्चदीर्घस्वरोपेतौ बीजानि स्युर्दशैव हि ॥७८॥
कबन्धक्रकचारिष्टश्मशानशवसौकला: ।
टङ्कन्यासर्षभाद्वैताः शिरःसु शिरसान्विताः ॥७९॥
तापिनी वह्निनिर्मुक्ता भुवा युक्ता च सुन्दरि ।
शिरः पञ्च स्वरोपेताः भस्तयोरूपरीदृशः ॥८०॥
ईहा क्षुधा च सन्तानो मोक्षनिर्माणकारेका: ।
वक्त्रानन्दप्रतापाश्च शौण्डोद्धारपरन्तपा: ॥८१॥
आज्ञोदारपिनाकाश्च भवन्ति क्रमशः प्रिये ।
दक्षकूर्पर आरूढो वापपार्श्वं स चेत् क्रमात् ॥८२॥
निद्रां च योगिनीं पूर्णां तीक्ष्णां धूमं जयन्तिकाम् ।
ललितामरुणां चेति क्रमादष्टौ भवत्यमी ॥८३॥
डमरुश्चैव नाराचः शूलभल्लार्धचन्द्रकाः ।
वत्सदन्तः क्षुरप्रश्च गोस्तनश्चेति पार्वति ॥८४॥
एवमग्निः क्षेत्रपालं स चारूढः क्रमादिमान् ।
विभा स्त्री राजसावित्री फैरवं स्वापमेव च ॥८५॥
कुमारीमोज इत्येते तावन्तः स्युर्न संशयः ।
संदंशकश्च नालीको भुशुण्डी परिघो गदा ॥८६॥
शस्त्रशक्तिसमायुक्तास्तोमरप्रासपट्टिशाः ।
विधिर्वियद् वियद् भूमिं भूमिश्चापि वरानने ॥८७॥
प्रतिष्ठां कमलां चैव कैकरं भ्रमरं तथा ।
शूचीप्रचण्डवैराजं सन्ध्यां विद्यां च रोहति ॥८८॥
भिन्दिपालश्च कुण्डश्च सारिघमुसलर्ष्टयः ।
तुला कुन्तश्च पर्शुश्च मुद्गरश्चेति ते नव ॥८९॥

तापिन्यौदुम्बराधाराः शिरसानलधारिणः ।
कुठारकर्तृकं खड्गस्त्रीणि बीजान्यनुक्रमात् ॥९०॥
एवं शतत्रयं प्रोक्तं बीजानां षष्टिसंयुतम् ।
अथ त्वमुपबीजानि निशामय सुरेश्वरि ॥९१॥
द्वयोस्त्रयाणां न हलां संयोगो यत्र जायते ।
एक एकस्वरोपेतो बिन्दुना सर्वदान्वितः ॥९२॥
न कदापि विसर्गेण उपबीजं तदुच्यते ।
स्वरैर्ह्रस्वैस्तथा दीर्घैरखण्डैः शिरसान्विताः ॥९३॥
स्वराश्चैवं स्वरादीनि नामानि स्युः सुरेश्वरि ।
पाशक्षेत्रकलास्थाणुसर्वउद्धर्षवाग्भवाः ॥९४॥
प्रणवाश्वत्थनादाख्याः स्वराणामभिधेदृशी ।
रूपेराप्सरसद्वेषलौल्यचक्षुरुषोऽञ्जनम् ॥९५॥
सुखदुःखमहाप्राणायुःसागरलयाक्षयाः ।
नागत्वगस्रमांसास्थिपुरुषेच्छेन्द्रियार्हरुट् ॥९६॥
जीवतारकसत्वाधानग्लानीर्ष्याश्रमाध्वकाः ।
पुरूकश्चेति संज्ञा स्याद् वक्त्राढचानां हलां प्रिये ॥९७॥
रेतो मेदो मज्जनर्मा[नं मां]धर्मदर्शनभावनाः ।
रचनादानगमनविसर्गक्षान्तिज्ञप्तयः ॥९८॥
चिन्ताविसर्गवाग्घ्राणस्पर्शस्नुगृर[स]नाङ्घ्रयः ।
ज्ञानपाणिभयोपस्थलोभमानमदोर्मयः ॥९९॥
नाशगर्वक्रूरमूर्च्छावज्ञा तार्त्तीयकस्वरैः ।
रसो मोहश्च मात्सर्यं स्वप्नालस्ये च जिह्विका ॥१००॥
तृष्णाशङ्काघृणादैन्यसमानश्वासगुप्तयः ।
सुषुप्त्यसूयाकूर्मेति रोगविश्वासप्रश्रयाः ॥१०१॥
प्रकृतिश्चापि निर्वेदः कषायारोहधारणाः ।
दिक्कोलतमईर्ष्याधूरूहार्थमनसङ्क्रमात् ॥१०२॥

कुम्भकश्चेति वामाक्ष्णा युतानामभिधा हलाम् ।
विषादश्च प्रमादश्च परमः सहजस्तथा ॥१०३॥
व्यानन्दधीरयोगासंभोगवात्सल्यदुर्मदाः ।
वितर्ककपटभ्रान्तिप्रवेशाश्चापलं तथा ॥१०४॥
आशानुतापसंहर्षसगीहासमतानता[?] ।
आवेगश्च प्रकाशश्च जडतान्तर्द्धिरौत्सुकम् ॥१०५॥
दम्भोग्रव्याधिबोधाख्याश्चाकारस्नेहसंभ्रमाः ।
विकल्पश्चेति नामानि दक्षश्रुत्या जुषां हलाम् ॥१०६॥
गन्धाधारावैश्वदेवः प्रवाहो घोणकी तथा ।
घ्राणापराधकालाश्च मर्यादापरितापकाः ॥१०७॥
उदानालम्भसन्तोषास्तथा गाम्भीर्यसिंहकौ ।
कृकरो द्रोहवैराग्यपरिक्रमसहायकाः ॥१०८॥
महत्तत्त्वं संसदश्च कृपासृष्टिमृतिक्षतम् ।
खेदारतिजुगुप्सार्त्तिचर्चिकारऋतम्भराः ॥१०९॥
तथा क्रोधमहाक्रोधौ वामश्रुत्या हलामपि ।
विवेकद्रोहमौनानि श्रुक्विखेदव्यतिक्रमाः ॥११०॥
श्रद्धातुष्टचपराधाश्च कृपालंभाक्षमार्जवम् ।
स्थैर्यवैराग्यसंमानहास्यरोमाञ्चबुद्बुदाः ॥१११॥
जुगुप्साश्रुदयानीतिकक्षाकौटिल्यनिष्ठुराः ।
वृत्तिप्रगाढदिष्टच्चैष्टचै प्रभावाशोकनिर्भयाः ॥११२॥
इत्योष्ठपरिनिष्ठानामभिधानं हलां प्रिये ।
स्पर्शः षडजर्षभो भेरी गान्धारत्वङ्निषादकाः ॥११३॥
मध्यमः पञ्चमश्चापि धैवतं व्यान एव च ।
उद्गीथहायिहवापि [?] हिङ्कारो देवदत्तकः ॥११४॥
स्तोभहुङ्कारभीमा च नाराशंसोऽप्यहङ्कृतिः ।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या ऋतुः संवरकोऽव्ययः ॥११५॥

विकारशिक्षे कल्पाङ्गे समाधी रेचकस्तथा ।
अधरेण जुषां संज्ञा हलां देवि मयेरिता ॥११६॥
होता च मैत्रावरुणस्तथा छावाक एव च ।
ग्रावस्तृडध्वर्युरपि प्रतिप्रष्ठातृकस्तथा ॥११७॥
नेष्टोऽन्वेता तथोद्‌गाता प्रस्तोता प्रतिहर्तृकः ।
सुब्रह्मण्यस्तथा ब्रह्मा ब्रह्मणच्छंसिकस्तथा ॥११८॥
आग्नीध्रश्चापि षोता [?] संवेदिकुण्डे मखो वृतिः ।
गार्हस्पत्यो दक्षिणाग्निस्तथा चाहवनीयकः ॥११९॥
त्रेता तर्मारणिः सामिधेनी रूरु उदूषलम् ।
जुहू ध्रुवा श्रुवा श्रुक् च तथा चावभृथस्तथा ॥१२०॥
ऊर्ध्वदन्तान्विता संज्ञा क्रमेण परिकीर्तिता ।
शब्दो याजः प्रयाजश्चानुयाजश्च वियाजकः ॥१२१॥
श्रोत्रसंयाजनो वाक् शुक्रमन्थिन एव च ।
अपानब्रह्मपाकाज्यसोमसंस्था यथाक्रमम् ॥१२२॥
धनञ्जयस्थानिसंस्थारश्मिदाभ्याश्विनाः क्रमात् ।
तन्मन्त्रचमसस्फ्याश्च तथानार्यसमूह्यकौ ॥१२३॥
ध्रुवः शिवो रजश्चैव प्रमोदार्चा स्वधा वषट् ।
प्रासादक्षेत्रपालौ चेत्यधोदन्तान्विताः हलः ॥१२४॥
कर्णपः कौरजश्चैव गणेशः कर्तरी तथा ।
शतघ्नी शीर्षकः शल्यं शङ्कुर्निशठ एव च ॥१२५॥
हेतिः कीलोऽस्थिभेदी च वैतस्तिककटंकटौ ।
रज्जुरुन्माथसंमाथौ क्षेपणी मुष्टिकोऽरुणी ॥१२६॥
छुरिकादिग्धसंवर्गा हली पाली कुणी फली ।
तर्जनीधूमलावेधीदुरीदर्वीगुडद्रुमाः ॥१२७॥
समन्विता तु शिरसा संज्ञा प्रोक्तेदृशी हलाम् ।
इति बीजोपबीजानां नामानि कथितानि ते ॥१२८॥

अथो वदामि देवेशि कुटानामुद्धृतिं पराम् ।
येषां स्मरणमात्रेण बाजिमेधफलं भवेत् ।।१२९।।
त्रिपुरघ्नस्तु यां संज्ञां चक्रे सौगम्यहेतवे ।
ब्रवोमि तामेवादौ ते वेत्स्यसि त्वं ततोऽखिलम् ।।१३०।।
तत्तच्छब्दैर्भवेत्तत्तदादिवर्णस्य संग्रहः ।
द्वयोस्त्रयाणां वर्णानां भिन्नभिन्नाभिधा भवेत् ।।१३१।।
तत्तन्नाम्ना तदुद्धारः कर्तव्यः संहिताविदा ।
स्वरबिन्दुविसर्गाणां तत्र तत्रैव कीर्तनम् ।।१३२।।
करः कायः खरः खर्वो गजो गर्वो घटो घनः ।
चरश्चारश्छलं छद्भ जलं जाती झरो झषः ।।१३३।।
टंकष्टीका ठलष्ठीला डिमो डिम्बो ढको ढकी ।
तरुस्तर्म थलं थाली दलं दानं धरा ध्रः ।।१३४।।
नरो नारी पटुः पर्व फलं फाण्टं बरो बलम् ।
भवो भालं मनो माया यतिर्यागो रवो रणः ।।१३५।।
लयो लीला शठः शर्म षण्डः षष्ठः समः सदः ।
हरो हारः क्षमा क्षीरं त्रिंशदेताः प्रकीर्तिताः ।।१३६।।
पञ्चानामपि वर्गाणामाद्यवर्णास्त्रयः क्रमात् ।
पञ्चमः पञ्चमस्यापि रसहक्षाश्च भूपरि ।।१३७।।
रम्भा भावो वृषो हूति सुधा शाखा यमो नयः ।
हयो जरा जनो वातः शमः शुण्डा ह्रदः स्वनः ।।१३८।।
ध्रुवः शोभा हरिर्वीणा तेषां नामान्यनुक्रमात् ।
त एवार्णाः शेषवर्णे विश्वगर्तपुटद्रवाः ।।१३९।।
सिन्धुवेणीकुटीजायाध्वानवीचीहठश्रमाः ।
जालशालाग्रहग्राहमठपाठशठभ्रमाः ।।१४०।।
मुक्त्वा नभस्तयोर्मध्ये नभस्यैव प्रवेशिते ।
सलकारे भवेयुस्तेऽप्यू[न]विंशतिसंख्यकाः ।।१४१।।

सौधभद्रगिरिश्रेणीशृङ्गपुष्पविषच्छदाः ।
देवदोलाफणप्रीतिचित्रशङ्खशरप्रपाः ॥१४२॥
हेमरत्नमणीनां ते नाम्ना स्युः परमेश्वरी ।
जलानलानिलाः शूरो विपरीतो भटस्तथा ॥१४३॥
धरातोयानलामूर्वी विपरीतः स हि व्रतम् ।
फसहाबभकादन्या रेफारूढा हिमं पयः ॥१४४॥
शुभं नन्दा यशो रागः कान्तिः सेना सुखं क्रमात् ।
सरकछाहक्षपाधस्ताद् वकक्षा नवमोपरि ॥१४५॥
दर्भपूरगर्भफेरुतृषाजातिरिति प्रिये ।
दर्भः प्रूढः स्वनो वर्या नरो वामश्रुति स्वकम् ॥१४६॥
शाम्भवं समवृष्यौ च क्षमा माया हरोक्षके ।
एतत्पाशुपतं कूटं तृषा लीला शुभं भरः ॥१४७॥
कायः शुभं नरः साम्यं रम्भा वामेक्षणा शिरः ।
माहेश्वरं क्षीरमनोह्लदा हारः करो यतिः ॥१४८॥
अपारूढस्तत्पुरुषो रवोजातिहरो लयः ।
क्षमा मनो वामकर्णैर्वामदेवः शिरोऽन्वितः ॥१४९॥
हारो रम्भा शुभं वर्यं डिमः कायः खरोऽधरः ।
सद्योजातः सबिन्दुः स्यात् करसाम्यवरा हरिः ॥१५०॥
क्षीरं मायाधोरदनैरघोरः शिरसान्वितः ।
नन्दाकरस्वनह्लादरम्भावामश्रुतीन्दुभिः ॥१५१॥
ईशानो व्योमकूटं तु वीणाशुभयुतं मनः ।
शूरो वामश्रवः शीर्षैः शुभं लीला क्षमा मनः ॥१५२॥
हारोन्यास्य रोदसी स्याल्लयः क्षीरमनःशुभम् ।
निर्वामदृक्हारबीजं शूरयुक् शाङ्करं भवेत् ॥१५३॥
क्षमामायारम्भशुभहरासाम्यञ्च शूरयुक् ।
भैरवी वामकर्णेन्दुयुक् कूटं तद्भवेत् प्रिये ॥१५४॥

त्रैपुरं तु ह्रदे क्षीरमनः कायः शुभं तथा ।
शूरो वामेक्षणं बिन्दुशुभलीलासदोहराः ॥१५५॥
करमानक्षमानन्दा सौष्ठः मृत्युञ्जयः सकाः ।
रम्भा क्षमामदोहारामनःशूरा सबिन्दवः ॥१५६॥
सवामकर्णः श्रीकण्ठः सदोहरनयक्षमाः ।
शुभं मायां त्रिशाखायां रौद्रं कूटं परापरम् ॥१५७॥
हरशोभाक्षमाकायामनःशुभविरिंचयः ।
लयक्षमाशुभंनायाकरसाम्यहरा अपि ॥१५८॥
शूरो वामश्रवः शीर्षैश्चिन्तामणिरुदीरितः ।
वधूलीलाग्राहकायशूरास्तूर्व्यं प्रकीर्तितम् ॥१५९॥
दर्भलीलाकायशुभधनदानन्दमुच्यते ।
लीलाशुभकरग्राहदर्भशूराः सबिन्दवः ॥१६०॥
सौष्ठा मार्तण्ड उदितो स्वनक्षीरकराः सदः ।
हरो गवि स्याद्वाराहो नारसिंहः समा स्वनः ॥१६१॥
नन्दा सदोहारटंका दर्भः क्षीरं सरम्भकम् ।
माया शुभं शूर ओष्ठ सबिन्दु लिङ्ग उच्यते ॥१६२॥
खरफाण्टसमाज्यायां भार्गवः समुदाहृतः ।
हरिक्षमाकरामानशुभसाम्ये च शूरकः ॥१६३॥
शीर्षवामश्रुतियुतो वैहायसमुदाहृतम् ।
क्षीरस्वनकरादर्भ रवयागविरिंचयः ॥१६४॥
वायवीयं मठः स्वानः शुभं कायः सदश्छलम् ।
शूरो वामाश्रुकाग्नेयं ह्रदक्षामसदोमनः ॥१६५॥
करः शुभं यशःशूरो वारुणं वामकर्णकैः ।
दर्भो वीणामायशुभं क्षमाबीजे तु हंसकः ॥१६६॥
मायाशुभं तथा वीणा शूरो वामश्रुतीन्दुयुक् ।
डाकिनी रवजाती च क्षमामाया ह्रदा गवि ॥१६७॥

तार्त्तीयकं चन्द्रकूटं सदः करशुभं लयः ।
ग्राहः खर्वो विरिञ्चिः स्यात्तारं तारशुभक्षमाः ॥१६८॥
स्वनश्छद्धू तथा शूरः सवामश्रुतिशीर्षकम् ।
वृषः शाला हिमं मुक्ता वैष्णवं कूटमुच्यते ॥१६९॥
त्रैविक्रमं सौधसुधारागजात्यधरैः सकैः ।
पराकूटं तु विज्ञेयं दर्भरम्भे त्रपोपरि ॥१७०॥
भोगो चलरणौ वीणा हारमाया गवि स्थिता ।
सदो वीणा हरमनो विरञ्चिः सानिलः कला ॥१७१॥
वीणा शुभं सदो हारो हयग्रीवो सवामदृक्
स्वायंभुवमहाकूटं शुभं लीला क्षमा कराः ॥१७२॥
मनो विरिञ्चेरुपरि याम्यं हि परिचक्ष्यते ।
रम्भा क्षीरं शुभं नन्दा मनो यतिशिरोऽन्वितः ॥१७३॥
सवामकर्णं ब्राह्मं स्याच्चत्वारो भार्गवाद्यगाः ।
वीणाविरिंचिसौपर्णं सदोहरकरभ्रमाः ॥१७४॥
शुभं माया शूरवामकर्णेन्दुर्गुह्यको भवेत् ।
शुभग्राहौ तथा नन्दा लयः खर्वो हिमं शिरः ॥१७५॥
वामश्रुत्या नैर्ऋतं स्यात् प्रपञ्चो जायते तदा ।
खर्वं शुण्डा क्षीरशुभमायाहारकरास्तथा ॥१७६॥
सर्वे विरिञ्चिमारूढा योगो भद्रतृषे मणौ ।
मठलीलाशुभं मायासदोहरकरास्तथा ॥१७७॥
विरिञ्चिविहितावासा भवेदैन्द्रं महाफलम् ।
गिरिपूरयमक्षीरमन्दारे पिङ्गला भवेत् ॥१७८॥
विषकान्तिहयाजम्भे नादाख्यमभिधीयते ।
हेमफाण्टं लयादम्भो वज्रो वामदृगिन्दुना ॥१७९॥
हरसाम्यकराहारलयौ लज्जासु चिद्भवेत् ।
दोलातृषाजराकामे धरा जीवः शरो ध्वजे ॥१८०॥

श्रेणीयमौ सृष्टिमूर्ध्नि मानवं परिपठ्यते ।
भावः शुभं फेरुपुटौ वलौ सिद्धमुदीरितम् ।।१८१।।
टंकक्षीरसदासेना निर्वाणे नाभसं भवेत् ।
नारीश्रमकुटीशूरा वामाक्षिश्रुतिबिन्दुभिः ।।१८२।।
आदित्यं वासवं शृङ्गं लयक्षीरहिमं वृषे ।
करमायाहरिश्रेण्यस्तुङ्गैः पैशाचमुच्यते ।।१८३।।
आद्याः परार्णाश्चत्वारस्तात्तीर्थं शिरसि स्थिताः ।
शक्तिर्भ्करसदः खर्वसुखं मायेन्दुवामश्रुक् ।।१८४।।
सृष्टिर्मठः खररवौ त्रिशक्तौ तु स्थितिर्भवेत् ।
दर्भः क्षीरस्वनौ शूरः संहारो वामकर्णकैः ।।१८५।।
आद्यार्णयोर्वैपरीत्ये प्रोच्यतेऽनाख्यया स हि ।
समोने सरवे तस्यां भासा भवति भामिनि ।।१८६।।
अनाख्याभासयोरैक्ये निर्वाणमभिधीयते ।
वैपरीत्ये तयोरेव महानिर्वाणमित्यपि ।।१८७।।
अवामकर्णाः सप्तैते सवामाक्षा वरानने ।
भवन्ति कूटाः सप्तान्ये पौरुषानन्तपुष्कराः।।१८८।।
हैरण्यगर्भः सत्त्वं च रजस्तम इति क्रमात् ।
पुनरन्ये भवेयुस्ते सप्तान्ये द्विस्वरान्विताः ।।१८९।।
मूलाधारः कुण्डलिनी स्वाधिष्ठानं तथैव च ।
मणिपूरकानाहते च विशुद्धाज्ञे क्रमादिमाः ।।१९०।।
करष्टंकस्तरुर्यागः शर्म वामदृगिन्दुभिः ।
स्वनशूरशिरःसंस्था प्राणफैरवनैगमाः ।।१९१।।
सुषुम्नेडे क्रमात् पञ्च कूटानि स्युः सुरेश्वरि ।
तयोरूर्ध्वं मकारश्चेत् ताण्डवं समुदीरयेत् ।।१९२।।
स्थायिनौ वरहारौ चेत् स्वनशूरोपरि प्रिये ।
वामकर्णेन्दुसंयुक्तौ पद्मभौमौ यथाक्रमम् ।।१९३।।

इमावेव सवामाक्षौ वीरकापिलनामकौ ।
वाशिष्ठो वामदृग्बिन्दुभद्रमायारवह्लदैः ॥१९४॥
खर्वो मणिस्तथा नन्दा लयो वामदृगिन्दुभिः ।
स्वप्नाव्रती गर्तमनोह्लदवामाक्षिमस्तकैः ॥१९५॥
वैकारिकं खर्वमायाहारपाठवरर्द्धिभिः ।
उग्रं शुभभ्रमौ शूरे कवामश्रुति वारुणम् ॥१९६॥
दर्भः करः शुभं लीला बृहल्लज्जोपरि स्थिता ।
सदो रम्भा शुभकरास्तत्रैव च रथन्तरम् ॥१९७॥
तस्मिन्नेव सदो रम्भे ज्येष्ठमित्यभिधीयते ।
दूती रागफणा तत्र प्रोच्यते महदाख्यया ॥१९८॥
पुष्पगर्भसुखं भोगो गुह्या कूटमुदीर्यते ।
भावभ्रमभटा भल्ले वृषविश्वौ विशुद्धिषु ॥१९९॥
नयनन्दे च नाराचे सिन्धुसौधौ च संपुटे ।
ऋग्यजुःसामाथर्वाण इत्येते परिकीर्तिताः ॥२००॥
जालो मौर्वी यशोनेमौ प्राजापत्यमुदीर्यते ।
तथा चाङ्गिरसं वामकर्णबिन्दुशरव्रते ॥२०१॥
धौमावत्यं हिमं वीचो प्रपाहारौ फणं गवि ।
ज्योतिर्मयं देवहूती कान्तिर्जातौ शिरोधरैः ॥२०२॥
रत्नश्रेणी पुष्पवेणी माला मूर्ध्नि प्रभा मता ।
जरा छन्द फणप्रीतिरग्निष्टोमोऽप्यनाहते ॥२०३॥
ज्योतिष्टोमस्तु निर्दिष्टः शङ्कौ पुटविषद्रवाः ।
अत्यग्निष्टोम उद्दिष्टः फेत्कार्यां चित्रशर्मणी ॥२०४॥
वातध्वानं श्वतं पिण्डे वाजपेयं प्रकीर्तितम् ।
शुण्डा क्षीरं शुभं दर्भः शूरो वामश्रुतीन्दुयुक् ॥२०५॥
पुण्डरीको ग्राहरागदर्भाः शूले च षोडशी ।
वृषो मठो हिमं थाली वेद्यां सौत्रामणी भवेत् ॥२०६॥

शुभशोभादर्भकरा अश्वमेधस्त्रपोपरि ।
चित्रजातियशोहारा राजसूयो जटोपरि ॥२०७॥
श्रमः करशुभं दर्भो यशश्च स्विष्टकृत् क्षते ।
दर्भजातिशुभं क्षीरं स्याच्चेदमृतकुम्भयोः ॥२०८॥
भवेतां ते क्रमेणैव गोशवश्च महाव्रतम् ।
कामे वज्रसुवर्णं स्यान्मनः शुभहरा यदि ॥२०९॥
विश्वजित् क्षेत्रपाले स्यात् श्रमवीणाहिमद्रवैः ।
ब्रह्मयज्ञः स उद्दिष्टः काल्यां करशुभग्रहाः ॥२१०॥
मनः शुभश्रमदर्भलयाश्चेत् स्युः क्रमेण हि ।
प्रतिष्ठाश्रीकैकरेषु शूच्यां वैराजके तथा ॥२११॥
अश्वो रथस्तथा विष्णुः सूर्यो गज इति क्रमात् ।
कान्तोपरि सनामानः कूटाः स्युस्ते सुरेश्वरि ॥२१२॥
दर्भो हिमं सदो रम्भा शुभं बिन्दूर्ध्वदन्तकैः ।
वलभिन्नागयज्ञस्तु क्षुरप्रे ध्रुवशङ्खकैः ॥२१३॥
हेमकायौ हरिशुभं सावित्रीयोगिनीषु हि ।
रवोने ससमेऽप्यर्द्धसावित्री तत्र जायते ॥२१४॥
वृषजातिशुभश्रेण्यः सर्वतोभद्र आयके ।
नालीकभौशुण्डिगदाप्राशे स्वनकरौ शुभम् ॥२१५॥
आदित्यगोसर्पकोण्डपा आमयसमन्विताः ।
नागेऽग्निचिद्धेमहरी द्वादशाहो मणिस्वनौ ॥२१६॥
उपांशुरत्नरम्भाभ्यां दीक्षा सोमः प्रपावृषैः ।
अश्वप्रतिग्रहो बर्हिरथोऽभ्युदयसंज्ञकः ॥२१७॥
सर्वस्वदक्षिणाश्चापि कामो नागस्थले यदि ।
हेमरम्भादर्भहिमैः सर्वदीर्घेन्दुसंयुतैः ॥२१८॥
गोमेधनरमेधैडाः स्वाहाकारस्तनूनपात् ।
गोदोहेषुसमित्सेना नवकूटा यथाक्रमम् ॥२१९॥

मणिर्जातिशुभं वीणा दीर्घैः[च] सेन्दुवर्जितैः ।
वज्रकंकश्च दर्शश्च पौर्णमासस्तथैव च ॥२२०॥
नद्यावर्तः सौभरश्च प्रिये सौभाग्यकृत्तथा ।
कावेरीचयने स्यातां जातिदेवौ क्षुधेहयोः ॥२२१॥
भ्रममायाशुभं कुण्डे वैनतेय उदाहृतः ।
मायाशुभे शिरःसंस्थे यशःशक्ती पदस्थिते ॥२२२॥
मध्ये वीणा ब्रह्मसवः शुण्डा त्रैलोक्यमोहनः ।
आद्यन्तयो रत्नजाया मध्ये नन्दा हि संमुखम् ॥२२३॥
वक्त्रवामेक्षणश्रोत्रबिन्दुभिः समलङ्कृता ।
शङ्खचूडागजच्छायः कन्दर्पत्रलशातनः ॥२२४॥
रम्भाजातिफलं हारो भैरव्युपरि भैरवः ।
कायो हरिशिरः संस्थस्तौ शुभोपरि संस्थितौ ॥२२५॥
तौ खेचरीमहारूढौ कामदो विष्णुविक्रमः ।
वीणास्वनोपरिगते क्रमशो मणिहेमनौ ॥२२६॥
अष्टाकपालोऽवभृथः क्रमशो मेघविद्युतोः ।
दर्भस्वनक्षीरशुभं परन्तपपिनाकयोः ॥२२७॥
सर्पसत्रं दीर्घसत्रं क्रमेणैव सुरेश्वरि ।
दर्भो हिमं कायहरो शुभं रत्नहलः स्त्रियाम् ॥२२८॥
इत्यशीतिः शतं कूटाः मया देवि तवोदिताः ।
अथ त्वमुपकूटानामुद्धारं शृणु यत्नतः ॥२२९॥
कूटानामेव या संज्ञा सैव संज्ञात्र गृह्यते ।
नैषां कश्चिन्निश्चयोऽस्ति स्वराणां वा हलामपि ॥२३०॥
पुरारिणा समुद्दिष्टा उपकूटास्तदाख्यया ।
दिव्यास्त्राणामाख्ययैव तेषामाख्या भवेत् प्रिये ॥२३१॥
प्रणवो निःस्वरा लक्ष्मीरोष्ठः कामार्णकं तथा ।
नारायणास्त्रमित्युक्तं ब्राह्मं वीणास्यशुण्डकैः ॥२३२॥

दर्भभ्रमौष्ठेन्दुभिर्हि शाङ्करी शाङ्करं च तत् ।
शुभजातिलयैर्वामदृगिन्दुर्वैष्णवं भवेत् ॥२३३॥
प्राजापत्यास्त्रमुद्दिष्टं हरिर्हिमकरत्रपाः ।
डिम्बो रवो बलं लीला करः साम्यं हरो यतिः ॥२३४॥
स्वननागशिरःसंस्थाः कौवेराग्नेयकम्पनाः ।
ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्यकालाः क्रमादिमे ॥२३५॥
हेमरत्नमणीनां चेदधो हिमशुभं यशः ।
वामकर्णेन्दुसंयुक्तं भौतं पार्जन्यविद्युतः ॥२३६॥
शुभक्षीरस्वनाधस्तात् क्षतोपरि यदा स्थिताः ।
हिमं पयः शुभं नन्दा यशो रागः सुखं तथा ॥२३७॥
नागपार्वतपाषाणसौपर्णत्वाष्ट्रतामसाः ।
तैमिरश्च क्रमेणैवोपकूटाः सप्त पार्वति ॥२३८॥
उपरिष्टान्मठं दत्वा स्वनं कृत्वा तथा ह्यधः ।
तेऽर्णा मध्ये तथा भ्रध्रौ वामकर्णेन्दुसंयुताः ॥२३९॥
मातङ्गजम्भकैषीकचक्रौदुम्बरदानवाः ।
गान्धर्वश्चेति पैशाचो जृम्भनश्चेति ते नव ॥२४०॥
रवः सदः खर्वसुखं मृतौ प्रस्वापनं भवेत् ।
स्वनरम्भाह्लदवृषोहरिशुण्डोर्ध्वगाः क्षमाः ॥२४१॥
वामनेत्रेन्दुना षट् स्युर्वामश्रुत्या परे च षट् ।
हैमनं राक्षसं शौरं गुह्यभारुण्डशाबराः ॥२४२॥
कालकूटं ब्रह्मशिरो वेतालः शारभस्तथा ।
राजसश्च तथा चार्क्षो द्वादश स्युरिमे क्रमात् ॥२४३॥
खर्वमायात्रपास्कान्दः प्रथमः क्षीरलज्जयोः ।
वैनायकः सयाक० [?] गणोरवहिमे तपः ॥२४४॥
सदः खरः शुभं मूर्ध्नि भवेज्जातिरधो यदि ।
कालीनदीकुम्भलज्जाकूर्चस्त्रीश्रीमनोभुवः ॥२४५॥

भूतकालाङ्कशप्रेतचण्डप्रासादविद्युतः ।
चामुण्डाभैरवीब्रह्मवज्रकापालमानसाः ॥२४६॥
मध्ये चेदेत एवार्णाः शेषे स्वस्वस्वरान्विताः ।
उत्पातज्वरकूष्माण्डमूर्छनंभ्रामकास्तथा ॥२४७॥
गालनो माकरः स्वप्नो मोहनः स्तम्भनस्तथा ।
बला चातिबला चैव निमीलनमचेतनम् ।२४८॥
उन्मादफैरवोलूकापस्मारान्तर्द्धिमारणाः ।
त्रैदशास्त्रं क्रमाद्देवि स्युः कूटान्येकविंशतिः ॥२४९॥
एवमुक्तोपकूटानां सप्ततिस्तेऽग्रतो मया ।
स्मर्तव्या यत्नतो देवि मन्त्रोद्धारादिकर्मणि ॥२५०॥
आम्नायेभ्यः पुरा षड्भ्य एकीकृत्य महेश्वरि ।
सा मां प्रोवाच तान् सर्वानहमन्यन्न्यवेशयम् ॥२५१॥
द्वयोस्त्रयाणां बीजानां यद्येकैवाभिधा भवेत् ।
द्वितीयो व्यत्ययः कार्यस्तृतीयश्च समा तथा ॥२५२॥
नामद्वयं तथैकस्य ज्ञेयं बीजस्य पार्वति ।
शाकिनीरावयोः संविदश्रणोरमृतामयोः[?] ॥२५३॥
दानवा च लयोरङ्क मुक्तयोरुचिविद्युतोः ।
कापालखलयोरिष्टिमहतोः शेषजम्भयोः ॥२५४॥
फेत्कारीहरितोक्रोधं कूर्चयोरैक्यमेव हि ।
बीजानां चापि कूटानां नामान्येकानि कानिचित् ॥२५५॥
तत्र कूटास्त्रपाकूटं ग्राह्यं बीजन्तु केवलम् ।
भैरव्यानन्दरौद्राश्च नादभोगकलागुणाः ॥२५६॥
डाकिनी वज्रसिंद्धाश्च प्राणानाहतशक्तयः ।
तथा ताण्डवनिर्वाणे फैरवानन्तसृष्टयः ॥२५७॥
प्रभा धरापौरुषोग्रताराज्ञाब्रह्मभारुण्डा ।
बृहद्रथन्तरं ज्येठं महद्वेदास्तथैव च ॥२५८॥

इत्येकमभिधानं ते कीर्तितं बोजकूटयोः ।
यद्यज्ञनामा यः कूटः स येनोच्चारितो भवेत् ॥२५९॥
तस्य तस्यैव यज्ञस्य तेन प्राप्तं फलं भवेत् ।
एकैकं हि जपन् कूटं सिद्धो भवति साधकः ॥२६०॥
किं पुनः सर्वमेवैदं तत्तत्स्थानगतं जपन् ।
कूटानां यत्फलं प्रोक्तं बीजानामपि तद्भवेत् ॥२६१॥
कानिचिन्नामधेयानि प्रिये बीजोपकूटयोः ।
एकान्येव भवेत्तत्र बीजं शुद्धैस्तु नामभिः ॥२६२॥
अस्त्राणां साहचर्येण ग्राह्यं स्यादुपकूटकम् ।
यथा विद्युद्ब्रह्मकालभूतफैरवगारुडाः ॥२६३॥
नागभारुण्डवेतालचक्रौदुम्बरजम्भकाः ।
त्रयाणां कानिचिन्नामान्येकानि स्युः सुरेश्वरि ॥२६४॥
तत्र बीजं केवलेन कूटं कूटैन जायते ।
अस्त्रेण चोपकूटं स्यात् तेषां नाम निशामय ॥२६५॥
फैरवं गारुडं ब्रह्म बीजकूटोपकूटकम् ।
यत्रैकमेव हि भवेन्नामकूटोपकूटयोः ॥२६६॥
तत्र कूटास्त्रभेदेन निर्णयं साधकोत्तमैः ।
प्राजापत्यं तथा ब्राह्मं वैष्णवं चापि शाङ्करम् ॥२६७॥
आग्नेयमैन्द्रं वायव्यं याम्यं पैशाचवारुणम् ।
यानि यान्युपकूटानि तत्तदस्त्राह्वया भवेत् ॥२६८॥
तत्तदस्त्रस्य मन्त्रः स एवमाह पुरद्विषः ।
संसिद्धं तत्तदुपकूटः प्रयुज्यात्तत्तदस्त्रकम् ॥२६९॥
परार्द्धशतसंख्याका निःसरन्ति ततस्ततः ।
इत्येतत् कथितं देवि तव सर्वमशेषतः ॥२७०॥
सदा त्वया धारणीयमप्रमत्तेन चेतसा ।
इदं तृतीयपटलमभ्यसन् सावधानतः ॥२७१॥

सर्वाः सिद्धीरवाप्नोति पापान्यपि निकृन्तति ।
दीर्घायुर्धनवान् भोगी देहान्ते मोक्षमाप्नुयात् ॥२७२॥
अदोऽध्यायं गोपयतश्चतुर्वर्गः प्रसिद्ध्यति ।
प्रकाशयत आश्वेव निधनं निरयोऽपि च ॥२७३॥
अथ तन्त्रान्तरोक्तानि बीजानि कथयामि ते ।
तथा कूटोपकूटानि बीजानामपि मुख्यतः ॥२७४॥
ऋषिश्छन्दोदैवतं च प्रत्येकं प्रवदामि ते ।

इति महाकालसंहितायां बीजोपबीजकूटोपकूटोद्धाराख्यस्तृतीयः पटलः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

बीजोद्धारः ।

अथाकलय कल्याणि बीजान्यन्यानि कानिचित् ।
यान्युजहार भगवान् श्रीमातन्त्रेश्वरेश्वरः ॥१॥
तदज्ञानान् मदाराध्याऽयुतार्णा ज्ञायते न हि ।
वैशेषिकप्रयोगाश्च वासन्तीशारदीयकाः ॥२॥
ज्ञातुं न शक्या देवेशि विविधाः कामगुह्ययोः ।
संज्ञा पूर्ववदत्रापि विज्ञेया बीजकूटयोः ॥३॥
अनुक्तौ बिन्दुसर्गाणां परे पूर्वं नियोजयेत् ।
न हीनौ बिन्दुसर्गाभ्यां बीजकूटाविह स्मृतौ ॥४॥
एष एव विधिः कार्योऽध्याययोः परपूर्वयोः ।
विधिः पौर्वः परे योज्यः संज्ञादिरपि पार्वति ॥५॥
नादसर्गस्थितौ प्राचामागन्तुः पूर्वबाधकृत् ।
युग्मोल्लेखे युगं बोध्यमभावे केवलं हि तत् ॥६॥
स्वराणामपि विज्ञेया व्यवस्थेदृग्विधेश्वरि ।
संज्ञाभेदद्वयं येषु श्रीमातन्त्रोदितः क्रमः ॥७॥
क्वचिच्च गुरुसंसिद्धपारम्पर्यक्रमेण वा ।
क्वचिदर्द्धोक्तितो नाम क्वचिदर्थेन वा पुनः ॥८॥
अनूह्यमपि तेनैव ज्ञातव्यमुभयोः प्रिये ।
परिवृत्तिसहाः केचित्केचित्तदसहा अपि ॥९॥
तेनैव तेऽपि बोद्धव्या अभियोगवता सदा ।
वर्णार्णाक्षरसंकीर्त्त्यो निःस्वरः स प्रतीयते ॥१०॥
अनादसर्गश्च तथा बहूभिरपि निर्मितः ।
एवं गुरुक्रमप्रज्ञाताय्यों मन्त्रमहार्णवः ॥११॥

कथितो वाऽप्यकथितोऽनया रीत्यावगम्यताम् ।
अथैकचित्ता शृणु तत्समुद्धारं मयोदितम् ।।१२।।
मायार्णो नादसर्गाभ्यामोष्ठोर्ध्वंदच्छिरोऽन्वितः ।
राकामेषसटामुण्डा योगिनीक्रमलार्णकौ ।।१३।।
पावकक्षेत्रपौ स्यातां विधिबीजश्च हाकिनी ।
रेफदन्त्यसकारौ चेद्वहतः शिरसान्वितौ ।।१४।।
चण्डविश्वौ तथा ध्यानचञ्चुबीजे उभे स्मृते ।
रुषोमायारवो यागः संहिता वामकर्णकैः ।।१५।।
सर्गष्टवर्गद्वैतीयः परिज्ञेया पिशाचिनी ।
भूतिनी डाकिनी वामाक्षणा प्रेतः कुलिकेन्दुयुक् ।।१६।।
पर्वगाद्यो धरारूढ औषधी वामनेत्रकैः ।
संविद्रावौ स सौरंभावटचौ निःश्रेणिरोऽक्षरः ।।१७।।
रावो निरोष्ठः कौणप्य ऊर्ध्वदन्मूर्ध्व[र्ध]सर्गयुक् ।
भोगः कराली तर्जन्यौ ततः शेषे कटंकटा ।।१८।।
मठीरयाब्रध्नसंज्ञाहलक्षाश्चेद्विसर्गिणः ।
चूडामणिर्वामकर्णी पिच्छाद्यप्यूर्ध्वदन्तिनो ।।१९।।
निराकारः करम्भिस्तु औषध्यधरशालिनी ।
चतुरः कण्ठ्यवर्णाद्यास्तालव्यानपि तावतः ।।२०।।
तथा मूर्द्धन्यदन्त्यौष्ठ्यवर्णान् पञ्च पञ्च च ।
शं तालव्यं तथा हक्षौ रेफयोरन्तरालगान् ।।२१।।
ततो ना वा वाद्यानेकैकान् क्रमशश्वरम् [?] ।
तथा सनादबिन्दुश्च करनागविधून्मितान् ।।२२।।
बीजवर्णानानुपूर्व्या सर्वांस्तान्नामतः शृणु ।
उल्कावेदीजराचण्डीखलपातालकुक्कुटाः ।।२३।।
सारंधानालक्षभव्याऽक्षरगोत्रामहोदयाः ।
तुलाऽनुदात्तस्वरितरन्तोदात्ताजशृंखलाः ।।२४।।

पूर्वोत्तरौ देवसिफा चर्च्चा दक्षिण पश्चिमाः ।
प्रियभ्रू जम्बुक ज्योतिर्नाकिनारदपुष्कलाः ॥२५॥
नान्दी बलिः पृथुह्स्वनदसात्त्वततारकाः ।
वृत्ततुंगाखण्डपुण्यचारुसन्तानकुब्जकाः ॥२६॥
पुरुचूडामणिव्रज्याखातादेशतलच्छटाः ।
कल्क ज्वाला प्रौढव्य क्रूरशान्तिध्यमत्सराः [?] ॥२७॥
पुराणसेतुचरमगूढकीलार्थनैगमाः ।
वर्त्तकोन्माथमैत्राण्डमुख्यबुद्बुदधारणाः ॥२८॥
पट्टब्रह्माण्डयुक्त्युक्षा विद्याभालयुगन्धराः ।
भौमतोरणभृंगारभूरगोल्मुककापिलाः ॥२९॥
संवतो[संवर्तो]ऽर्चिर्नाभसं लघु बलार्चा नायकाद्वयाः ।
आतमा शिखा प्राग्भवत्रिस्थानकल्याणवासनाः ॥३०॥
साधकस्तरलो वत्स भावशौण्डिलकौलिकाः ।
आर्त्तश्च परमा साक्षी पंक्तियोगोत्तमाः कलः ॥३१॥
काकीमुखश्च मुकुलो घोषतर्ज्जनसाकलाः ।
कुहकोल्लोलविस्तारोन्मादवैकालिकास्तथा ॥३२॥
मन्दारसिन्धुकीलालमहेन्द्रकरुणेश्वराः ।
द्वीपजम्भषडंगात्रिककुत्संधातशैशुकाः ॥३३॥
विलासः संग्रहो घाटी कार्पटो भारसंयमौ ।
अतीतसन्धानस्थावरजंगमशुचिग्लहाः ॥३४॥
खर्वो मध्यः कुठारश्च कर्तृशारङ्ग वागुराः ।
खट्वाङ्गो बोधिनिहलौ परोष्टव्रतपूर्त्तकाः ॥३५॥
निर्मोकोत्तंसवेतण्डवेणुसान्वक्षमस्कराः ।
मौञ्जीविघससूत्रायःमेखलाकुण्डयोनयः ॥३६॥
गर्भप्राग्वंशदीपाश्चेत्येते सर्वे मयोदिताः ।
वामाक्षरानङ्गवर्णौ केवलं मूर्ध्न्यदोधरौ ॥३७॥

तैरेवालिङ्गितौ देवि बोजानि स्युश्चतुर्द्दश ।
रङ्कताटङ्कलीलार्धधेनुक्षोभणमारिषाः ॥३८॥
महांकुशमहानङ्गमहामारीमहाविषाः ।
महाद्रावमहामोहमहामायाः क्रमात्स्मृताः ॥३९॥
डाकिनीप्रलयाऽण्डौ चेत्तैः सप्तभिरलङ्कृतौ ।
सविन्दू पुनरप्येते चतुर्दश मयेरिताः ॥४०॥
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डा डाकिनी तथा ।
केकराक्षी महारात्रिः कालरात्रिस्तथैव च ॥४१॥
विजयो मन्दसंमोहौ प्रलयः पतनं तथा ।
ततो युगान्तसंहारौ यक्षः सर्गयुगन्तकः ॥४२॥
क्षेत्रपालशिरोगाभूर्नभस्तन्मौलिशालि च ।
फलं तदुत्तमांगस्थं हादिरेषां शिरः स्थितः ॥४३॥
वर्णाश्चत्वार एवेति युक्तास्तैरध्वयोदिभिः [?] ।
तथा च नादबिन्दूभ्यां बीजानि प्रभवन्ति हि ॥४४॥
कोदण्डमुर्वलातूणव्योमसैन्धववैधसाः ।
सर्वार्थवेगसन्धानी शिञ्जिनीलिङ्गनैमयाः ॥४५॥
पुन्नागत्रिपुरारौद्रसवित्रीशङ्कुमज्जनाः ।
याम्येन्द्रजीवनीपक्षवीरवेतालवाडवाः ॥४६॥
भौराग्रपुटकाश्चेति द्विवासवमिता इमे ।
सर्वोपरिस्थविध्यर्णो त्रपावर्णोपरि स्थितौ ॥४७॥
सपञ्चदीर्घैर्गायत्री कर्णिका श्रृङ्खला तथा ।
औपह्वरो नान्दिकश्च क्रमादेते वरानने ॥४८॥
एतावेवोत्तमाङ्गेन विभ्रद्वेण्वर्ण एव हि ।
बिन्दु तत्स्वरसंयुक्तः क्रमाद्बीजानि पञ्च हि ॥४९॥
सुकृतं दुष्कृतं पद्मं कुशिको व्यय एव च ।
मुक्ता महाक्रमैणेतारङ्कोर्ध्वर्द्वर्ण चगाः ? ॥५०॥

सुरसः समरो रागः सारश्चैव क्रमादिमे ।
दानवार्णमधोदद्युग्लाङ्गलं समुदाहृतम् ।।५१।।
विंध्यूर्द्धवर्णयुग्माधोध्यानोर्द्धाऽर्णयुगं यदि ।
तदधो योगिनीवर्णाः पञ्च दीर्घस्वरैः सकैः ।।५२।।
भद्रिका च तथा तन्द्रा कुटिला रञ्जिनी घटी ।
रणजाती यशोऽधस्था मौक्तिकादि चतुष्टयी ।।५३।।
चर्पटी मणिमाला च हारिण्युत्कोचिनी तथा ।
शाकिन्यक्षरकस्थं खं पञ्च दीर्घकिमाविनो ? ।।५४।।
लाङ्गूलो वर्द्धमानश्च वेत्र आषाढ एव च ।
सटाधः शाकिनी वर्णः प्रत्यङ्गिति विभाषितः ।।५५।।
खेचरी वामनेत्रेण संज्ञा हि परिपठ्यते ।
सवक्त्रा खलु चामुण्डा झंझा बीजमुदाहृतम् ।।५६।।
पञ्चदीर्घस्वरोपेतं धनदार्णमधः सरम् ।
रोगबालाराहुखोटकोरञ्चः क्रमतो मताः ।।५७।।
कमलार्णं त्रपार्णोर्ध्वं पञ्चदीर्घस्वरान्वितम् ।
सबिन्दुः क्रमतः पञ्च बीजानि वरवर्णिनि ।।५८।।
स्वस्तिकश्च तथा सूर्य्यावर्त्तश्च परिकीर्त्तितः ।
चन्द्रताराग्रहपदादावर्तश्चाद्वया भवेत् ।।५९।।
कालिकार्णे मायिकार्णं तत्तद्दीर्घशिरोऽन्वितम् ।
आदौ कौलशिलं बीजं ततोऽनु दधि मध्वपि ।।६०।।
नामास्य मधुपर्कोऽपि त्रिदैवतमतः परम् ।
त्रयीमयं त्रिदैवश्च पञ्च बीजान्यनुक्रमात् ।।६१।।
विजया स्यात् त्रपाबीजे क्षेत्रपालविहंगमौ ।
भूतिन्यर्णौ त्रपागोस्थौ संभूतिचतुरस्रकौ ।।६२।।
अशौ शुक्रे च राकायां स एव परिनिष्ठितः ।
अस्रश्च विरतिश्चैव श्रीकण्ठ इति च क्रमात् ।।६३।।

अयं कल्पादिषु भवेद्यदि पञ्च समूर्ध्निगः ।
संहारी च तथा नादान्तकश्चामर एव हि ॥६४॥
व्यजनं विधृतिश्चापि क्रमतो बीजपञ्चकम् ।
निद्रा तथा योगिनो च पूर्णा धूम्रस्तथैव च ॥६५॥
ललिता चोद्वहन्त्योऽमुं पञ्चान्यानि प्रकुर्वते ।
औपदेयश्च मारण्डविनादौ तदनन्तरम् ॥६६॥
विमर्दशेखरौ चापि तथा नद्यादिपञ्चके ।
अयमेव हि मौलिञ्जो विरूपोऽप्यपरान्तकः ॥६७॥
प्रकरी बिन्दुकश्चापि पञ्चदण्डादयस्तथा ।
पञ्च स्युरिममारूढा विरसो दाक्षिकस्तथा ॥६८॥
सौमतश्च प्रतानश्च विदिक् चापि यथाक्रमम् ।
अमुमेव समारूढे चेन्निद्रा योगिनी तथा ॥६९॥
वैटपश्चैव कौलुञ्चः क्रमेण भवतः प्रिये ।
शंखादिपञ्चकशिरः स्थितो मायार्ण एव हि ॥७०॥
विचित्रधन्यावुल्लोप्यं विस्मृतिः पाणिगीतिकः ।
डाकिन्यां केकराक्ष्यां च क्षेत्रपालस्थितो यदि ॥७१॥
तथा सिद्धिफलं शिल्पबीजं च भवति क्रमात् ।
दस्रादिचतुरूर्ध्वस्थ एष एव वरानने ॥७२॥
संपूर्णा च तथा मौनी भस्मः संकल्प एव च ।
वामाभ्यां नेत्रकर्णाभ्यां विकल्पः परिकीर्त्यते ॥७३॥
कुष्माण्डी चापि चामुण्डा त्रिशक्तिस्त्रिशिखा मता
तथा झंझा विपरीतक्रमे मायार्णधारिणी ॥७४॥
पञ्चबीजान्यंकुरश्च वनस्पतिविधानकौ ।
संविधानश्च कलहः काल्यर्णो दण्डपञ्चके ॥७५॥
लक्ष्मविक्रमसंक्षान्तिकुलमुद्रास्तथैव च ।
चक्रतुम्बीसमक्षाश्च क्रमतः परिकीर्त्तिताः ॥७६॥

ईहादिपञ्चशोर्षस्थौ मायार्णक्षेत्रपौ यदि ।
विशिखाकुशतन्भू [?]च हारसृष्टी विवर्णतः ॥७७॥
वामश्रुत्यक्षसंयुक्तो रन्ध्र एष प्रकीर्त्तितः ।
नद्यादित्रितये नारसिंहार्णं मूर्ध्नि विष्टितम् ॥७८॥
भवेद्गुह्यकपाटाख्यं संसृष्टिश्च विकोशकः ।
खड्गादिपञ्चके क्षेत्रपालो भवति शीर्षगः ॥७९॥
विटङ्को योगतन्द्रा च दिगम्बर इति क्रमात् ।
तथा रसपुटश्चापि सन्न्यास इति च क्रमात् ॥८०॥
विभा योषिद्विराट् चैव फैरवश्च कुमारिका ।
मूर्ध्नी वहन्त्यो मायार्णं विकराली च मौनकः ॥८१॥
ब्रलिका विखलश्चापि विसार इति च क्रमात् ।
मायार्णं योगिवर्णे च योगिन्यर्णं त्रपोपरि ॥८२॥
पञ्चदीर्घस्वरैः युक्तं स्युर्बीजानि दश क्रमात् ।
कलावती च सर्वस्वं विप्रियस्तदनन्तरम् ॥८३॥
संतारवैकक्षकौ च मञ्जोरोऽप्यनु तस्य हि ।
समाधानं सुदर्शनं यौक्तिकं मञ्जरी तथा॥८४॥
तद्वत् त्रपा मन्मथार्णे त्रपायामपि मान्मथम् ।
पुनस्तावन्ति जायन्ते बीजानि क्रमतः प्रिये ॥८५॥
संभावना शुद्धनिद्रा मायाहारोऽप्यनन्तरम् ।
ततो नु कीर्त्तयेद्देवि विपूर्वौ स्वरितोत्तरौ ॥८६॥
विद्यावलं चाक्रिकं च विक्रियो विपृथुस्तथा ।
शालङ्को मारवर्णश्चेद्यदि कल्पादिपञ्चके ॥८७॥
वर्णकश्च विवृत्तश्च तलगूढौ समन्वितौ ।
वैधानमपि कामार्णं भवेद्रावादिपञ्चके ॥८८॥
लयश्च वर्त्तकौ संवेः पारीन्द्रश्च शुभंयुकः ।
वर्णौ शाकिनीडाकिन्यौ मायार्णं पञ्चदीर्घकैः ॥८९॥

नियुक्तिः जैमनश्चापि संव्यानं च ततः परम् ।
तथा सम्बलधम्मिल्लौ तथा पिध्वौन [?] एव च ॥९०॥
वत्सभावौ तथा योगौ विसंसंवेरनन्तरम् ।
वधूरमास्मराणश्च डाकिन्यां पञ्चदीर्घिणः ॥९१॥
बीजानि स्युः पञ्चदश क्रमतो वरवर्णिनि ।
पाटवं पिप्पलं चापि कलजम्भौ विवर्णतः ॥९२॥
उत्तानमिन्दिरा चापि ततो विनिमयोऽपि च ।
संजीवनीपक्षरागतन्द्राश्च व्यर्णतः प्रिये ॥९३॥
कैतवातङ्कसंहारिणश्चापि विघटी तथा ।
कूर्च्चोपरि भवेयुश्चेन्मायाकाली च योगिनी ॥९४॥
मन्मथो वनिता चापि पञ्च बीजान्यनु क्रमात् ।
विसंज्ञा प्रत्ययश्चापि विप्रत्यय इतः परम् ॥९५॥
संप्रत्ययश्च संविप्रत्ययस्तदनन्तरम् ।
दण्डादिपञ्चाधस्थश्चेत्कापालार्णं वरानने ॥९६॥
चुलिकश्चानुकृतिश्च गुप्ताचारस्तथैव च ।
पाषाणं तस्य पूर्वं तु विज्ञेया गुह्यखेचरी ॥९७॥
मायार्णाधः स्थितं देवि यद्युद्धारादि पञ्चकम् ।
तथा लक्ष्म्यर्णनीचस्थं भवेत्त्वष्ट्रादि पञ्चकम् ॥९८॥
क्रमतो दश बीजानि स्युरुच्चशिखरं ततः ।
चण्डिनश्च विपाशश्च संमोहो नर्म चापि वेः ॥९९॥
क्षते संव्यर्णतश्चापि भ्रान्तिमपि तयोरनु ।
शेषे विसंभ्रान्तिरपि त्रपायोगिन्यथेन्दिरा ॥१००॥
त्रिशक्तिर्न्नरसिंहश्च केवलं वर्णतः प्रिये ।
क्षुधोपरिष्टात्संविष्टाः पञ्च बीजान्यनुक्रमात् ॥१०१॥
त्रिदैवीमौलविकटव्यालाश्च मुखरस्तथा ।
क्षेत्रपार्णौ ध्यानचञ्चौ मेधाकृष्टिरिति क्रमात् ॥१०२॥

शंखादिपञ्चके त्वष्टवर्णो बीजानि पञ्च हि ।
प्रहारी चक्रदुक्कश्च [?] कराटी वात्यया सह ॥१०३॥
वारीपुटकपञ्चाधोऽनन्तार्णस्तृवृदादयः ।
पञ्चत्रिशक्तिवर्णाधो दश बीजान्यनुक्रमात् ॥१०४॥
नैयत्यं चापि सन्तानो वितानो विवरस्तथा ।
वृंहितश्चापि सापिण्डः प्राकारः कुहिका तथा ॥१०५॥
बीजानि च तथा तष्टा नाकुलक्षेत्रपार्णकौ ।
क्रकचारिष्टयो वैरुधश्च श्रीवत्स एव च ॥१०६॥
कूष्माण्डी च तथा वल्याभस्त्रिशक्तिस्त्रिशिख्यपि ।
एवं च विपरीतेन क्रमेण वरवर्णिनि ॥१०७॥
योगिन्यर्णं मूर्ध्नि कृत्वा स्युर्बीजानीह पञ्च वै ।
ईशापारावरपुरुगयूपाहेतुरेव च ॥१०८॥
शंखार्णं मानसार्णे तु पञ्चदीर्घनिराकृति ।
तर्पणं भेदवरटौ प्रीतिस्तदनु गद्यते ॥१०९॥
केशरः काकिनो नेमिः शाकिनी छन्द एव च ।
चण्डो विश्वश्च शिरसा वहतस्त्रिशिखार्णकम् ॥११०॥
वारणाजूर[?]शापौ च शपथश्छन्द एव च ।
निस्तारः प्रमितिश्चापि सप्तबीजान्यनुक्रमात् ॥१११॥
नागार्णोर्ध्वं विषार्णं हि प्रतार्णं त्रिशिखार्णके ।
श्रेष्ठार्णे च नृसिंहार्णं चामुण्डार्णे खगार्णकम् ॥११२॥
सप्तदीर्घस्वरैर्युक्तं बीजान्यष्टौ च विंशतिः ।
क्रमतः परिपठ्यानि तत्रादौ वेध्य उच्यते ॥११३॥
याच्ञा आक्रोश संवित्ति वशदाहास्तथैव च ।
रचनाराधनं संप्रदायभाजनमेव च ॥११४॥
प्रश्नापायश्लेषनिकारविस्ताराः सदयः [?] ।
उड्डीशश्च प्रकारश्च प्रवाहोऽवस्थया सह ॥११५॥

निर्वंशो व्यास उत्क्रामः प्रादेशस्तदनन्तरम् ।
नोलाञ्जनं च विघ्नश्च प्रक्षेपस्वातिरेव च ॥११६॥
नृसिंहशाकिनीवर्णौ त्रपावर्णोपरि स्थितौ ।
खेचर्य्यर्णे त्रिशक्त्यर्णं डाकिन्यर्णं क्रमार्णके ॥११७॥
भारुण्डार्णे त्रिशक्त्यर्णं सूक्ष्मार्णमपि च प्रिये ।
कारकार्णे त्रपार्णं च विरिञ्च्यर्णं जटार्णके ॥११८॥
कापालार्णं केशरार्णे खेचर्यर्णेऽमृतार्णकम् ।
योगिन्यर्णं द्रावणार्णे नागकेशरवर्णकौ ॥११९॥
कापालार्णे हि यक्षार्णं मन्त्रावल्यर्णके तथा ।
योगिन्यर्णेऽपि दस्रार्णं नेप्यर्णौ [?] वनितार्णके ॥१२०॥
नृसिंहार्णं च नागार्णे वह्न्यनन्ताक्षरे तथा ।
वज्रार्णे खर्वलीले च केशरार्णे तथैव च॥१२१॥
डामरार्णे तथेहार्णं लज्जासौकलवर्णके ।
कूष्माण्डार्णे कबन्धार्णं तथा सूक्ष्माक्षरे प्रिये ॥१२२॥
बीजानां विंशतिः ह्येषा सप्तदीर्घशिरोऽन्विता ।
खवेन्दुमितानि[?]स्युर्बीजानि परमेश्वरि ॥१२३॥
उड्डियानं मज्रमंगलं झंकारोंऽगुल एव हि ।
भानपाठोत्सर्गचित्येषणाश्चञ्चलमन्नकम् ॥१२४॥
अन्तः प्रतीछा ज्योत्स्नाश्च कृतिग्राहग्रहा अपि ।
तापश्च तपनश्चापि सन्तापो वर्द्धनी तथा ॥१२५॥
वर्णस्ततः शेखरश्च यातनाकवलं ऋणम् ।
ऋक्षं पशू[तथा]राजा करकाकरके अपि ॥१२६॥
उलूको लम्बिका चापि गुरुरप्युपलस्ततः ।
ईशेलांहः सान्ध्यचञ्चलावेशा गुह्य एव च ॥१२७॥
गर्ह्याप्यार्य्या तथा लम्बा मयूराप्यथ बृंहती ।
रयिरुद्भित्त्रपाच्छिप्पितीर्थानि द्रव एव च ॥१२८॥

वाटी जन्या च पोषश्च सवनं पृश्निरेव च ।
क्षुद्रतृप्तिपुटद्रावसर्गमार्ज्जनमेव च ॥१२९॥
उपसर्गस्तथा लोकानिसर्गश्चयनं तथा ।
वर्गश्च महिमा भाषा दुर्गायत्नप्रयत्नकौ ॥१३०॥
जालं तथा पवर्गश्च विसर्गो युगमेव च ।
दुष्टस्ततः परं गुह्या निन्दा कणकणाकिणाः ॥१३१॥
गुणो गणस्तथा मूलं प्रतिमानञ्च वारुणी ।
शरणं खण्डके भू च सिद्धान्तः श्रुतिवस्तु च ॥१३२॥
मन्दा दैवं तथा सन्धावर्ष्मा नन्दावितानकम् ।
किञ्जल्कतिथिपद्मानि संगतिर्वर्हमेव च ॥१३३॥
ईरिणी च तथा साम्यरमणीवार एव च ।
मृगाङ्कवीथ्यौ च पणः खरः करणमेव च ॥१३४॥
चतुः पथोषरौरीति धातुमूर्त्तय एव च ।
रिष्टकूटौ तथा काष्ठाधूरयोऽघोघ एव च ॥१३५॥
गोष्ठी दिक्षुश्च[?] कोष्ठश्चव्याडश्चापि ललाटकः ।
महाशंखऋतंकश्च दुर्घटोर्गलि एव च ॥१३६॥
पतङ्गप्रवहौ वापीत्येवं सर्वे मयोदिताः ।
चारफाण्टलयाः काये दीर्घसप्तकसंयुताः ॥१३७॥
ग[ण]प्रापञ्चगोष्ठानि वादो निष्ठा तथैव च ।
क्ष्वेडो मौलिरिति ज्ञेया देव्यनुक्रमतोऽखिलाः ॥१३८॥
विरिंच्यर्णं करम्भ्यर्णेऽनन्तार्णं वनितार्णके ।
स्वरैस्तैस्तैश्च युक्तानि भवन्ति हि चतुर्दश ॥१३९॥
इलिकश्चापि वेहण्डस्तेजनं गजया सह ।
मेहनी स्तनकालश्च फुल्लोरसिक एव च ॥१४०॥
रासावयौ तथा तुण्डा कुविकायककौ [?] तथा ।
कण्ठीरवः सर्वशेषे क्रमतः परिकीर्त्तितः ॥१४१॥

केशरार्णोदुम्बरार्णे शंखार्णोपरिविष्ठिते ।
तैः स्वरैस्तेन चोपेतैः सप्त बीजन्यनुक्रमात् ॥१४२॥
निस्तनश्च विराधश्च तुरीया तदनन्तरम् ।
स्थानीग्रावा घण्टिका च पथ्यं सर्वानपायि च ॥१४३॥
यज्ञाक्षरे नृसिंहार्णं तया रीत्यैव चान्वितम् ।
मनोजवामोदकश्च वासिता रञ्जिरेव च ॥१४४॥
ओजस्विवाष्पे च सह्यं क्रमतः सप्त पार्वति ।
दैवे यथा कलितं तथात्रापि महाक्षरम् ॥१४५॥
सौकलार्णे पुरावच्च तैश्च तेन च संयुतम् ।
प्रिये बीजानि सप्त स्युरिध्मपूत्यण्डकूर्चिका ॥१४६॥
बालरण्डा कामकला बल्कलो रङ्कको तथा ।
केशरार्णव्यपेताग्निखेचर्य्यणं क्रमाक्षरे ॥१४७॥
ततोद्ययायवाराद्य[?]स्युर्बीजानीह सप्त वै ।
शक्तिविद्या च षट्चक्रं ततः सर्वागमोऽपि च ॥१४८॥
कौलबीजं ततो ज्ञेयमाम्नायातीतमित्यपि ।
विद्यातत्त्वं ततस्तत्त्वाऽर्णवश्च परिकीर्तितः ॥१४९॥
फेत्कार्यर्णं च मुक्तायां शक्तिसर्वस्वमुच्यते ।
तदेव च महाशीर्षे परापरमुदीर्यते ॥१५०॥
संदंशकार्णं भ्रामर्य्यां शाम्भवं परिपठ्यते ।
तदेव हि प्रचण्डायां चिच्छक्तिरभिधीयते ॥१५१॥
आदावुल्का ब्रध्नबीजं विपरीतं पुनर्वदेत् ।
तदेव सन्धियुक्तं च तथैकीकृत्य च प्रिये ॥१५२॥
सायुज्यबीजमित्युक्तं मोक्षमार्गे प्रतिष्ठितम् ।
इति सप्तशतं प्रोक्तं बीजानां विंशतिस्तथा ॥१५३॥
सर्वागमेषु गोप्यानि महापापहराणि च ।
गुप्तत्वादप्रसिद्धानि बीजानि वरवर्णिनि ॥१५४॥

समुद्धर्तुमशक्यानि ह्युपदेशं गुरोर्विना ।
कपालडामरीयानि तत्र शाबरकाण्यपि ॥१५५॥
सकृदुच्चारणेनैषामेकैकेषां वरानने ।
नष्टानि स्युः पातकानि सर्वेषां गदनात् किमु ॥१५६॥
एभिरेव महाबीजैः प्रिये कापालडामरे ।
तथा शाबरतन्त्रे च मन्त्राणामुद्धृतिः कृता ॥१५७॥
अतः परं तु कूटानामुद्धारं शृणु पार्वति ।
या संज्ञा पूर्वमुद्दिष्टा सैवात्रापि प्रकाशते ॥१५८॥
किंतु किञ्चिद्विशेषोऽस्ति तमपि व्याहरामि ते ।
यथा कृता कूटसंज्ञा यज्ञानां नामभिः पुरा ॥१५९॥
तथात्रापि वरारोहे नानाभेदेन कथ्यते ।
नाडीनां श्रुतिसूक्तानां वर्णानां सरितां तथा ॥१६०॥
शैलशैलेयवेदान्तसांख्यशिक्षानुबन्धिनाम् ।
षड्दर्शनीयसंज्ञानामभिधानक्रमैरपि ॥१६१॥
कूटाख्या तत्तदाख्यानां तदाख्यानं सुनिश्चितम् ।
यत्र न भ्रामकं तत्र केवलं कूटनाम हि ॥१६२॥
पूर्णं शतं तत्र नाड्यः सूक्तं द्वे विंशती तथा ।
द्विचत्वारिंशतो वर्णास्तथा नद्यश्च सप्ततिः ॥१६३॥
उचावच्चा पर्वताद्यास्तथैवाष्टादश स्मृताः ।
अष्टौ च संज्ञा वैदिक्यो ह्येकविंशाः प्रकीर्णकाः ॥१६४॥
एकषष्टिश्च शास्त्रीयाः संज्ञास्तदनु पार्वति ।
सर्वं मिलित्वा विज्ञेयं षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१६५॥
इदानीं क्रमतोऽमीषां समुद्धारं निशामय ।
हेमस्वनौ चेत्तारा च शूलयोरपि च क्रमात् ॥१६६॥
सर्गाविसर्गे द्वे नाड्यौ भवतो वरवर्णिनि ।
सदोहररव क्षीरकायहार विकम्पिनी ॥१६७॥

स्यात् समरणहारखर्वंहिमानि च ततः स्वनो ।
नागमूर्ध्नि ००००तदा क्लिन्ना भवेत्प्रिये ।।१६८।।
खपाठस्त्र्यर्णकायहरयो वह्नानि ह्लियाम् ।
वीणा सदोहारमायानदाः क्षतकगा हिता ।।१६९।।
हरिजातिसदःकायास्त्रपायां भासुरा भवेत् ।
संकोचिनी सदोमाया हरिक्षीरं भूशुण्डिके ।।१७०।।
स्वनक्षीरे शुभसदोहारोरणयुता पुनः ।
शूरे स वामकर्णेन्दौ धमनी परिकीर्त्तिता ।।१७१।।
लीलाशुभक्षीरकायमनःशूरास्त्रपोपरि ।
प्रबुद्धाथ भवेद्दीप्ता रम्भाक्षीरहरा मनः ।।१७२।।
स शुभं सृष्टिमूर्द्धस्थं क्षमावृषहिमा न तु ।
दर्भो जम्भः क्षेपणी स्याद्भवेच्चाथ प्रकाशिनी ।।१७३।।
क्षीरकायौ रथन्तर्यहरी शुभमतः परम् ।
मनश्च शूरवामाक्षि बिन्दुयुक्ते वरानने ।।१७४।।
आलस्या स्यात्तु संभूतौ सदो जातिः हरिः क्रमात् ।
रणहारौ त्रपाशूरवर्णौ कामे विलम्बिता ।।१७५।।
खः सदः करौ मायाज्याणौं योगिनि शीर्षके ।
पूर्णाथावेशिनी रम्भा शुभे मणिमनोयुते ।।१७६।।
शूरे वामाक्षि बिन्दूक्ते घर्घरा तु तदा भवेत् ।
शठस्वनौ तथा नन्दा सदो हारस्तथैव च ।।१७७।।
वेद्यारूढाः कायनन्दास्वनक्षीरं सदर्भकम् ।
रत्यारूढं भवेत्क्षिप्ता संपूर्णार्णं मनः करः ।।१७८।।
लक्ष्म्यर्णहारयोगाश्च सा विरूक्षा मता प्रिये ।
सुधायां चेत्सदोहाररम्भाजातिशुभानि हि ।।१७९।।
क्लिन्ना तदा हिमसमौ वृषक्षीरौ [च] शूरकौ ।
वामकर्णेन्दुसंपृक्तौ स्निग्धा संदशकाक्षरम् ।।१८०।।

स्वनशूरान्वितं चण्डी वामा इन्दुसमन्वितम् ।
जातिरम्भारवमणी शूरा वामश्रवोऽन्विता ॥१८१॥
इयं सरस्वती नाडी सदहारश्च न दया ।
शुभडाकिनीवर्णौ च कुहूर्दिक् शिरसि स्थिता ॥१८२॥
विषलीलाशुभद्वीपार्णशूरा वामकर्णिनः ।
सेदेवो वारणा रत्नरागमायागदा पुनः ॥१८३॥
यशस्विनी स्याद्योगिन्यां स्वनक्षीरौ च शुण्डया ।
शुभहारौ च टङ्के स्यान्नाम्ना नाडी पयस्विनी ॥१८४॥
थालीहरौ सारवर्णौ हिमं शुभमनस्तथा ।
शक्तिबीजे भवेत्पूषा शंखिनी स्यात्तदा प्रिये ॥१८५॥
रवोहरोहारवर्णोमारार्णः शूरवर्णकः ।
सर्वं चोपर्यधोभावैर्वामकर्णेन्दुसंयुताः ॥१८६॥
हारस्वनक्षमानन्दा समहारास्त्रपोपरि ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा तु सदफाण्डौ स वीणकौ ॥१८७॥
मनोहारौ तथा नन्दा कामोपरि भवेत्प्रिये ।
नन्दाहरौ मानसार्णस्वनौ स्याद्गव्यलम्बुषा ॥१८८॥
टीकावीची लयहरत्वष्ट्रर्णाः शूरमूर्द्धनि ।
वामदृग्बिन्दुसंयुक्ता भवेद्विश्वोदरा प्रिये ॥१८९॥
समो नारी शुभं लीला जातिः शक्त्युपरि स्थिताः ।
तेजस्विनी करहरौ शुण्डा माया शुभं तथा ॥१९०॥
शूरे सवामकर्णेन्दौ भवेच्चित्रा वरानने ।
चारमायाकुटी शूरा अव्यक्ता योगिनी कगाः ॥१९१॥
रम्भाजातिवृषाः शूरसंहिता गवि गालिनी ।
मनःस्थाल्यौ सहज्यार्ण मन्दारार्णेग धूपरि ॥१९२॥
मदादाह्लद क्षमाफाण्ट हरिमाया समन्विताः ।
योगिन्यर्णो नागबीजे प्रिये रसवहा भवेत् ॥१९३॥

सदोरवस्वनक्षीरभोगे मधुमती स्मृता ।
योगिन्यर्णं स्वनक्षीरह्लदकायास्त्रपोपरि ॥१९४॥
द्राविणी समरम्भे च दुर्द्धर्षक्षेत्रवर्णकौ ।
मायायां चेतना ज्ञेया सती तरुयुता प्रपा ॥१९५॥
रम्भा हिमं सुधाबीजे मुदिता सदलस्वना ।
जातिरौषधिवर्णाद्या विरिंचौ परिकीर्त्तिता ॥१९६॥
मायारम्भाक्षमाकायसहितानि सदांसि हि ।
प्रचण्डायां भ्रामिणी स्यात्कपिला तु तदा भवेत् ॥१९७॥
प्रपा लीला प्रचण्डार्णं शूरा लज्जोपरि स्थिताः ।
चारः फलं तथा रम्भा शुभं माया महोपरि ॥१९८॥
रण्डाभाव कुटीमाया शुभनन्दास्त्रपोपरि ।
सौवीरी गजमायेव वीचिखर्वहिमं शुभम् ॥१९९॥
शूरे स वामनेत्रेन्दौ कर्षिणी परिकीर्तिता ।
योगिन्यर्णो दर्भंजातीरम्भा वैरिश्चकोत्तरा ॥२००॥
सदोमनस्तरुमठौ रवफाण्टौ ततः परम् ।
योगिन्यर्णो मारबीजे रजनी सुमुखी यतिः ॥२०१॥
स्वनो मठः समशुभे रतिशीर्षेऽथ रेवती ।
दलमाया नरडिमवीची समहरा यदि ॥२०२॥
शूरे [च] वामविन्दूक्ते भवेदाप्यायनी तदा ।
नारीरवौ मणिकरौ स्वने शूरौ त्रपोपरि ॥२०३॥
वृषक्षीरौ करमनौ शुभदर्भाश्च शूरके ।
सव्यकर्णेन्दुसंयुक्ते विश्वदूता भवेत्प्रिये ॥२०४॥
मायानीलाटङ्क वीची सुण्डा शूरा क्रमस्थिताः ।
वामश्रुतीन्दुना चन्द्रा हेमजलरणौ यशः ॥२०५॥
शुभमाया क्षमारम्भा शूराः पूर्वस्वरान्विताः ।
चरखर्वो तथा शुण्डा क्षमाकायौ सदर्भकौ ॥२०६॥

प्रचण्डायां भवेन्मैत्री हैमडिम्बस्वनास्तथा ।
सनन्दा भ्रामरी मूर्ध्नि भवेद्देवि कपर्द्दिनी ॥२०७॥
चन्द्रावती सदोनारो टङ्कमाया सवीचिका: ।
सशक्त्यर्णौ चक्रबीजे भवेन्नन्दा तदा प्रिये ॥२०८॥
सदाहारग्रामलीला खर्ववक्रार्णकौ स्मरे ।
खग्राहह्लदा दर्भे विशाला सानुबीजके ॥२०९॥
रम्भा सदा हरमनः शुभक्षीरा रमाकगाः ।
विचित्रा माण्डवी क्रान्तिमनष्टंकाशवीचयः ॥२१०॥
सदोहारयुता कामे प्रचण्डार्णमनः सगा ।
सरत्नाशंखवर्णार्द्धे लोहिनी भवति प्रिये ॥२११॥
सदो मनो रणो विश्वो ह्लदः कन्याग विस्मृता ।
रणहारौ सदोहारौ स्वनक्षीरौ वधूपरि ॥२१२॥
सुकन्या पूतना शूररम्भाजातिश्च योगिनी ।
रम्भा सदोग्राह खखर्वाश्च सहिमास्तथा ॥२१३॥
शूरे स वामश्रुति [च] करिणी परिकीर्तिता ।
पटुवीची याग शुभरम्भा भूतिनि मस्तके ॥२१४॥
धोरिणी समनसमा ००० सशमा तथा ।
शूरे स वामकर्णेन्दौ धीरा वेगवती पुनः ॥२१५॥
विश्वलीला वसमहारणमायावमोपरि ।
जातीरण मणिस्वनौ शूरा वामश्रुतिः शिरः ॥२१६॥
क्रन्तनी सैव वामाक्ष्णा विवर्णा विनिगद्यते ।
क्रन्तनी मणिना हीना स हेमा सुरभी मता ॥२१७॥
सुरभ्येव हि वामाक्ष्णा अग्निज्वालाभिधीयते ।
स चारफाण्ट रत्ना समनः शूरश्रवः शिराः ॥२१८॥
कोटरा ग्राह रम्भाक्ष शूरापूर्णाकगाऽचला ।
सदोरत्नशुभाः कायमनसी रण एव च ॥२१९॥

विकल्पा नाम दृक्क्वाभ्यां रवमायाभ्रमैः सह ।
शूरो गवि तपिन्युक्ता लीलामणिमनः करा ॥२२०॥
त्रपायां तापिनी नाम धूम्रा डिम्व मनोयुते ।
वीची शुभ सनन्देन्दु वामाक्षिण्यथ चेश्वरि ॥२२१॥
करो दर्भो भ्रमो माया मरीचिः कैकरोपरि ।
रवो मनो रवो यागः कौलुश्चे ज्वालिनी मता ॥२२२॥
लयकायौ योगिनीयार्णा रुचिरा हार ईरिता ।
नरजातो पुष्पडाकिन्यर्णा शूरश्रुतीन्दुयुक् ॥२२३॥
संमोहा घनलीले तु सदोहरशुनि च [?]।
विश्वनन्दालयाश्चौदुम्वरे रसवहोच्यते ॥२२४॥
टङ्को नारी तनुग्राह ह्लदयाग क्रमेण हि ।
पूर्णिके लम्बिका प्रोक्ता शूला वररणौ करः ॥२२५॥
जलं यशो मनो वीणा वामश्रुत्यर्द्धंचन्द्रयुक् ।
नयनक्षमे तथा शुण्डा शूरौ पूर्णोपरि प्रिये ॥२२६॥
तन्द्रावती वृषो माया विश्वशुभमथापि च ।
निद्रार्णनन्दा वामाक्षणा शीलिता घण्टिका मता ॥२२७॥
रणमायायागनिद्रार्णक्षीरं रम्भयान्वितम् ।
कैवल्या स्यात् त्रपामूर्ध्नि हंसबीजमनूनकम् ॥२२८॥
सत्वकूटादिषड्वर्णास्त्रपाके स्यादविग्रहा ।
नन्दाक्षमास्वनाः साम्यं सशुभं योगिनीकगम् ॥२२९॥
विभ्रान्तिर्वामकर्णे सा तुरीया परिपठ्यते ।
नरकायह्लदग्राह हिमं लज्जोपरि प्रिये ॥२३०॥
प्रशान्ता योगनिःश्रेणी ससमं सशुभं तथा ।
क्षीरं सरम्भं समनः शूरः स्याद्वनितोपरि ॥२३१॥
हंसबीजं स्वनक्षीरं शूराश्चेन्मन्मथोपरि ।
निर्वाणा योगसहिताः स्वनः क्षीरः सदः कराः ॥२३२॥

शुभं शूरश्च वामाक्षणा प्रिये स्यादपुनर्भवा ।
नामभिर्देहना नाडोरिमे कूटास्तवेरिता: ॥२३३॥
अधुना देवि सूक्तानां नाम्ना कूटान् ब्रवीमि ते ।
हारस्वनौ विश्वशूरौ ललितायां क्रमेण हि ॥२३४॥
शिवसंकल्प उदितो रम्भा लक्ष्म्यर्ण एव च ।
ग्राहः शुभममामूर्ध्नि पौरुषा थाल्यथो मनः ॥२३५॥
वीणाकायौ तथा नन्दा शुभं यदि विराजिव [?] ।
अनन्तं हिमलीले च जातिकायागविस्मृतम् ॥२३६॥
माहित्रं त्र्यक्षरं हारभ्रमौ शुभमनस्यपि ।
नागे भगवतो प्रोक्ता नारीजलरवा मनः ॥२३७॥
करः शुभे तथा वीणा क्रमेण कमलोपरि ।
भवेत्तरु गृत्समन्दीयमस्यवामीयमेव च ॥२३८॥
हेमशुण्डाकराश्चापि स्वरोवाम दृगिन्दुना ।
विषं मनः कायशुभं हविष्यान्तं हि योगिनी ॥२३९॥
मनोह्लदौ यागटीका वीच्यो वामदृगिन्दुना ।
नतमंहो मणिर्भावलीले सन्तानमस्तके ॥२४०॥
नाराशंसीपावमानी रवः सममनो यतिः ।
क्षीरशुभं वधूमूर्ध्नि रणोमाया यतिस्तथा ॥२४१॥
जालं सोमारौद्रनामकूटं शक्तौ प्रकीर्तितम् ।
मैत्रावरुणकं नारी मायाश्रम सशूरकम् ॥२४२॥
गव्यग्निषोमीयमथो सदोमाया धराक्षमाः ।
वृषश्च वनितामूर्ध्नि ऐन्द्राग्निं पटु कुट्यति ॥२४३॥
स्वनदर्भौ प्रचण्डायां वैश्वदेवं जलं नरः ।
यागो मठः स्वनोदस्रे भारुण्डामणिरम्भया ॥२४४॥
विराजि स्याद्वृषग्राहौ ज्येष्ठकूटः विनायकः ।
प्रायश्चिति स्याद्वायव्यं डिम्बस्वनक्षमास्तथा ॥२४५॥

नन्दा विनादार्णमपि गवि नैर्ऋतमुच्यते ।
लीलासदोमठाः कायमनः शूरास्तु तैजसे ॥२४६॥
वैभ्राजदर्भमुद्धर्ष वर्णरम्भायुताः प्रिये ।
आर्यम्णं कौम्भके बीजे दानं रणजले तथा ॥२४७॥
कोरकार्णं स्वनः कायो मानस्तोकश्च मौक्तिके ।
रम्भा स्वनः क्षमा दर्भा लक्ष्मी लक्ष्म्युपरि स्थिता ॥२४८॥
तरुः फलं मठः स्वनशुक्ले गारुडमुच्यते ।
हरिः करो यशः क्षीरं श्रीर्भवेत्कमलोपरि ॥२४९॥
छलं रणोमनोऽथोधः शुभं क्षीरविराटगम् ।
देवी रौद्रं जलं मायारवह्लद शुभानि हि ॥२५०॥
क्षतेऽथाथर्व्वणं डाकिन्यर्ण वीणाह्लदानिलाः ।
स शुभाः सर्व एवैते औदुम्बर शिरःस्थिताः ॥२५१॥
माध्वीकं ठीलशाले च जनमायाकरास्तथा ।
विराड्पर्य्यथ धरा वृषक्षीरकरामनः ॥२५२॥
शुभं शूरौ च सर्वेऽमी वामकर्णेन्दुसंयुताः ।
ऐन्द्रवारुणमाहेन्द्रं चक्रार्णं सह लीलया ॥२५३॥
क्षीरशूरकराश्चापि सानुके त्वाष्ट्रमुच्यते ।
शूररम्भाक्षीरशुभं क्रमात्सन्तानमस्तके ॥२५४॥
उक्तं हैरण्यकेशीयं ह्लदहारौ तरुः शुभम् ।
सदसाचर्मके हंसः पर्य्यायस्तु चरः स्वनैः ॥२५५॥
कुटीसमकरागोस्था नाचिकेतसमुच्यते ।
रम्भाटङ्कौ तथा शूरे क्षमे चैव क्षुधोपरि ॥२५६॥
थलहार्ण्यै [?] गर्त्तलीले शूरे सेन्दुः स वामदृक् ।
उक्तमौशनसं कूटं मठगर्वस्वनाः क्रमात् ॥२५७॥
वार्हस्पत्यं सानुके स्यात्तथा खरगजौ जलम् ।
रवः शुभं समोगोस्थं मेध्यहाररवौ सदः ॥२५८॥

विश्वस्वनौ वधूबीजे नीललोहितमुच्यते ।
शर्मस्वनौ सरम्भौ चेद्यति क्षोरे गवि स्थिते ॥२५९॥
शुक्लोमथो रवोजातीयुगं रणशुभान्वितम् ।
स्वनशूरौ च योगिन्यामरुणं संप्रचक्षते ॥२६०॥
हेमलीले च माया च गवि चित्रां प्रकीर्तितम् ।
कराभ्यां पुटितौ ग्राहशूरौ पूर्णाकगौ शुचिः ॥२६१॥
हेदेविन्नमकक्षाणां शुभा चेदन्तरान्तरा ।
वामदृग्बिन्दुसंयुक्तं रोहितं वर्णयन्ति हि ॥२६२॥
गमः समो नरशठौ नन्दा वामदृगिन्दुना ।
कृष्णश्चेद् हारलीला च माया विश्वं शुभं हिमं ॥२६३॥
योगिन्यां धवलस्तु स्यात्स्वनः पुटरमार्णयुक् ।
काकिन्या कायभारुण्डा वर्णस्वनक्षमा यदि ॥२६४॥
कामे गौरः कररणौ शूभं मूर्द्धानलान्वितम् ।
विनादार्णं भवेद्रक्तमौदुम्बरशिरःस्थितम् ॥२६५॥
टंको रणो यतीलीला तथा शुभह्लदौ यदि ।
योगिन्यां शबलस्तु स्याच्चशाले लयः करः ॥२६६॥
मनो यतिस्त्रपायां हि कल्माष पाण्डरः पुरः ।
नन्दातरुरणायागशुभक्षीरा रथन्तरे ॥२६७॥
योगिनेयार्णलक्षीरकरतापिनि वर्णयुक् ।
त्रपा शौकः फलं लाघं यतिः क्षीरकराः सकृत् ॥२६८॥
शक्तौ नोलं यशः कायौस्त्र्यर्णक्षीरौ कपालके ।
हरितं लोहितं टंकसमौ तरुनरश्रमाः ॥२६९॥
मायाखर्वौ रेफयुताधस्ताद् वामश्रुतीन्दु युक् ।
हृदयागनराः पश्चाच्छ्रमकायहरास्ततः ॥२७०॥
कैकरः पाराहु [?] रुदितः श्यामोनरपटू ततः ।
टीकाजरे क्षमानेमौ जलं माया च पाठयुक् ॥२७१॥

करः शुभं शक्तिशीर्षकालौ धूमो हरिः करः ।
समनन्दा क्षमाखर्वं हिमं सन्तानमस्तके ॥२७२॥
रागक्षमारणसमाः शुभं वृष इतीह षट् ।
कपिलो वनिताशीर्षे क्षमाह्लदकरास्ततः ॥२७३॥
स्त्र्यर्णं शुभं हिमं ज्ञेयं पिंगलाख्यमुदुम्बरे ।
शुभं रंभाक्षस्वनौ च कर्वुरोग्रश्च कैंकरे ॥२७४॥
वलं सदोरणयशो ग्राहनन्दा स्मरोपरि ।
धूसरो जरया यागविश्वौ वृष इति क्रमात् ॥२७५॥
नेमौ हारिन्द्रमुदितं भ्रमौ समां शुभम् [?]।
भारुण्ड उक्तं कौसुम्भं मायूरं चासरार्णयुक् ॥२७६॥
स्वनोग्रः कामबीजं चेत् पाटलं ठलरंभया ।
जातिर्लयश्च शूरश्च गवि पोतो वृषः करः ॥२७७॥
प्रपा च त्रिशिखायां स्यात् खरजातीरणामणिः ।
ह्लदस्त्रपायां शोणः स्यात्कपिशो डिमखर्वयुक् ॥२७८॥
योगिन्यर्णक्षमाहार माया काकिन्युपर्य्यपि ।
शुण्डा मनोधरा च भ्रूः शठक्षीरौ च शूरवत् ॥२७९॥
वामश्रुतान्दुना युक्तौ ह्लदपाठमनःफलम् ।
खेचर्य्यर्णं च योगिन्यामैन्द्रगोपः प्रकीर्तितः ॥२८०॥
पाठह्लदः शुभं कायमनः शूर सवामदृक् ।
सेन्दु हारीत उदितो हरिः क्षीरहरः ह्लदा ॥२८१॥
करमायाशुभानि स्युः कामले हरिणः पुनः ।
विराजि ह्लदविश्वोग्रा मनोबलरणहरः ॥२८२॥
काकिन्यर्णं क्षमा शक्तौ राजसं रागलीलया ।
केशरार्णं रणसमौ ग्राहरम्भा क्रमादमी ॥२८३॥
पूर्णकेकाद्रवः प्रोक्तस्तैत्तिरो यौवनेययुक् ।
क्षमावृषो मनस्त्र्यर्णं शूरोवामश्रुतीन्दुभिः ॥२८४॥

सेना क्षमाकरसमाः खर्वः केशरवर्णितः ।
शूरे वामश्रुतीन्द्वद्या उल्वरणः परिकीर्तितः ॥२८५॥
जाती नारी हठकरस्वनमित्रार्णं वामदृक् ।
सेन्दुस्तु संकरोनाम्नाऽतः परं सरिताह्वयाः ॥२८६॥
भटोऽन्त्योनश्च दर्भश्च शुण्डाग्राहौ गवि स्थितौ ।
गंगा यमक्षमे सा ग्रावाद्यार्णाधः सुरेश्वरि ॥२८७॥
मारण्डे यमुना प्रोक्ताऽमुष्यामेव यमे जरा ।
सरस्वत्युच्यते नाम्ना जातीसमदलं नरः ॥२८८॥
शुभं क्षमा सुधायां चेच्चन्द्रभागा वरानने ।
टीका मठः शमो माया विपाशा गवि कथ्यते ॥२८९॥
मनोविश्वौ शुभतृषौ मित्रार्णं हि स वामदृक् ।
ऐरावती हरिमणी करमाये त्रपोपरि ॥२९०॥
देविका गोमती गर्वपार्वतीकास्तरुर्यतिः ।
जाती रत्युपरि प्रोक्ता चारमायारणाः पुटः ॥२९१॥
शुण्डा वध्वां वितस्ता स्याद्भा लीलानराः क्रमात् ।
रथकार्ण्णं दाने [?] मुक्तायां नर्मदा मता ॥२९२॥
सुधा डिमस्तरुर्जातिः सिप्रा स्यादरतेकगाः ।
छद्मवोची नयशुभं दस्रे काविर्य्युदीरिता ॥२९३॥
कृष्णवेल्ला भावभवौ जातिर्लीला च शूरयुक् ।
खरस्तर्म च रम्भा च ग्राहशूरौ गवि स्थितौ ॥२९४॥
तुंगभद्रा तथा चैकठलजातिलयाः क्रमात् ।
खेचर्य्यर्णं च योगिन्यां भीमरथ्युपदिश्यते ॥२९५॥
गजमाया वातयति कल्याणं सेनयान्वितम् ।
स वामदृगिन्दुयुतं भवेद् गोदावरीति हि ॥२९६॥
तापी मनः समौ शुण्डा भालं मठ इति क्रमात् ।
शूरो गवि पयोष्णी स्यात् कायो रव यतिर्नरः ॥२९७॥

वातस्ततः पूरकार्णं शुण्डा वामदृगिन्दुना ।
हृदयागौ जातिझंझ्झार्णं वृषाकर्णमस्तके ॥ २९८॥
करतोया गण्डकी तु रम्भा सम मनो यति ।
वृषः शुभं नेमिगश्चेद् बाहुदा तु रणो गिरिः ॥२९९॥
स्वनो यति योगिन्यर्णं नेमिगं सरयू पुनः ।
दानमायाहृययतिनरा गवि शरावती ॥३००॥
सदो रणो रणपुटौ भोगे रवसमौ मनः ।
यतिः क्षमा च रम्भा च त्रपायां कौशिकी मता॥३०१॥
रववेरिवो [?] गजवन जातिलीला यतिस्तथा ।
शूरे वामदृगिन्दुभ्यो भवेदुत्पलिनी प्रिये ॥३०२॥
तरूर्गर्वो च शुण्डा च जातिकायौ गवि स्थितौ ।
तुंरावती ससभङ्गा तु सदमाया पुटालयः ॥३०३॥
यतिः विरिंचौ वेत्रवती रवः स मनोयति [?] ।
रणप्रभा कुम्भशीर्षे रम्भापटु कुटी मदः ॥३०४॥
शूरो वामदृगिन्दुभ्यां चर्मण्वत्यभिधोयते ।
क्षेत्रार्ण भ्रम दुद्धर्ष वर्णरम्भा त्रपोपरि ॥३०५॥
सुवर्णरेखा तमसा कायह्रद यतिः समः ।
ग्राहानन्तार्णपूर्णाः स्युर्मनोयागरवाः समः ॥३०६॥
शुभक्षमायौगिनार्णः काकिन्योर्द्ध तयापका ।
कायो हरिर्जलं ग्राहरवशूराः क्रमात् स्थिताः ॥३०७॥
निर्विन्ध्या वामकर्णेन्दुयुता नोमो ह्रदः शुभम् ।
क्षीरौदुम्वरवर्णौ च त्रिरजारिष्ट मस्तके ॥३०८॥
डिम्वः पटुस्तरुसमौ गजग्राहौ च शक्तिके ।
मुरला महानदी वीणामाया रणयशौ रवाः ॥३०९॥
कापाले स्यात्सुधाध्वानसदोहारे हिमानि च ।
मदने वाग्मती प्रोक्ता नारीमाया यतिर्ह्रदः ॥३१०॥

क्षमारणौ कैकरे स्याद्धारणा मनसा ह्लदः ।
क्षोरं हिमं वज्रशीर्षे सोम पारावतो पुनः ॥३११॥
पटुरणो मनश्चाथ मणिनदे वरानने ।
योगिन्यां करहारौ च भ्रमपद्माक्षरस्वनाः ॥३१२॥
हेरु वाम दृगिन्दुभ्यामुक्ता ज्योती रसागमे ।
हिमं शठौ बृषौदुम्बरौ मन्दाकिन्युदारिता ॥३१३॥
यशः क्षोरवृषामाया शूरो वामदृगिन्दुभिः ।
मलप्रहारिणो नाम शतद्रुर्ज्जलपर्वणि ॥३१४॥
तरुरणो जातिलययतिकायनराः प्रिये ।
इन्दुना वामनेत्रेण शमजातिह्लदायतिः ॥३१५॥
रागो वामश्रुतीन्दुभ्यां हिरण्याक्ष उदीरितः ।
जाया रम्भा च नन्दा च खः पूर्णाङ्के च सिन्धुकः ॥३१६॥
शूरस्तरुः शुभं क्षीरं माया च घर्घरो मतः ।
रम्भा विषं मनः शूरकाकिन्यः कोक उच्यते ॥३१७॥
शाखाशुभक्षमागर्वमायाः कौलुश्चमस्तके ।
लोहित्योऽलकनन्दा च ह्लदयागरणाखलः ॥३१८॥
शुभमाये महाशीर्षे यागौ रणह्लदौ तथा ।
ग्राहहारौ भोगवती खेदोपरि समाहिताः ॥३१९॥
क्षमा शुण्डा गजकर शुभनारोमनांसि हि ।
गविवंक्षुर्गंव समधरामाया रवायति ॥३२०॥
शक्तौ शीताफाण्ट समधरामाया रमायतिः ।
शक्तौ दृषद्वती फल्गुः समहारकरा मठः ॥३२१॥
माया शुभं रतेर्मूर्ध्नि छद्मपर्वतरुर्यतिः ।
वीणा परंतपे देवि तिमिरा परिकीर्त्तिता ॥३२२॥
वलं रणो नरो यागो जातिर्बृष इति क्रमात् ।
त्रपायां फेनिला देवि सदोहारहिमभ्रमाः ॥३२३॥

शुभमाये नागशीर्षे कौक्षिका किरणा पुनः ।
रवोरणष्टंकरम्भे कल्याणौदुम्बरे तथा ॥३२४॥
शुभमायोद्धारवर्ण कल्पारिष्टाक्षराणि च ।
वध्वा चम्पावती शूरधवे रण इति क्रमात् ॥३२५॥
ग्राहश्च दानवे प्रोक्ता पर्णाशा पलिता मनः ।
यतिर्भालं नरसमौ लीला चापि महोपरि ॥३२६॥
सेना रम्भा यतिक्षीरे वर्णमौदुम्बरं तथा ।
कंकाल उर्मिलानामधरमाया सदोरवः ॥३२७॥
हृदयागौ महाशीर्षे ताम्रपर्ण्यथ मालिनी ।
सममायाहरावात क्षीरखर्वहिमानि च ॥३२८॥
वध्वा रणो जलमठौ कायः स्वन इति प्रिये ।
कृतमाला भवेद्बुद्धौ प्रहरौ हठ एव च ॥३२९॥
मनो हारो शुभं कामे भवेत्सोमस्रवा सरित् ।
चरो रवः फलयति शोभाजाति गवि स्थिता ॥३३०॥
मेकलायार्णमाये च खेचरी योगिनाक्षरे ।
वध्वास्तथा च काकिन्या वन्धूराथ प्रवाहिनी ॥३३१॥
वरहारमठस्त्र्यर्णस्वना लज्जोपरि स्थिताः ।
अथ उच्चावचाः कूटा नानानामान ईश्वरि ॥३३२॥
लीला गजग्राहखर्व हिमं साम्यं गवि स्थितम् ।
उदयोऽस्तः फलवृषसमहारमनःक्षमाः ॥३३३॥
विरिंचौ मठशुण्डे च सदोमायाहरा शुभम् ।
शूर वामश्रवश्चन्द्रे मन्दारः समुदीरितः ॥३३४॥
भटोभ्योनो [?] मनोहारौ भ्रमभ्रामरिवर्णकौ ।
अरिष्टे चल आख्यातश्छत्रं समहिमक्षमाः ॥३३५॥
रम्भामनःखराः सर्वे योगिन्यामभिधीयते ।
जातिरणां शूरसमौ हरक्षीरौ च चक्रगौ ॥३३६॥

माया खरो हिमं कूर्माक्षरं शूरो मुखान्वितम् ।
योगिन्यर्णश्चर्मणि स्याच्चण्डसमखरौ ततः ॥३३७॥
रम्भा जातिश्च कूर्मार्णं यागोदश्चैव खेचरो ।
दूती जातिश्च दर्भशूरौ संज्ञा गन्धर्व उच्यते ॥३३८॥
भवो वीणा रवो माया सृष्टौ मणिरिति स्मृतः ।
जातिर्लीला रणसमौ ह्रारशूरौ गवि स्थितौ ॥३३९॥
रत्नाऽभिधो हेमनामा रम्भाजातिसदोहराः ।
खुरार्णो नागगो देवि प्रासादौ दर्भयोगिनौ ॥३४०॥
वीणा मनश्च शूरश्च पौरस्त्यस्वरबिन्दुयुक ।
धरोदुम्बरवर्णौ च ह्रदक्षीरहिमं खरः ॥३४१॥
योगिन्यां धातुकूटः स्यात् स्वस्तिकस्तर्म फाण्टयुक् ।
भ्रमं कायमनोश्रश्च नाग ऋद्धिस्तु मायया ॥३४२॥
पाठो वृषो यतिर्ह्रीगो वृद्धिर्दर्भश्च रम्भया ।
शूरो मुक्ताकगः शूरक्षमा दर्भस्वनाः प्रिये ॥३४३॥
अपराजितो भवेद्धध्वां हेमक्षीरं सदस्तथा ।
रम्भा त्रपा मूर्ध्नि पदं मनो नन्दा च टीकया ॥३४४॥
वीची सदोहार लज्जाक्रमो रम्भा च जालयुक् ।
शुभमाये विरिंचौ हि जटावल्ली तु वल्लभे ॥३४५॥
शोभाग्राहग्रहशुभयोगिनीरागयुक् क्षमा ।
दर्भस्वनखुरा देवि धनो योगिनि दर्भयुक् ॥३४६॥
क्षीरह्लदौ ध्वजे वज्रं यशोहारौ च नन्दया ।
जातिः सदस्त्रपामालासदो मायाह्लदः करः ॥३४७॥
क्षीरशूरौ वामकर्णः बिन्दुरेखा प्रकीर्तिता ।
मठ रम्भा मनोदर्भत्रपानद उदाहृतः ॥३४८॥
करस्वने क्षीरसदोहारो व्यूहस्तु तन्त्रकैः ।
शंखः सरम्भो मनसा यशो दृष्टिर्वधूपरि ॥३४९॥

मनोहिम ध्रुवशठा सम्भावे चक्र उच्यते ।
व्युतक्रमाच्छक्तिविद्यार्णो रम्भामायायशांसि च ॥३५०॥
पूर्णकामः क्षते प्रोक्तो डाकिन्यर्णं च रम्भया ।
जातिः सदोऽन्विता चक्रे डाकिनीकूटमुच्यते ॥३५१॥
प्रदभौ च स्वनक्षीरकल्पा मालाभिधीयते ।
औदुम्बरार्णं रवयतिभ्रमाः साम्यं सुरेश्वरि ॥३५२॥
मन्थानाख्यो हि लांगूले दर्भभ्रमकरो मनः ।
हिमं विरिचौ त्रिजटा द्वीपार्णं समकाययुक् ॥३५३॥
स्वनः शुक्रकचे प्रोक्तः उच्चखण्डो वरानने ।
रणः सदोमनस्त्र्यर्णः शुभशूरयुतस्ततः ॥३५४॥
वामकर्णेन्दुसंयुक्तः किंजल्कः समुदाहृतः ।
दर्भकायहरिग्राहा गवि लीलः शुभक्षमः ॥३५५॥
स्वनलक्ष्म्यस्य शूराश्च सेतुर्वामश्रुतीन्दुभिः ।
असिवर्णस्वनक्षीरशुभं कुलमुदाहृतम् ॥३५६॥
योगिन्यां ह्लदविश्वौ च हारमायाङ्गनार्णकाः ।
समयाख्यो महाकूटः पूर्णायां समुदाहृतः ॥३५७॥
दर्भरम्भामथ मनो जातिशुभखराः फलम् ।
सरवक्षतके सर्वे मन्त्रकूटमुदाहृतम् ॥३५८॥
भ्रमवर्णाधरे नन्दा शुभजाति ऋषारणः ।
दिग्वीजे वर्णकूटं स्यात्सत्त्वकूटपदे तथा ॥३५९॥
डमरुस्त्र्यक्षरं ह्रीभिर्मेरुरागमगोपितः ।
गद्करादुद्धृतं देवि हरिर्जातिशुभं तथा ॥३६०॥
दर्भो डमरुवर्णश्च नन्दा दिगध्वरं भवेत् ।
शठः स्वनशुभं शूरः कालरात्रिशिरःस्थितः ॥३६१॥
कैलासकूटं फेत्कारी वर्णाधस्थः स्वनक्षमे ।
शूरे सवामकर्णेन्दुस्त्रिकूटाख्योऽभिधीयते ॥३६२॥

प्रक्रिया नामभिः कूटा इतो वेदान्तसांख्यया: ।
हिमं खरोग्रग्राहाश्च रम्भाज्ञानं त्रपोपरि ॥३६३॥
इच्छाकाय शुभं रम्भा क्षमा भ्रामर्युपर्युता ।
देवशाखमनश्चापि हिमं नागे कृतिर्मता ॥३६४॥
खर्वो रणः समहिमं स्वनश्च क्षमया सह ।
योगिन्यर्णः क्षते कल्पो धर्मो हेम सदो मनः ॥३६५॥
मोचिन्यर्णो योगिनी च धराशठहया यशः ।
ह्रियां वैराग्यमुदितमैश्वर्यं टंकशुण्डया ॥३६६॥
कायग्रहासिवर्णास्त्रीझरोहठमनस्ततः ।
हिमं निर्वृत्तिर्विराजि ततो भाव प्रिये०० ॥३६७॥
शूरो महोदयः काल्यां यमशूरसदासि हि ।
ग्राहहारौ च योगिन्यां कूटः स्यात्केशराभिधः ॥३६८॥
शाखा सौधश्च नन्दा च मनः साम्यं च चर्मणि ।
शूद्रोऽविद्यां च क्षत्रार्णे सदः कर हरिर्मनः ॥३६९॥
कल्पार्णकालीबीजाभ्यां रागो लीला हिमं हरः ।
रणः सदश्च धनदा हिमखर्वौ सदर्भकौ ॥३७०॥
हारो माया च नन्दा च क्षते तामिस्रमुच्यते ।
लीलाशूरमनस्त्र्यर्णः कल्पार्णौ च विरिंचिके ॥३७१॥
गजो रवो मनश्चापि केकरार्णाद्रदौ तथा ।
क्षमा रमायां द्वेषः स्यात् झररागौ रणो हरः ॥३७२॥
जातिशूरौ वामकर्णेन्दुर्विपाक उदाहृतः ।
रम्भामायायतिमणियोगे योनिरुदाहृता ॥३७३॥
क्षग्रौ स्वनौ जलरणावुपाधिः स्याद्वधूपरि ।
हयभद्ररणा नन्दा मनः कूटमुदीर्यते ॥३७४॥
मनोधरस्त्र्यर्णं विश्वलयास्त्रिशिखयान्विता ।
बुद्धिनन्दा मनोरम्भा यतिः पाठः स्मरोपरि ॥३७५॥

अहंकारस्ततो दूतीखरमायाहिमानि च ।
क्षमा शक्तौ चित्तमुक्तं जलनारीहरो मनः ॥३७६॥
भ्रमो यतिस्त्रपाद्वैतं लीलायागौं क्षमा करः ।
हारस्त्र्यर्णौं च नन्दा च सनास्याश्च त्रपोपरि ॥३७७॥
यदुः खरार्णसदसी ग्राहो वध्वर्णं एव च ।
त्रिशिखायां योगभूमिपिण्डः फलनयौ मनः ॥३७८॥
यतिः पाठश्च पूर्णायां रुद्रष्टंकश्च विश्वयुक् ।
गौदुम्बरौ निगदितं निरञ्जनमिति प्रिये ॥३७९॥
कलार्णसममायाश्च रम्भा क्षीरं गवि स्थितम् ।
तन्मात्रं यशसा मायास्त्र्यर्णग्रागौ वृषस्तथा ॥३८०॥
ह्रियामिन्द्रियमाख्यातमक्षरं करदर्भयुक् ।
लीला शुभं च संज्ञार्णं बुद्धौ देवि प्रकीर्त्तितम् ॥३८१॥
रवह्लदौ करो मायापाठौ बीजं च कौम्भकम् ।
प्रज्ञा शुण्डा मठस्त्र्यर्णमायाः प्रकृतिरुच्यते ॥३८२॥
त्रिशक्तौ छदखड्गार्णौं मायाकायाश्च शूरयुक् ।
प्रमाणं वामकर्णेन्दु यमसमकरस्वनाः ॥३८३॥
क्षीरं टंकाह्वये बीजे प्रत्ययः परिकीर्त्तितः ।
भावो हिमं शुभं पाठः षडूर्मिर्दानवे मता ॥३८४॥
जनशूरौ तापिनेय यौगिनार्णौ खुरोपरि ।
सत्ता सदो हिमकरौ शुभभ्रममनांसि च ॥३८५॥
रमायां परमार्थः स्यात्फणकायौ शुभं मनः ।
नन्दा दिशि स्याज्जीवात्मा तत्त्वमस्यद्वयाक्षरात् ॥३८६॥
ससन्धिः प्रणवो देवि परमात्माभिधीयते ।
योगिन्यर्णं च रम्भा च शूरग्राहौ क्षतोपरि ॥३८७॥
प्रतिविम्बस्तथा भासो वातशूरक्षमाः क्रमात् ।
रागश्चक्रे निमित्तं तु शंखस्वनशुभानि हि ॥३८८॥

कापालार्णं च दिग्बीजे पुष्पं यमयशस्तथा ।
नागे बन्धः सूक्ष्मकूटं माया हिममतः परम् ।।३८९।।
जायाग्नौ दानवे नित्यं गिरिराजस्वनाजलम् ।
त्रिशक्तौ साक्षिकूटं तु दूतीविषमतः परम् ।।३९०।।
स्त्र्यर्णमाये तथा नन्दा दिशि चैव जरा ततः ।
ग्राहशंखौ तथा मूर्ध्नि सदसत्कूटमुच्यते ।।३९१।।
दर्भो हिमं मनो नन्दा यतिर्वर्णेन्दु वामदृक् ।
भवेदुपशमः कायहाररत्ना:[?] शूर एव च ।।३९२।।
मेखलाया स्मृतिः प्रोक्ता सदोरम्भाशुभानि च ।
शक्तिसर्वस्वबीजे स्याच्चैतन्यं कूटमीश्वरि ।।३९३।।
एकारसमकावेव वर्णशूरौ रथन्तरे ।
प्रबाधस्वनशृङ्गौ च डाकिन्यर्णस्ततः परम् ।।३९४।।
त्रिशिखामाशयः स्याच्छ्रमदेवोऽथ मायया ।
युता नन्दा दिशि शिवे चिद्घनस्त्वभिधोयते ।।३९५।।
हंसार्णं ज्येष्ठकूटे तु एककूटमुदीर्यते ।
साहमेवासमित्येवं लयकूटं प्रकीर्त्यते ।।३९६।।
रमाहारौ हिमसमौ ग्राहः त्रिशिखया सह ।
भवेदपुनरावृत्तिरैकात्म्यं रम्भयान्वितम् ।।३९७।।
दर्भो नन्दा तथा ग्राहो योगिन्यर्णं दिशावपि ।
दर्भशूरौ भावजाति त्रिशक्तौ परिकथ्यते ।।३९८।।
विज्ञानमयमीशानः समः शाला यतिस्तथा ।
रम्भामनस्त्र्यर्णलक्ष्म आनन्दमय उच्यते ।
स्यात्तद्ब्रह्माहमस्म्येतत् कूटं ब्रह्ममयं प्रिये ।।३९९।।

इति विंशत्यधिकसप्तशतबीजोपबृंहितषष्ट्यधिकशतत्रयकूटानि
भीमातन्त्र महाकालसहितोक्तानि
समाप्तानि ।

परिशिष्टम् (३)

त्रयोदशतमे पटले ६५३–६५४ तथा ६६७ पद्येषु समागतानां वैदिकमन्त्राणां मूलनिर्देशः।

१—"हंसः शुचिषद्" इत्यादि

ऋग्वेदसंहिता ४.४०.५. वाजसनेयीसंहिता १०.२४; १२.१४. तैत्तिरीयसंहिता १.८.१५.२. मैत्रायणीसंहिता २.६.१२.७१.१४; ३.२.१.

२—"प्रतद्विष्णुस्तरे" त्यादि

ऋग्वेद १.१५४.१. अथर्वशौनकम् ७.२६.२. वाजसनेयीसंहिता ५.२०. मैत्रायणीसंहिता १.२.६.

३—"विष्णुर्योनिम्" इत्यादि

ऋग्वेद १०.१८४.१. अथर्वशौनक ५.२५.५.

४—"त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादि

ऋग्वेद ७.५६.१२. वाजसनेयीसंहिता ३.६०. तैत्तिरीयसंहिता १.८.६.२. मैत्रायणीसंहिता १.१०.४.

५—"मनोज्योतिः" इत्यादि

वाजसनेयीसंहिता २.१३. तैत्तिरीयसंहिता १.५.३.२. मैत्रायणीसंहिता १.७.१.

परिशिष्टम् (४)

उद्धृता : ग्रन्था :

[महाकालसंहितायां गुह्यकालीखण्डस्य प्रथमभागे समुद्धृता आचार्याः सम्प्रदायाः ग्रन्थाश्च]

[महाकालसंहितायां गुह्यकालीखण्डस्य द्वितीयभागे समुद्धृता : आचार्या ग्रन्थाश्च]

[तत्रैव तृतीयभागे समुद्धृता आचार्या ग्रन्थाः सम्प्रदायाश्च]

परिशिष्टम् (५)

महाकालसंहिताया गुह्यकालीखण्डस्य प्रथमभागे समागतानां विशिष्टशब्दानां सूची

ऋ

ए

ऐ

ओ

औ

क

क्ष

ख

ग

ज्ञ

झ

न

प

फ

भ

श

ष

स

× × ×

महाकासंहिताया गुह्यकालीखण्डस्य द्वितीयभागस्य विशिष्टशब्दसूची]

अ

ख

क्ष

महाकालसंहितायाः गुह्यकालीखण्डस्य तृतीयभागे समागतानां

विशिष्टशब्दानां सूची

अ

छ

ज

प

म